पड़े थे। शरीर का रङ्ग एक दम ज़र्द था। मिल्टन और शेक्सपीयर कंठाग्र थे। बात करे तो मालूम होता था कि किसी पुस्तक का पाठ करता है। शिष्टाचरण में बिलकुल अनभिज्ञ था, प्रत्येक विचार धर्म के रंग में रंगा था। हिन्दू धर्म पर मर मिटने वाला था। हजारों श्लोकों से मस्तिष्क भण्डार खचाखच भरा था। हिन्दुओं को छोड़ वह संसार के सब लोगों को मूर्ख समझता था। उसका दिमाग कुछ फिरा हुआ मालूम पड़ता था।

तीसरे ने किसी ईसाई कालेज में शिक्षा प्राप्त की थी। माता नीच वर्ण की हिन्दू थी और पिता मुसलमान, पर ईसाई हो गया था। जिसको उसने मुक्ति का मार्ग बता अपनी स्त्री बना लिया था। यह दो सीप का मोती (वर्णशंकर) अंग्रेजी बहुत अच्छी बोलता था, मानों वह उसकी मातृभाषा ही हो। रीति रिवाज, व्यवहार, और चाल ढाल में वह अलीगढ़ वाले को टक्कर मारता था। पोशाक सादी, और सस्ती, पर साफ़ और सुथरी थी। माता पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी होने के कारण एफ० ए० तक ही पढ़ कर छोड़ दिया था।

चौथा नवयुवक एक काश्मीरी ब्राह्मण का पुत्र था। एन्ट्रेन्स तक पढ़ा था। बाप की ऐसी स्थिति न थी कि घर में खिला पिला कर कालेज में शिक्षा दिला सके। और कालेज के छात्रालय में वह लड़के को छोड़ नहीं सकता था, क्योंकि वह अपनी जाति में नाग के नाम से मशहूर था, और ऐसा करने से व जाति से निकाल दिया जाता। देखने में यह उम्मेदवार तेज़ और गौरवर्ण का था। तोते सी नाक और नींबू के फाँक सी आँखें थीं। ललाट भव्य था। चेहरे से चंचलता टपकती थी। पाश्चात्य सभ्यता से पूर्ण अवगत था। अभ्यासानुसार अंग्रेजी बहुत

अच्छी बोल् लेता था। परन्तु हिसाब किताब में शून्य ही था। उसने यदि प्रथम में अपने को ब्राह्मण न बताया होता तो पद्लजी उनको एक जरथ्रोस्ती (पारसी) समझ गुजराती भाषा में ही बातचीत करते।

पांचवें महाशय एक बङ्गाली थे। कोयले को मात करने वाला इनका रंग था। साक्षात् आबनूस के आकार मालूम होते थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय से इन्होंने गणित अंग्रेजी और साइन्स तीनों में एम० ए० पास किया था। प्रभावशाली अनुरोधपत्र प्राप्त थे। घर के सम्पन्न थे पर माता पिता से बिगड़ कर चले आए थे। यदि उच्चारण की अशुद्धियाँ ध्यान में न लावें तो कहना ही पड़ेगा कि ये बातचीत में घोड़े की तरह सरपट भागते थे। गणितशास्त्र में ये इतने निपुण थे कि मानों अंक इन के सन्मुख हाथ जोड़ कर खड़े रहते। इनके एक एक शब्द से स्वदेशभक्ति टपकती थी। शरीर बेडौल था, आँखों पर चर्बी चढ़ी हुई थी। नंगे सिर थे, काले घूंघर वाले बालों से गरी के तेल की भभक निकलती थी। देशी बूट पैर में थे। ढाके की देशी धोती इतनी महीन पहिने थे कि यदि ऊपर कोट न पहिना होता, तो उसका पहिनना न पहिनना दोनों ही बराबर था। कांछ ऐसी उत्तमता से मारी थी कि पैर की पिंडुली बिल्कुल नजर आती थी। घर से जो कुछ लाए थे, सब खा पका गए अब नौकरी करने को निकले थे।

छठवें माणिक चन्द एम० ए० लाहौर गवर्नमेन्ट कालेज के विद्यार्थी थे। ये बिचारे जहां प्रार्थना पत्र भेजते वहीं से निराशा जनक उत्तर आता, जहां उम्मेदवारी करते वहीं का ठाट उलटता— ऐसे भाग्यहीन थे कि जिस के यहां दूध लेने जायँ उसकी भैंस मर जाए और जिसके यहां अग्नि लेने जायँ उसका घर जल जाय—

"जो दाना मांगे तो खेत आग सारे हो जाय ।
जो पानी चाहे तो दरिया किनार हो जाय ॥"

जाति के ये राजपूत थे। इन्होंने बी० ए० में गणित शास्त्र का विशेष अभ्यास किया था। एम० ए० में तत्त्वज्ञान का अभ्यास किया था। निर्धन पिता ने अपने पूर्वजों की कमाई के खेत और घर गिरों रख कर्जा ले कर इनको इतनी शिक्षा दिलाई थी। माणिक चन्द का शरीर केवल अस्थिपिञ्जर था। खाल उतारे बिना ही उनके शरीर की एक एक हड्डी गिनी जा सकती थी। आंखों में गड्ढे पड़ गए थे और कालिमा छा गई थी। गाल बैठ गए थे। हाथ पैर उंगली जैसे हो गये थे। आकृति सुन्दर थी, रंग गेहुआं था। आंखें बड़ी बड़ी थीं। भौहें आपस में बालों से ऐसी मिली थीं और इस प्रकार तनी थीं मानों किसी वीर सिपाही की कमान कसी हो। अंग्रेजी अच्छी बोलते थे। धर्म का भी बोध था। शारीरिक सम्पत्ति में वे जितने भाग्य-हीन थे उतने ही मानसिक शक्ति में बढ़े चढ़े थे। सरकारी नौकरी के लिए इनको सर्टिफिकेट मिलना असम्भव था। इनके हंसने की चाल एक विचित्र थी, हँसने के समय इनके दोनों ओंठ ऐसे झुक जाते की दर्शक को उन्हें देखने में बड़ा आनन्द आता।

चतुर एडलजी ने इन छओं व्यक्तियों की बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षा ली। बीच बीच में जरा भी एकाध प्रश्न कर बैठती। सब से प्रथम काश्मीरी पंडितजी को नारियल-सोपारी मिली। उनका अभ्यास कम था। अक्षर यद्यपि मोती से चुने थे परन्तु इतने ही से इतने बड़े कार्यालय में कार्य नहीं कर सकता था।

पंडित जी के विदा होने पर बाप और बेटी दोनों जने बरा-मदे से उठ कर कुछ विचार करने के लिये कमरे में गए। बंगाली बाबू के लिये तो दोनों के एक ही विचार मिले कि ये असभ्य

और हठीले हैं। एक पारसी के यहां नौकरी की आशा से आए हैं और पूरे कपड़े भी नहीं पहिना है। नौकरी लग जाने पर कौन जाने ये शरीर पर वस्त्र रहने देंगें या नहीं? इस प्रश्न पर दोने जने खूब हंसे। बनिये को तो पुस्तक का कीड़ा, धर्मान्ध और सभ्यता से एक दम अनभिज्ञ जान कर अलग किया। वर्णसंकर होने के कारण ईसाई को पुराने विचार के एदल जी ने पसन्द नहीं किया। ज़र ने भी अपने पिता के बिचार को ठीक माना। अब बचे माणिक चन्द जी और अलीगढ़ वाले खां साहब। एदलजी का यह कहना था कि अलीगढ़ वाला खां हृष्ट पुष्ट और चालाक है। वह लिखा पढ़ी का काम भी करेगा और अपने व्यापार का ढब भी शीघ्र समझ जायगा। व्यापार में ऐसे ही व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। मुसलमान होने के कारण इसको अधिक छुआ छूत का ख्याल भी नहीं रहेगा। हमें जैसे आदमी की आवश्यकता है वैसा ही यह है। ज़र ने माणिक चन्द को पसन्द किया था। इसलिए वह माणिक चन्द ही को सब बातों में श्रेष्ठ सिद्ध करने की कोशिश करती थी।

एदलजी ने पुत्री पर प्रेम से हाथ फेरते हुए कहा "मेरी प्यारी, यदि तुम्हारी इच्छा उसी के लिये है, तो मैं उसी को नौकर रखूंगा। परन्तु व्यापार की दृष्टि से यह मुसलमान बहुत उपयुक्त है। जरा विचार करो कि यह लैले मजनू यदि रख लिया गया तो क्या करेगा? देखना, हम तुम से कहते हैं कि महीने में पन्द्रह दिन तो इसको डाक्टरी सर्टिफिकेट पर छुट्टी देनी पड़ेगी। खाने पीने में भी ये हजारों नखरे करेंगे और नाक भौंह चढ़ावेंगे। पूजा-वन्दना में ही इनके घन्टों बीत जायँगे। यदि व्यापार के निमित्त इनको चीन या जापान भेजना पड़े तो ये समुद्र-यात्रा-निषेध की धर्म की टांग अड़ायेंगे।

पारसी बच्चे व्यापार ही के लिये पैदा होते हैं, अतएव वे पूर्व ही से खूब सोच विचार लेते हैं। वास्तव में माणिक चन्द्र में अलीगढ़ वाले से विद्या का बल अधिक है पर एदल जी की दूकान में जितनी अलीगढ़ वाले की आवश्यकता है उतनी माणिक चन्द की नहीं। मुट्ठी भर हाड़ वाला निर्जीव शरीर क्या कर सकता है ? जिसके मारने से कोई नहीं मर सकता उसकी दृष्टि से वह कैसे मर सकता है ? अलीगढ़ वाला अपने रोब से काम ले सकता है। बोलचाल में उसका अंग्रेजी का ज्ञान दूकानदारी के काम के लिए पर्याप्त है।

जर ने रुकते रुकते नीची नजर किये हुए कहा "पिताजी, आप का अनुभव ठीक है, पर मुझे तो मुसलमान के स्वभाव से बहुत भय लगता है। जहां कुछ गुस्से से बोले कि सामने जूता सा जवाब तैयार है। यदि वह पूजा पाठ में समय व्यतीत करेगा तो ते ये मांग सँवारने ही में समय बितायेंगे। वह तो जब बीमार पड़ेगा तब छुट्टी मांगेगा और ये क्रीकेट पोलो आदि के खेल खेलने और देखने की इच्छा से छुट्टी लेने के लिये झूठे ही बीमार पड़ जायेंगे। यह राजपूत हिन्दू है। मांस और अण्डे तो खाता ही होगा। एम० ए० तक पढ़ा लिखा है, साधारण छुआ छूत का इतना ध्यान भी नहीं करता होगा। यदि उसको छुआ छूत का ध्यान होगा तो भी वह अपने साथ रहते रहते ठीक हो जायगा।"

एदलजी ने अपनी बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए अपने विचार प्रकट किये "जर, बेटा !" यह तो मानना पड़ेगा कि स्वभाव के ये लोग जरा तीखे होते हैं पर ये गरीब बिचारे स्वभाव के भी गरीब होते हैं।"

ज़र बाप को अपने पक्ष में आते देख बोल उठी, "हां पिता

जी। यद्यपि अपने विचार ऐसे नीच नहीं हैं कि हज़ारों वर्ष की अदावत याद कर उसका बदला लें, पर साधारणतया ध्यान देने से यह स्मरण हो आता है कि अपने को अपनी प्यारी मातृ-भूमि से निकालनेवाले ये ही यवन लोग हैं। और ये राजपूत ही अपने को आश्रय देने वाले हैं।"

एदलजी ने अपनी दुलारी पुत्री को बगल में दबा कर कहा "वाहरे पगली बेटी, तूने भी खूब जात बिरदारी की बात छेड़ी। क्या उस जाति के लोगों को नौकर न रखना चाहिये? यों तो ये हिन्दुओं का समस्त देश दबा कर उनको हैरान कर चुके हैं, पर इससे क्या कोई हिन्दू मुसलमान को नौकर नहीं रखता? अपने लिये तो हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुसलमान एक चने की दो दाल हैं। हज़ार वर्ष के मरे मुर्दे अब क्या कर सकते हैं?"

चतुर ज़र ने अपने को एक उपाय में निष्फल देख, दूसरा रंग, रचा, "मेरे कहने का, पिता जी, यह मतलब नहीं है! इस गरीब ने अपने प्रार्थना पत्र में अपनी जो स्थिति दर्शाई है वह भी दयाजनक है। इसके पिता ने घर बार सब गिरों रख कर अपने पुत्र को पढ़ाया और यह अभागा जहां कहीं नौकरी के लिये जाता है वहीं अपने मुंह की खाता है। यदि यह अपने यहां से भी निराश हो कर लौटेगा तो सम्भव है, इसके जीवन पर ही आ पड़े। मुझे तो इस पर बहुत दया आती है पिता जी।" इतना कह, ज़र आशा पूर्ण हो पिता की ओर देखने लगी। समझ में नहीं आता कि ज़र माणिक चन्द की नौकरी के वास्ते इतनी अधीर क्यों हो गई है!

अन्त में एदल जी ने, या तो अपनी पुत्री के कहने से, या माणिक चन्द की दी[illegible]-हीन स्थिति पर दया कर के, अथवा उसके विद्याभ्यास पर मोहित हो कर, या और कोई कारण

वश,उसी को नौकर रखने का निश्चय किया और जरबानू की तरफ होकर बोला, "अस्तु, इस समय तो जर! इस हिन्दू बालक को ही अपने यहां आश्रय दें।" जर ने एक दीर्घश्वांस इस प्रकार लिया मानो उसकी आन्तरिक इच्छा पूर्ण हुई हो। "चेहरे से भी यह भला और दृढ़ विचार का मालूम पड़ता है। चलो, हम बाहर चल कर इन लोगों से कह दें।"

बरामदे में आकर दोनों जने अपने अपने स्थान पर बैठे, फिर चतुर पदलजी ने यह सोच कर कि किसी को बुरा न लगे, धीरे से कहा कि, "महाशयों, आप सब के पते मेरे पास हैं, विचार कर के कल जिसको नौकरी कायम होगी उसको सूचना दे दी जायगी।" सब किसी ने अभिवादन कर के अपने अपने घर का रास्ता पकड़ा। पदलजी ने अपना नौकर दौड़ा माणिक चन्द को वापस बुलाया। और सब तो हृष्ट पुष्ट थे, चटपट चलने बने थे। परन्तु माणिक चन्द पैर घसीटता हुआ बंगले के कम्पाउंड के बाहर ही पहुंच सका था। नौकर ने आवाज दी वह आशा पूर्ण हृदय से पीछे फिरा और पहिले से दुगुनी तेजी से चट आ कर पदलजी के सम्मुख उपस्थित हुआ। धन्य है आशा, धन्य है, तेरी बलिहारी! तू चाहे तो मरे हुए को भी दो चार पैर चला सकती है। जर दूर से आते हुए माणिक को टक टकी लगा कर देख रही थी। विशेषतर उसकी मुख-मुद्रा पर से उसके ध्यान और नेत्र हटते ही न थे। इस प्रथम मिलाप ने ही ऐसी सुशिक्षिता, सुघरी हुई, अप्सरा सी बालिका के हृदय पर कैसा प्रभाव डाल दिया कि वह एक परजाति के युवक पर इतना अधिक दया भाव दिखाने लगी।

माणिकचन्द को सामने की कुर्सी पर बैठने का इशारा कर के, दयालु पदलजी बोले, " महाशय! कल से आपकी नौकरी

हमारे यहाँ क़ायम हुई। अभी आपको बोस रुपये मासिक दिए जायँगे। यद्यपि आप के अभ्यास की ओर ध्यान देने से इस अल्प वेतन के कहते भी मुझे संकोच होता है,पर लाचारी यह है कि हमारे विभाग में जितने वेतन के व्यक्ति की आवश्यकता है,उसके बाहर हम नहीं चल सकते। यदि आप ध्यानपूर्वक वफ़ादारी से काम करेंगे तो आपको भविष्यत् में अच्छे अवसर दिये जायँगे। कहिये आप की क्या इच्छा है ?"।

माणिक चन्द ने गद्गद् स्वर से उत्तर दिया "मैं इन रुपये को बीस अशर्फ़ी समझ सिरोधार्य करता हूं। ईश्वर आपकी उत्तरोत्तर वृद्धि करे और आप मेरे से भी हीन निस्सहाय को आश्रय देते रहें।" इतना कह माणिक ने एदल जी को हाथ जोड़े किन्तु सभ्य गृहस्थ एदल जी ने उसको ऐसा करने से रोका।

अपने स्थान पर आ कर माणिक चन्द ने अपने माता पिता को अपनी नौकर लगने का पत्र लिखा। उसके माता-पिता पंजाब के अन्तर्गत होशियार पुर ज़िले के अमोटा नामक ग्राम में रहते थे। मां-बाप को इतने व्यय के बाद बीस रूपये मासिक की नौकरी सुन आनन्द तो क्या हुआ होगा, पर इतना सोच कर सन्तोष कर लिया कि, लड़का ठिकाने तो लगा, अपना ख़र्च तो निकाल लेगा और प्रति मास जो घर से रूपये भेजने पड़ते थे, वह विपत्ति तो अब टली।

हिन्दू-प्रथानुसार माणिक चन्द का विवाह बालकपन में ही हो गया था। उसकी स्त्री की अवस्था इस समय अठारह वर्ष की थी। माणिक बाइस वर्ष का था। उसकी स्त्री को न्यूनाधिक वेतन का कुछ ध्यान न था। पत्र पढ़े जाते ही उस को यह निश्चय हो गया कि अब उसको बाहर जाना पड़ेगा, अलग गृहस्थी स्थापित करनी पड़ेगी और अब सास ननँद

को बोली ठोली से उसका पिंड छूट जायगा। मांणिक चन्द्र के सहपाठी और सम्बन्धी तो जो परीक्षा में फेल होने से खेती बारी में लग गये थे द्वेषाग्नि में जलने लगे, परन्तु लोकाचार से उस के पिता गोविन्द राम को धन्यवाद देने आए।

द्वितीय प्रकरण

अमोटा तालुका—माणिक की जन्मभूमि

होशियारपुर जिले कोपंजाब का चमन कहते हैं। अब तो नहरों के प्रभाव से अन्य स्थल भी रमणीक बन चले हैं। अमोटा एक छोटा पर रमणीक गाँव है। माणिकचन्द का पिता गोविन्दसिंह वहां का निवासी है। स्वरूपसिंह नाम का द्वितीय वर्ण का एक राजपूत भी वहीं रहता है। दोनों में दीर्घकाल से कुछ अनबन चली आती थी। केवल अनबन ही नहीं, बल्कि वैर-भाव भी अंकुरित हुए, गांव में दो तड़ पड़ गए, और परस्पर की छेड़छाड़ से दोनों को न्यायालय तक पहुंचने की नौबत आ गई।

केवल मुखिया शब्द के लिये वे परस्पर खून के प्यासे बन गए हैं। अमोटा में मुसलमान राजपुत के भी दो चार घर हैं। मोगल राज्य के दौर-दौरे के समय से इन्हों ने मुसलमानी (इस्लामी) धर्म स्वीकार कर लिया है। पर इन को सब रीति हिन्दुओं की सी हैं। विवाह में इनके यहां एक तरफ मौलवी इजाब और कुबुल के कलमें पढ़ते हैं तो दूसरी ओर ब्राह्मण नवग्रह की पूजा कराते हैं। पंजाब में मीरासी नाम की एक

जाति बसती है। ये लोग 'लागी' (लागा वाले) कहे जाते हैं। इन लोगों का काम विवाह में गाना बजाना है। मीरासी हिन्दू भी होते हैं और मुसलमान भी। पंजाब के राजपूत बड़े आलसी, ऐयाश और बैठ कर खाने वाले हो गए हैं, जिस से वे ऋण से दबे जा रहे हैं।

गोबिन्दसिंह को अपने पुत्र और पुत्री के विवाह में कुल की रीति के अनुसार बहुत खर्च करना पड़ा था, जिससे अब वह दब गया है। अपने पूर्वजों की कमाई आधे से अधिक जमीन उसने गिरों रख दी है। तीन में से उसके दो मकान भी जाते रहे। अब जिस में वह रहता है वही घर बाकी रह गया है। माणिक की पढ़ाई में भी उसने कुछ उठा न रखा। थोड़ी जमीन गांव के सरहद पर थी जिस में वह खेती-बारी करता था। उसमें उपज इतनी होती कि वह अपने कुटुम्ब का निर्वाह मजे में कर सकता था। उसके नाती गोती जो अमोटा ही में रहते थे उसके पुराने दुश्मन थे। वे लोग रात दिन इस को मिट्टी में मिलाने के ही फिराक में रहते। इसके जाति बन्धु, जिनमें से अधिक तर शराब और रंडियों के शिकार बने थे, इसके पूरे शत्रु थे। कारण यह था कि गोविन्द का पुत्र सुशिक्षित और सभ्य था, इससे वे द्वेषाग्नि में भस्म हो रहे थे। 'मुख में राम बगल में छुरी' की कहावत वे चरितार्थ करते थे। कितने तो गोविन्द की जमींदारी नष्ट होने की आशा लगाए बैठे थे। कितनों ने न्यायालय में उस की दुर्दशा देखने के लिये मान मनौती कर रखी थी। बिचारे गोबिन्द ने किसी को जमा नहीं मारी थी पर जातिके विशेष तर वे लोग जो अशिक्षित हैं, कैसे दुर्जन होते हैं यह वे ही जान सकते हैं जिन को उन से काम पड़ा हो। कहीं भी जाति में एक ने उन्नति की कि' क्षेम भोजन मठे

निद्रा' लेने वाले उस के पीछे पड़ जाते हैं और बात बात में धर्म की टांग अड़ा धर्म को बदनाम करते हैं। इन निरक्षर भट्टाचार्यों को और तो कोई काम रहता नहीं, जहां चार एकत्र हुए कि दन्तकथा छिड़ी। 'काजी जी दुबले क्यों ? शहर के अन्देशे से।' यदि कोई इनका विरोध करता है और इन को अच्छी बातें समझाता है तो ये अपने को अपमानित समझ न्यायालय की शरण लेते और घर के वा पंच के रुपये बेपीर की तरह सरकारी घोड़ों के दाना घास के वास्ते बहा देते हैं। यदि जाति के विद्यालय, औषधालय या धर्म शाला की सहायता के लिये इन से प्रार्थना की जाय तो एक कौड़ी भी इनके हाथ से जल्दी नहीं निकलती।

गोविन्द की जाति में एक सज्जन ऐसे थे जिन के साथ बिरादरीवाले परस्पर जूती पैजार होते देख आनन्दित होते थे। पाठक, आप इसमें जरा भी अतिशयोक्ति मत समझियेगा ! प्रत्येक देश में और हर एक समाज में ऐसे लोग पड़े हैं जिन को पराई हानि में ही अपना लाभ नजर आता है। महात्मा तुलसी दास ने भी रामायण में ऐसे दयासिन्धुओं का वर्णन किया है

"पर हित हानि लाभ जिन केरे, उजरे हर्ष विषाद बसेरे।
जो परदोष लखहिं सह साखी, परहित घृत जिनके मन माखी ॥
वचन वज्र जेहि सदा पियारा, सहस नयन पर दोष निहारा।"

एक महाशय तो गोविन्द के उसी दिन से शत्रु बन बैठे थे जिस दिन उसने अपने पुत्र और पुत्री के विवाह धूमधाम से किये थे। उन दिनों में, जब का यह हाल लिखा जाता है, एक राजपूत ने अपने घर में एक मालिन को रखा था जिस से वह जाति से निकाल दिया गया था—यहां तक कि उस को गांव के कुंए में पानी तक नहीं भरने दिया जाता था। वह विचारा गांवसे

तीन कोस पर नदी से पानी भर लाता।

अमोटा में एक तुलाराम पटवारी नाम का सारस्वत ब्राह्मण रहता था। उस का खास निवास-स्थान तो गुरुदासपुर में था। पर उस मूर्ख को यही धनार्जन करना अच्छा लगा। उसने अपना डेरा तम्बू सब यहीं ला जमाया। इसके 'आगे नाथ न पीछे पगहा' था। पाँच वर्ष हुए इसकी स्त्री परलोक पधार चुकी थी। अनजान आदमी तो इसकी चाल-चलन से इसको एक काश्मीरी पण्डित ही समझता। इसकी सब चाल-ढाल काश्मीरी पंडितों से मिलती जुलती थी। कारण कि इसने पांच वर्ष तक एक काश्मीरी पंडित की अध्यक्षता में काम किया था। वह पण्डित डेप्युटी सुपरिन्टेन्डेन्ट था। इन्होंने उसी पण्डित की चाल पकड़ी थी। ये बड़े ही हँसमुख थे, अच्छे अच्छे पदार्थ खाने और बनाने में निपुण थे, कपड़े पहिनने की ढब निराली ही थी, सभ्यतापूर्ण वार्तालाप करते, प्रातःकाल दो घड़ी शिव-पूजन में बिताते, जिसमें दो चार सौ आदमी दर्शन के लिये आते। तिलक इतना लम्बा चौड़ा लगाते कि आधे कोस से ही नजर पड़े। लाल त्रिपुण्ड के आगे पीछे केशर लगाते मानो ताँबे के तपेले पर कलई की गई हो। भौंह के बीच में काजल की बिन्दी देते-जिस से लोग समझें कि "कस्तूरी तिलकं ललाट पटले" झूठे सोगन (शपथ) आप ऐसे लटके से खाते मानों खीर पूरी बरफी आदि ही उड़ा रहे हों। सितार की भी पाँच सात गत आप टुनटुना लेते थे। संध्या समय एक लोटा भंग चढ़ा, ऊपर से चरस की चिलम का दम खींच, चबूतरे पर सितार ले बैठ जाते। इनके यहाँ, गाँव के छटे हुए लड़के, गधाप-चीसी के तरंग में बहे हुए युवकों, भंगेरी, चरसबाज, तथा गांजे की दम मारने वालों का समाज संध्या को सात बजे तक जुटा

रहता। रात्रि मे आठ से ग्यारह बजे तक शाक्तों का समाज इकट्ठा होता। उस समय कोई पशु भी वहां प्रवेश नहीं कर सकता था। उस समय तो केवल अधिकारी वर्ग ही एकत्र होते और 'किञ्चित पानम, किञ्चित ध्यानम्, किञ्चत् किञ्चित् चवर्णम्' का व्यापार चलता। ईश्वर ने हिन्दू धर्म को बहुत विस्तृत बनाया है। भाँग पीना हो तो शिव जी की बूटी। इससे उसके पीने में पाप ही क्या !

"महादेव कहैं सुन पारबती, विजया मत दे गंवारन को।"

गाँजा और चरस भी भोला शम्भू और भैरव नाथ के प्यारे हैं। इसलिये उसका दम मारने में भी दोष नहीं। मदिरा पान करना हो तो महाकाली की दीक्षा ले, फिर तो वह देवी का प्याला हो जाता है, फिर किस की मजाल जो चुचुर करे। उसी प्रकार मांस का भी शाक्तों को काहे का निषेध। अपने तुलारामजी पटवारी भी प्रत्येक कार्य शास्त्रानुसार ही करते। पर स्त्री गमन से भी आप मुंह न मोड़ते। उसकी सनद भी आप के पास उपस्थित रहती थी। विद्याज्ञान पर विशेष ध्यान देने की कोई आवश्यकता न थी। उन्होंने संगतों के अच्छे फल प्राप्त किये थे। स्वभाव जरा हंसमुख था। एक चरणी कविता भी कर लेते। पर दूसरा चरण रचते रचते इनके पिता श्री परलोक पधारे थे। कभी कभी काग स्वर से (सप्तम सुर में) राग भी अलापते; और वह भी मद्पान के उपरान्त ही तथा अधिकतर कविता ही में।

"मुतरिबे खुशानवा बुगो—ताजाः बताजाः नव बनव।"

आप स्वयंपाकी भी थे। हाथ ही से खाते पकाते। किसी का छूआ हुआ खाना पाप समझते। शाक्त के अधिकारियों की मण्डली में चाहे चमार भी हो वहां इनकी राय में छुआ छूत

नहीं । प्याला पीते समय आप ध्यान करते और श्लोक भी पढ़ते । किसी कवि ने ठीक कहा है:—

'पीता नहीं शराब कभी बे वज़ू किसे,
कालिब में मेरे रूह किसी पार की हये ।'

गांव के युवक इन के यहां नित्य आते । ये ब्राह्मण कुला-वंश हो कर भी यदि ऐसे कर्म करें और राजपूत तथा दूसरे लोग इनका अनुसरण करें तो उस में आश्चर्य ही क्या ? माणिक चन्द भूल कर भी उसकी तरफ न जाता । इसी से वह पापी पंडित माणिक का शत्रु हो गया था । गोविन्द को डराने के लिये वह सरकार में बराबर उसके नाम की झूठी रिपोर्ट करता । बिचारे गोविन्द को डर के मारे उसके घर आंटा, घी भेज उस को राजी करना पड़ता । गाँव की सरहद यानी, तीन कोश की दूरी पर एक छोटी सी नदी थी । वहां पटवारी जी का एक चक्कर नित्य लगता । संध्या-वन्दन के बहाने आप स्त्रियों को खूब घूर घूर कर देखते । नीच श्रेणी के काश्मीरी पंडितों के सब आचरण आपने स्वीकार कर लिये थे । सदा धम्म शब्द के उच्चारण ही को आपने धर्म समझ लिया था ।

गोविन्दसिंह का गार्हस्थ्य जीवन भी बड़ा दैढय था । इनकी स्त्री प्रेमदेवी तुर्क मिज़ाज और कुन्द ज़ेहन थी । माणिक चन्द की स्त्री रुक्मिणी को वह कभी भी चैन से न बैठने देती । नित्य लड़ाई झगड़े हुआ करते । माणिक चन्द की बहिन भी अपने नैहर रहती थी । उसका पति अशिक्षित, मूर्ख और लंपट था । उसने एक छटी हुई तम्बोलिन को रक्खा था । वह अपनी स्त्री से कोई सरोकार न रखता था । माणिक की मां अपनी पुत्री ही को संसार में सब से अधिक समझदार और चतुर समझती । लड़की भी उन्हीं में थी जिसे शाक्षात् चंडिका

ही कहना चाहिये। ननँद भौजाई में बिल्कुल न बनती। दिन में सैकड़ों बार दांत बजते। प्रेम देवी सदा अपनी पुत्री का पक्ष लेकर गरीब रुक्मिणी के मां बाप को सौ सौ नरक नहलाती।

ह्वीलर नाम के इतिहास वेत्ता लिखते हैं—हिन्दुओं को सच्चा सांसारिक सुख स्वप्न में भी नहीं मिलता। दिन रात में इनको कभी भी धर्म के झंझटों से छुट्टी नहीं मिलती। चोखाई मर्यादा, पवित्रता, सेवा, पूजा, पाठ, चौका, सुटका आदि नित्य नियमों से ही इनको फुरसत नहीं मिलती। विवाह और मृत्यु के अवसर पर ये इतना अपव्यय करते हैं कि दिवाला निकालने की नौबत आ जाती है। इतना करने पर भी उपकार की गंध तक नहीं। ये भोजनभट्ट जिस पत्तल में खाते उसी में छेद करने की नीयत रखते हैं। इनके पूर्वजों ने ऐसी व्यावहारिक रूढ़ियां चला दी हैं कि अब वे अनिवार्यसी हो गई हैं। उनके लिये अपव्यय न करने से इज्जत आबरू पर आ पड़ती है। घर में स्त्रियों का कलह कभी शान्त नहीं होता। कहां पश्चिमीय जातियां जिन्होंने अपने घर को स्वर्गतुल्य बना रखा है और कहां एशियाई जातियाँ जिन्होंने अपने घर को नरक से भी बदतर कर डाला है। ये लोग गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय बनाना जानते ही नहीं।" ह्वीलर महाशय का यह कथन अन्यत्र चरितार्थ होता हो वा नहीं पर गोविन्द के यहां तो पद पद पर इसकी सत्यता स्थिर होती है। गोविन्द को एक घड़ी भी घर में बैठना दुश्वार हो जाता। नहाने धोने के बाद दो चार ग्रास दाल रोटी खाई, न खाई कि हाथ में हुक्का ले क़रज़दार के दरवाज़े तकाज़े जा बैठता। वहीं उसका दिन बीतता। घर में आते ही कलह पुराण की कथा आरम्भ होती। पुत्री एक ओर मुंह

फुलाये बैठी है, तो स्त्री दूसरी ओर बड़बड़ पुराण का परायण कर रही है और बिचारी बहू एक ओर अपने भाग्य को कोस रही है। किसी ने प्रातः काल से जलपान नहीं किया है तो किसी ने रसोंई नहीं जीमी है तो किसी ने दो दो कड़ाके किये हैं। किसको कहा जाय और किसको नहीं ? जिसको कहो उसी को बुरा लगे और एक दूसरे के माथे नहाये। नित्य के कलह से गोविन्द के नाकों दम आ गया। उसने इन लोगों से शब्द व्यवहार करना भी छोड़ दिया। क्षेमकुशल पूछने को कौन कहे। घर का खरच दे देता, तीन बार भोजन कर लेता, दिन भर इधर उधर बिता रात को घर में आ सो रहता—यही गोविन्दसिंह की दिनचर्या थी।

गोबिन्दसिंह ने, माणिक के अभ्यास पर बड़े बड़े आशा-रूपी किले बांधे थे। पुत्र अच्छा ओहदेदार होगा, गहरी तन-खाह लावेगा ? गिरों रखी हुई ज़मीन छुड़ा लेंगे, बड़े बड़े घर बनवायेंगे, जाति बन्धु तब स्वयं आ कर देहली चूमेंगे, आदि स्वप्न गोबिन्द सिंह नित्य देखता। माणिक चन्द के पत्र ने तो उसकी आँखे खोल दीं। उसने देखा कि पुत्र बीस रूपये महीने पर एक व्यापारी के यहां गुमाश्तगिरी करता है माणिक ने अपने पत्र में सरकारी नौकरी की निराशा भी झलकाई थी। ग़रीब गोबिन्द को दुख तो बहुत हुआ, पर वह कर ही क्या सकता था ? यही कह कर उसने आँसू पोछे कि लड़का ठिकाने तो लगा। अब उसकी स्त्री को भी उसके पास भेजना ही पड़ेगा, चलो घर का कलह तो बन्द हुआ। पर मां को इस नयी चिन्ता ने ग्रसा कि पुत्र अब अलग रहेगा, बहू उसका कान भरेगी, हमारे घर की लौंडी हो कर अब वह हमारी पर-वाह न करेगी। माणिक उसके बश में हो जायगा और उसका

पक्ष करेगा। लड़के का घर बसे और लड़की नैहर में रोटी तोड़े यह कैसे देखा जायगा ? प्रेम देवी ने अपने मन में इस बात की गाँठ बांध ली कि चाहे आकाश पाताल एक हो जाय पर माणिक अपनी स्त्री का मुंह नहीं देख सकेगा।

माणिक चन्द भी अपनी मां और बहिन के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित था। सुशिक्षित माणिक अपने मन में भली प्रकार समझता था कि उसकी बिवाहिता स्त्री की क्या दशा होती होगी। इसने तो अंग्रेज़ों की तरह अपने घर को स्वर्ग तुल्य बनाने का विचार किया था। पर वह स्वयं यह नहीं लिख सकता था कि मेरी स्त्री को लाहौर भेजो, क्योंकि यह बात तो हिन्दू धर्म शास्त्र के विरुद्ध है। जिसके साथ जिन्दगी काटनी है उस के साथ बातचीत करने में, दुख सुख की कहने सुनने में निर्लज्जता समझी जाती है। फटहा, निर्लज्ज, मां बाप की नाक कटाने वाला होता है। गोबिन्द चाहता था कि जैसे बने वैसे बहू को लड़के के पास बिदा करें। पर जब वह प्रेम देवी के आगे इसकी चर्चा करता तब वह मुहूर्त, योगिनी, दिशाशूल, हेली-मेली और सम्बन्धियों में बिवाह आदि का बहाना कर के बात उड़ा देती। बहिन चाहती थी कि भाई भाभी को न बुलावे तो अच्छा, क्योंकि फिर वह जो दो चार रुपये बचा कर भेजता है शायद उसे भी बन्द कर दे। प्रेम देवी के मन में कभी कभी पुत्र प्रेम उमड़ आता। वह सोचती कि पुत्र पढ़ने लिखने की झंझट से तो आधा हो ही गया है, अब भी पचता नहीं, पढ़ते पढ़ते आँखें कमज़ोर हो गयी हैं तथा भरी जवानी में चश्मा लगाना पड़ता है, यदि अपने हाथ ही चूल्हा फूकेगा तो बची खुची आँख की ज्योति भी जाती रहेगी। यदि किसी के साथ रहेगा तो अनेक भोग भोगने पड़ेंगे अतएव

पुत्र प्रेम वश हो कर कभी कभी वह यह सोचती कि स्वयं लाहौर जाऊँ और वहां पुत्र को अपने वश में रखूं और रुक्मिणी को मन माना नाच नचाऊँ। पर इसमें भी उसको यह डर लगता कि ऐसा करने से रुक्मिणी भरपूर घर की मालकिन बन बैठेगी और जब वह घर का काम काज ठीक ठीक करेगी तब गोविन्द सिंह भी बहू के बश में हो जायगा। भला यह सब प्रेम देवी सी स्त्री को कब अच्छा लगता? इस प्रकार प्रेमदेवीने घर को कैसे सत्यानाश में मिला दिया सो आगे चलकर आप पढ़ेंगे। हिन्दू संसार में स्वेच्छाचारी स्त्रियों का विशेष महत्व होता है। वे अपनी चंचल बुद्धि द्वारा पुरुषों को मूर्ख समझ नाना प्रकार के उपद्रव कर डालती हैं और सुखी घर को अपनी अशिक्षाके कारण नष्ट भ्रष्ट कर डालती हैं। किसी कविने सर्वथा सत्य ही लिखा है:—

"समझ अपने में नहीं, ना समझ पति को कहे
कर्कशा बोले बोल धमकी और धिक्कार के।"

तृतीय प्रकरण।

शिक्षितों की अवस्था।

मेट्रिक मरने से बचे, बी० ए० के बेहाल।
एम० ए० मरण पथारि में, यह विद्याके हाल॥

नौकरी मिलने पर माणिकचन्द ने छात्रालय का रहना छोड़ दिया अनारकली नाम के बाजार में उसने एक साधारण कोठरी भाड़े पर ले ली। उसी में उसने अपना सब खाटपाट ला रखा।

कोठरी में क्या क्या सामान रखा था इस पर भी एक नजर डालनी चाहिये। बेंत की बीनी हुई एक पेटी थी, जिसमें विविध धर्म के भिन्न भिन्न विद्वानों की हस्तलिखित पुस्तकें भरी थीं। उसीमें की दूसरी पेटी तत्वज्ञान, विज्ञान, कालेज की पाठ्य पुस्तकें और शौक से पढ़ने के लिये खरीदी हुई पुस्तकों से भरी थी। एक पेटी में पहिनने के कपड़े थे। काठ की एक पेटी में वैदिक, यूनानी और अंग्रेजी भिन्न भिन्न प्रकार की दवाएं थीं। किसी पर अंग्रेजी में टिक्चर लिखा था तो किसी पर नागरी में नमक सुलेमानी, तो किसी पर उर्दू में अर्कक़ाफूर, खाकी आईल इत्यादि नाम पढ़ने में आते थे। एक तरफ दर्पण रखा है तो एक आले पर ब्रश, कंघी और सैन्डो के डम्बल पड़े हैं। दर्पण के ऊपर एक तख्ता जड़ा था जिस पर कुछ दवाई की शीशियां, और छोटी बड़ी डिब्बियां रखी थीं॥

माणिक ने एक नौकर भी रखा था। वह नैनीताल की तरफ का नागरी जाति का ब्राह्मण था। माणिक के जेबे में सदा तीन चश्मे रहते थे। एक आंख को धूल से बचाने के लिये, एक दूर का और एक पढ़ने के लिये। इन तीनों में से उसके नेत्र पर एक न एक बना ही रहता। इन चश्मों के दो एक टूटे पुराने खाने भी तख्ते पर पड़े नजर आते। एक पुरानी तिपाई, वैसी ही एक पुरानी कुर्सी और एक किरमिच की आराम कुर्सी वह किसी कबाड़ी की दुकान से ले आया था। खाने पकाने के उसके पास कोई खास बर्तन न थे। तरकारी भाजी वगैरह बाजार ही से तैयार आता और इसी प्रकार काम चल जाता था॥

माणिकचन्द को एडलजी के यहां की नौकरी बहुत भारी पड़ गई थी। लगातार आठ घण्टे तक टेबुल पर बैठकर लिखना माणिक से क्षीण-शरीर वाले से कब निभ सकता था। दूसरे

व्यापारियों की चिट्ठी पत्रियों में कोई कोई शब्द ऐसे विचित्र आ जाते कि वाक्य भर का मतलब खब्त हो जाता था, कितना ही माथा मारो पर अर्थ नहीं निकलता था। दिन में दस बारह बार तो कुर्सी परसे उठ उठ कर एदलजी के पास मतलब पूछने को जाना पड़ता था। इससे एदलजी बड़े आश्चर्य में पड़ते कि एक एम० ए० पास व्यक्ति दूकानदारी के व्यवहारीक चिट्ठी पत्री में इतना अधिक चक्कर में आ जाता है तो कालेज में किस प्रकार की सिक्षा दी जाती है। एदलजी को विशेष अचरज इस बात का होता कि माणिक घन्टे घन्टे भर पर दवा पीता, दिन भर ठों ठों करता, प्रति आधे घन्टे पर पांच पांच दस दस मिनट वह टेबुल पर किहुनी टेक कर बैठा रहता यदि कोई अंग्रेज ग्राहक कुछ खरीदने आवे तो वह थर थर कांपता और इसकी घिग्घी बंध जाती। भली प्रकार घूम घूम कर दुकान दिखाने की कौन कहे, यथा साध्य जल्दी यह उसको विदा करने की ही वेंवत बांधता। कई बार एदलजी ने चाहा कि उसको नोटिस दे कर बरखास्त करें पर दया बीच में आ टांग अड़ा देती और इनको ऐसा करने से बाज आना पड़ता। कभी कभी तो एदलजी के मन में यह विचार आता था कि केवल बीस रूपये पर एक ऐसे हाड़पिञ्जर से आठ आठ घन्टे खड़ी खाते पर चढ़ी दस्खाना एक घातकी का काम है। भोजन करते समय यदि एदलजी माणिक चन्द को बरखास्त करने की चर्चा करते तो जरवानू के मुख से ये करुणा रस में पगे हुए शब्द एकाएक निकल पड़ते कि "पिता जी! ऐसे लाचार, मुफलिस, गरीब ग्रेजुएट के पेट पर लात मारना एक घातकी का काम गिना जायगा। ईश्वरेच्छा से आपको किस बात की कमी है? यदि कोई देखे सुने कि एक बार ऐसे मनुष्य को आश्रय दे अब उसको निकाल दिया तो क्या कहेगा?

अनेक बार ऐसी चर्चा छिड़ने से ज़रबानू को यह आशंका हुई कि उसका पिता माणिक को कहीं निकाल न दे। अन्त में वह सहृदय सुन्दरी माणिक का बोझा हलका करने में उसे स्वयं योग देती परन्तु पदल जी इसके एक दम प्रतिकूल था कि उसकी एकलौती दुलारी बेटी एक साधारण गुमाश्ते का काम करे। जब ज़र ने पदल जी से कह दिया कि ऐसा करने से उसको आनन्द मिलता है तब सीधे सादे पदल जी चुप हो रहे। हमारे एम० ए० चन्द की अपेक्षा तो जरबानू पत्र व्यवहार में अधिक कुशल निकली। उलटा वही माणिकचन्द को समझाती थी। माणिकचन्द का सब समय दुकान के ही काम में बीत जाता। विचारे को उत्तमोत्तम ग्रन्थ पढ़ने और विविध विषयों के अवलोकन करने का समय ही न मिलता। जरबानू की सहायता को एक दैवी सहायता समझ कर वह प्रतिदिन उसके भार से नीचे दबा जाता था। कितनी बार उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह दया की देवी हमारे से निर्धन की इतनी सहायता क्यों करती है? पर इसका समाधान न होता। कुछ दिनों तक तो चुपचाप मर्यादा से काम चला। फिर धीरे धीरे काम काज हो जाने पर विविध विषय पर दोनों में वार्तालाप होने लगे। इस प्रकार कितने दिनों में जाकर संकोच दूर हुआ। फिर क्या था, एक दिन अपना थोड़ा सा काम खतम करके अवकाश मिलने पर माणिक ने बड़े कोमल शब्दों में पूछा कि:—

"जरबानू! मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि आपने इतना अधिक अंग्रेजी ज्ञान कहाँ सम्पादित किया? मैं आपको धाराप्रवाह की तरह बोलते देख आपका मुंह ताका करता हूँ। इससे अधिक मुझे इस बात का अचरज है कि आप व्यापा-

रिक भाषा और व्यापार-सम्बन्धी प्रचलित शब्दों का एक कोष हैं। यद्यपि मैंने एम० ए० की डिग्री प्राप्त की है तथापि मेरी दशा मौलवी सखा साहेब के कथनानुसार ही है—

" सखा हमने बहुत कुछ कोशिशें की ताके कुछ समझें।
मगर समझे तो ये समझे कि अब तक कुछ नहीं समझे ॥"

जर ने माणिक के प्रश्न से प्रसन्न होकर पर सच को स्वीकार करते हुए कहा " जितनी अधिक आप धारणा करते हैं उतनी अधिक योग्यता मुझ में नहीं है, मिस्टर माणिकचन्द्र! जब मैं छोटी थी तब बेहरामजी जीजी भाई गर्ल स्कूल में पढ़ने जाती थी, फिर कुछ समय तक मैं दीनशा पेटीट गर्ल स्कूल में पढ़ीं। अब तक मैं फराम जी कावज जी इन्स्टीट्यूट में भिन्न भिन्न पुस्तकें पढ़ने जाती हूं। धारा प्रवाह बोलने की आदत तो सगे सम्बन्धियों के कारण पड़ी। मेरी मण्डली के सब लोग सुशिक्षित ग्रेजुएट हैं। ईश्वरेच्छा पारसियों की अंग्रेजी बोलने की शैली स्वाभाविकतया अच्छी होती है और हमारे बम्बई की शिक्षापद्धति भी अति उत्तम है। आप पंजाबियों के उच्चारण तो स्वाभाविकरूप से अच्छे नहीं होते। वे लोग बिचारी भाषा की बड़ी निर्दयता से हत्या करते हैं। बम्बई तो बम्बई ही है। हजारों भांति की पढ़ने लिखने की सुगमता यहां हैं। प्रत्येक विषय के शिक्षक यहां मिलेंगे। आप का पंजाब प्रान्त, क्षमा कीजियेगा! मिस्टर माणिक जी—मेरा, आई मीन टु से⋯माणिक जी शब्दों को उच्चारण करते करते तब जर कुछ घबरा गई थी। एक दीर्घ श्वास ले कर फिर उसने अपना कोमल स्वर छेड़ा, " मैं आप का दिल दुखाने या हंसी करने के लिये नहीं कहती हूं, पर मुझे तो आप का प्रान्त कुछ जंगली सा मालूम होता है। मेरे ध्यान में आता है कि अंग्रेजी अखबारों के पूर्व

यहां कोई दरज़ी भी न रहा होगा। थान का थान मलमल माथे पर लपेटते हैं वह भी एक उत्तर तो एक दक्षिण, ईजार या लहंगा के एवज़ में, भला सा उस का नाम है, हां लुंगी-लुंगी लपेटके साईं, फकीर की तरह फिरते हैं। स्त्रियां भी मैली कुचैली, आधो नंगी घूमती हैं, न लज्जा न मुलाहजा। एक लम्बी चादर ओढ़ी कि परदा बीवी बन के चलीं। पैर में जूते तो हजार में से एकाद ही पहिनती होंगी और उस में नदी किनारे का दृश्य तो और भी बेहयाई का होता है। औरत मर्द दोनों एक ही स्थान पर निर्लज्ज की तरह स्नान करते हैं। हम लोग तो वैसा दृश्य कभी भी नहीं देख सकते।"

जरबानू की छटादार बातों और मत प्रकट करने की स्पष्टता पर माणिकचन्द लट्टू हो गया। उस को तो यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह स्त्री है कि पुरुष? कहां सौ बार बुलाने पर भी मुंह से 'जी' या 'हां' उच्चारण करने में एक ग्रामीण स्त्री के नौ सौ नखरे और कहां यह पुरुषों को एक कोने में बैठाने वाली तेज और चालाक बाला?

"भला हुआ जो अंग्रेजी अमलदारी हुई"—जरबानू कुछ देर चुप रही फिर एक श्वांस ले बोली, "बिचारे कोट पतलून तो पहिनने लगे। नहीं तो वह लुंगी या दो थान के लहंगे, जिस में पांच मन तो अन्न समा जाय और जिस में चार आदमी समा जायं ऐसा कुर्ता जिस की आस्तीन में एक एक साथ आठ आठ हाथ रह सके, पहिनते थे। किसी कालेज के अध्यापक को लम्प वगैरह वस्तुओं की दरकार थी। उसने कल बाबा जी को बुलाया था, वे कहते थे कि हिन्दुओं के लड़के घरन की कड़ी से अपनी चुन्दी (शिखा) बांध रात को बारह बारह बजे तक पढ़ते हैं और सवेरे फिर चार बजे से अभ्यास में लग

जाते हैं। और खाने पीने के नाम दाल, चावल, जौ, गेहूं की रोटी। बस एम० ए० और बी० ए० होने की धुन लगी है, जिस से सुनो उस से परीक्षा ही परीक्षा सुनी जाती है। पंजाबियों ने तो यही समझ लिया है कि पढ़ना लिखना सब सरकारी नौकरी ही के लिये है। बस डिग्री और नौकरी यही दो भारतवर्ष का उद्देश्य है।"

माणिक चन्द, जिसने बड़े परिश्रम से विद्यार्जन किया था, बोल उठा, "श्रीमती, आपका एक एक शब्द सत्य है, यहां की जनता में बिल्कुल दम नहीं है। पूर्व में कुछ हो तो हो भी पर अब तो उसका नामोनिशान नजर नहीं आता। सब विश्व-विद्यालयों की परीक्षाओं के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। मुझी को देखिए, मौका मिलने पर जब मैं अपने विद्यार्थी जीवन का वर्णन करूंगा तो आप दांतों अंगुली दबाएँगी॥"

"जरा! बेटी जर!" भीतर से एदल जी की आवाज आई॥

"हां, पिता जी अभी आई कहती हुई जर दौड़ती हुई अपने कमरे में घुस गई। माणिक भौचक्का सा होकर टेबुल के पास जा अपनी कुर्सी पर बैठ गया। वह अपने मन में यही गुनगुनाता कि इन लोगों के सांसारिक सुख का पार कहां? ऐसी स्त्री को इसी के योग्य यदि वर मिले तो स्वर्ग और संसार में अन्तर ही क्या रह जाय? पारसियों में तो सुशिक्षितों की भरमार है। मैं एम० ए० हूं! इससे क्या? बीस रुपये! एदल जी सेठ की अंग्रेजी तो खैर, ठीक है, पर वह लाखों का धनी है! हाय! मैंने एम० ए० होकर व्यर्थ अपनी जिन्दगी बर्बाद की॥"

इसी विचारसागर में गोते लगाते हुए उसकी दृष्टि जापान से आए हुए माल की सूची पर पड़ी जिसको उसने तथा अरजानू ने साथ बैठ कर तैयार की थी। सूची को देखते ही

माणिक बोल उठा, "धन्य है, देश तो इसको कहना चाहिए। कितनी शीघ्रता से इसने ऐसी उन्नति की है! वाह रे संघ! ऐक्य की महिमा ही अपार है। हाय, हमारे से दीन हीन को ऐसे देश में कौन ले जाए? यदि कोई ले भी गया तो जाति वाले शरीर पर खाल भी क्यों रहने देंगे?"

एक बुड्ढे नौकर ने आ कर माणिक चन्द से कहा-"आप को साहब बुलाते हैं, बाबू जी!" माणिक चन्द, जापान के माल की सूची ले अपने सेठ के कमरे में गया। एद्ल जी ने सूचीपत्र देख कर कहा, "वेल बाबू! यु आर ए लकी मैन। आप के करते तो हमारी लड़की ने चार सतर अधिक लिखी है॥"

माणिक ने लज्जा से नीची निगाह करके उत्तर दिया "आप ठीक कहते हैं, ग़रीब परवर! श्रीमती जर के मेरे पर लाखों उपकार हैं, आप मेरे अन्नदाता हैं। आप की बेटी मेरे साथ लिखने बैठती हैं यह देख मुझे बहुत लज्जा आती है पर करूं क्या? शरीर से लाचार हूं नहीं तो मैं मरतें मरते भी इनको कष्ट न उठाने देता। अधिक तो कुछ नहीं कह सकता, पर ईश्वर से इतनी प्रार्थना करता हूं कि हे दयानिधि, मेरे इस दुखी शरीर पर इस महामती के भी एकाध दुःख डाल दे, और इनको सुखी रखें। हे ईश्वर, मेरी आयु में से इस दयामयी को पांच वर्ष अर्पण कर।" यह कहते हुए माणिक के नेत्र डबडबा आये॥

तिरछी निगाह से माणिक की अश्रुधारा देख अन्तःकरण से दुःखी होकर जर बोली, "पिता जी, मैं इस काम को कष्ट रूप कब समझती हूं?" मैं तो केवल अभ्यास के लिये स्वयं लिखने बैठती हूं। मिस्टर माणिक चन्द! आप इस प्रकार इतने दुखी क्यों होते हैं? मनुष्य यदि मनुष्य की सहायता करे

तो उसने कौन सा बड़ा काम किया ? यह तो उसका धर्म ही है।"

माणिकचन्द अपनी स्थिति पर एक दीर्घ श्वास ले विनयपूर्वक बोले, "यह आप की कुलीनता है, और यह आपका सच्चा जरथोस्ती की बालिका का पवित्र खून बोल रहा है, श्रीमती! "आप अपने पिता जैसी ही पवित्र और दयालु हैं । और किसी की ऐसी दुलारी बेटी अपने गुमाश्ते की ऐसी सहायता करे तो वह घड़ी भर भी टिकने न पावे। मुझे मेरी स्थिति का पूर्ण ज्ञान है । ईश्वर आप का कल्याण करे कि आप एक माथे पड़े दीन दुःखी को आश्रय देती हैं और उसको निबाहती हैं॥"

सरल चित्त दयालु पदल जी अपने नौकर के दुःख से दुखी होकर उसको धैर्य देते हुए बोले "शान्त हो बेटा माणिक! जाओ, आज कुछ काम नहीं है, धैर्य धरो, घर जाओ।" माणिक विनय पूर्वक अभिवादन कर चला आया। उसके चले जाने पर पदल जी ने जर की ओर घूम कहा, "सुशील बालक है; "हिन्दू स्वभाव ही से गरीब और उपकार को मानने वाले होते हैं। पारसी लड़कों की तरह ये उद्दण्ड और तूफानी नहीं होते॥"

इसके बाद बाप बेटी में इधर उधर की बहुत सी गपशप हुई, जिससे हमें कोई प्रयोजन नहीं है। हमें तो विश्वविद्यालय के रुस्तम और पठनवीर भीमसेन माणिक चंद से मतलब है तो उसकी ओर चलें॥

नौकरी पर से चल कर हमारा नायक सीधे अपने घर आया। आने के साथ ही बूट उतार कर वह अपने औषधालय की ओर इस प्रकार बढ़ा जैसे भूखा बंगाली भात देख कर। एक शीशी उतारी, उसमें की एक गोली खाई। फिर कपड़े

लत्ते उतार कर एक धोती पहिनी। गरम पेटी तो गले में सदा ही पड़ी रहती थी। धोती की काछ मार कर कोई चार पांच हाथ डम्बल हिलाए कि श्वांस भर आया। पांच मिनिट सुस्ता कर उसी कोठरी में सवा सौ कदम घूम पसीना सुखाया फिर गरम जल से स्नान कर डाला। रसोईदार पहाड़ी व्यक्ति था उसके पेट में 'या देवी सर्व भूतेषु क्षुधा रूपेण संस्थिता' वाला हिसाब चल चुका था। माणिक चन्द्र के आते ही वह चटपट नीचे उतर अनार कली में से तरकारी और पकौड़े ले आया। आटा बांध कर पूछने लगा कि "सेठ जी, तरकारी भाजी ले आया हूं. कहिये तो फुलके उतारूं, दो नवाले गरमागरम।" माणिक चन्द ने पेट पर बायाँ हाथ फेर इधर उधर घूमते हुए कहा, "ठहरिए महाराज मैं कहूं नहीं तब तक आप तवा मत चढ़ाइयेगा।" रसोईदार जी ने तो हाथ मार ठंडी श्वांस ली। भूखे ब्राह्मण की कैसी दशा होती है यह तो पाठकों से कुछ छिपा ही नहीं है। चूर्ण की गोली ने माणिक की जठराग्नि प्रदीप्त न की। इससे उनको फिर उसी ओर जाना पड़ा। दूसरी शीशी उठाई और अंग्रेजी दवा की एक खूराक ली। दस मिनिट तक चक्कर लगाया। फिर भी कुछ नहीं मालूम हुआ। भूख माणिक का घर भूल गई है और रसोईदार के पेट में प्रवेश कर गई है। पाव घन्टे तक फिर आशा देखी, फिर भी उसका नामो निशान नहीं। अब खिजला कर माणिक ने निश्चय कर लिया कि डाक्टरी और वैद्यक दोनों दवाएं अपूर्ण हैं। वह फिर औषध की तरफ गया। अब यूनानी दवा की बारी आई। एक शीशी उठाई और एक खुराक 'जवारिशे मुस्तगी' को उड़ा गए। और तेली के बैल की तरह फिर चक्कर काटना शुरु किया। जिस प्रकार बनचारी ढोलक, झांझ आदि

से 'भागा हो ! हो !' आदि चिल्लाते हुए बाघ को शिकारी के सन्मुख भगा लाते हैं उसी तरह अन्त में आधे घन्टे बाद विविध दवाओं द्वारा क्षुधा देवी के दर्शन हुए। बिना दवा खाये ही इतनी देर में तो भूख स्वाभाविक रीति से लगी होती, पर हमारे यह पहलवान माणिक चन्द को तो यूनानी नुसखा ही सर्वोत्तम सिद्ध करना था। बस, फिर तो उन्होंने दो ग्रास खा ही लिये॥

खाने पीने बाद अब पाचक औषधियों की बारी आई। अंग्रेजी मेडिसिन और देशी औषधियों पर से तो अब श्रद्धा उठ ही गई थी, अतएव उन्होंने यूनानी पाचक-दवाओं से श्री गणेशाय नमः किया। पहिले उन्होंने एक गोली खा ली, फिर आधे घन्टे तक वैद्यक की पुस्तकों में से शक्ति की दवाएं पढ़ीं। फिर मुंह में से कुछ फीका फीका पानी गिरा। लोगों का विश्वास है कि युवावस्था मे निद्रा अधिक होती है और कहा भी है कि,

"लड़कपन खेल में खोया,
जवानी नींद भर सोया,
बुढापा देखकर रोया।"

परन्तु विश्वविद्यालय की पाठ्य पुस्तकें पढ़ पढ़ कर शरीर तो सुखा डाला था, दूसरे मन्दभागी माणिक चन्द से जिस प्रकार क्षुधादेवी का बैर था उसी प्रकार नित्य निद्रा देवी से भी बिछौने पर युद्ध होता। पहाड़ी मिश्र जी महाराज की नाक में मानो बरसाती मेढ़क टर्रा रहे हों। कहिये कौन अच्छा है? कलम वाला कि कलछुल वाला? एक तरफ डिग्री प्राप्त विद्वान माणिक चन्द को, जिसने अभ्यास के पीछे अपनी शरीर मिट्टी में मिला दिया है, और जो क्षुधा और निद्रा के लिये

जलहीन मीन हो रहा है और संसार का दया पात्र बन रहा है, और दूसरी ओर उसके रसोईये को जिसने भूख लगने पर खा लिया है और निद्रा आने पर खुर्राटे मार रहा है, देख यह स्मरण हो आता है कि,

"सुख सोवे संसार में, भाग्यवान कोहार,
चिन्ता बांधी चाक में, धन्य धन्य अवतार।"

मुश्किलों से यदि निद्रा आई भी तो उसमें अनेक स्वप्न दीखते हैं। वे भी ऐसे कि 'स्वप्न विचार' की सैकड़ों पुस्तकों के पत्रे उलट डालिए तौ भी उनके सिर पैर का पता ही न चले। पल में पहाड़ पर चढ़े तो क्षण में खाई में गिरे। घड़ी में सिर में थपकी लगी तो पल भर में एकाएक चिल्ला उठे। रात भर बड़बड़ाहट, "आप से उतृण नहीं हूं, पिता जी ऋणी हैं, स्त्री नदी पर न जाय, तुलाराम सच्चा है, जापान जाना है, जाति वाले दुष्ट हैं, कपड़ा अच्छा है, विचारी को याद रखना इत्यादि इत्यादि" भयंकर स्वप्नों से विचारा कई बार 'बाप रे बाप' करके जाग उठता। अन्त में देखा तो सवा छः बज गये हैं। सात बजे नौकरी पर हाजिर होना था। इसलिये विचार भवन (पायखाना) में गये तो वहाँ से भी खुलाशा होकर नहीं आये। दतुअन कुल्ला कर दो लोटे पानी सिर पर उड़ेल लिये और कपड़े बदले, चाह के साथ में कुनैन की एक गोली ले ली, टिंचर की शीशी जेबे के हवाले की और बूट पहिन दुकान का रास्ता पकड़ा। सो कर उठे कि एक घन्टा हो गया तिस पर भी हाथ मुँह अच्छी तरह साफ नहीं हुए॥

पाठकगण! पढ़े लिखे सरस्वती के उपासक को एक रात का नमूना आपको दिखाया है। वैसी एक ही रात नहीं बल्कि साल में तीन सौ पैंसठ रात्रियां हमारे अधिकतर ग्रेजुएटों की

ऐसे ही कटती हैं। माणिक की तो नित्य की यही दशा थी। अरेरेरे! विचारे के उत्तमोत्तम विचार, स्वदेशभक्ति, धर्मसम्बंधी खोज और रिवाज सुधारने की उत्कंठा, राजकीय बिषयों की बारीकियां, देशाटन का उत्साह विज्ञान और तत्वज्ञान के रहस्य कवियों के उत्तमोत्तम पद और लेखकों के नस नस अभिप्राय जिनको उसने दीर्घकाल के असीम प्रयत्न और परिश्रम से अपने मस्तिष्क में भरे थे वे सब अर्थ सम्बन्धी चिन्ता और औषधियों की क्षुधा के कारण पानी में मिल गये। इस समय तो पढ़ने लिखने का फल यही मिला कि दिन भर दूसरे की दुकान में कागज छीपना और औषधियोंद्वारा अन्न पचाना, जिसका नाम आनन्द और शान्ति है, उसका तो स्वप्न भी दीन माणिकचन्द को नहीं दिखाई पड़ता था। दिन भर की झंझट के बाद यदि घड़ी आध घड़ी जरसे वार्तालाप करने को मिलती तो उसी से माणिक का मन बहलाव हो जाता॥

चतुर्थ प्रकरण

जरबानू का घर

एदलजी की दूकान एक महल की तरह बड़े विस्तृत स्थान में थी। उसके एक हिस्से में गोदाम बना था, जिसमें नाना प्रकार के मालों की सैकड़ों पेटियां पड़ी थीं। बीचका कमरा जो प्रायः सौ फीट लम्बा और पचास फीट चौड़ा होगा उसमें सब बिक्री का माल विविध प्रकार की कांच की अलमारियों में बड़ी सुघड़ता और सुन्दरता से सजा कर रखा हुआ था।

सिरे पर दो कमरे थे, एक में अंग्रेजी आफिस था और एक में एक पारसी गुजराती भाषा में सब बही खाता रखता था। यह पारसी व्यक्ति एदलजी का दूर का सम्बन्धी था। एदलजी का इस पर पूर्ण विश्वास था। दूकान में और भी दो पारसी नौकर थे, जो दोनो एदलजी के गोलोक वासिनी बहिन के पुत्र थे। एदलजी की धर्म-पत्नी भी कई वर्ष हुए परलोक सिधार चुकी थीं। पर सरल चित्त सद्‌गृहस्थ ने स्वप्न में भी दूसरे विवाह का ध्यान न किया था। जर अपने पिता की कैसी प्यारी और दुलारी होगी, यह अब विचक्षण पाठकों से छिपा नहीं रह सकता। अतएव इस पर विशेष विवेचना करने की कोई आवश्यकता नहीं है। एदलजी जरको अपना धन, सम्पति, इज्जत, आबरू, जीवन सब कुछ समझता था। जर यदि आकाश के तारे माँगे तो भी एदलजी सर्वस्व देकर जरकी इच्छा पूर्ण करने में आनन्द मानता था। उसी तरह जर भी एक देवी का अवतारही थी। उसका शरीर ईश्वर ने दया की मिट्टी से गढ़ा था। परमार्थ के लिये वह अपना जीवन हथेली पर लिये फिरती थी। दूकान के पिछले भाग में एक विशाल बङ्गला था, जिसके अगले भाग में एदलजी स्वयं रहते थे और पिछले भाग में उन्होंने अपनी एकलौती बेटी जर के लिये तीन कमरे खूब अच्छी तरह सजा धजा दिये थे। आगे का बड़ा कमरा जर की बैठक थी, जिसके दरवाज़े के एक तख्ते पर लिखा था। "बिना आज्ञा अन्दर आना मना है।" एदलजी स्वयं यदि यहां जाते तो पहिले बाहर से पूछ लेते। इस कमरे में घुसते ही सामने एक चांदी के सुन्दर चौकठे में मढ़ी हुई तपेसभान जरतुस्तजी की पूरे आकार की तसवीर शोभायमान था उसके नीचे एक सुन्दर टेबुल पर चांदी का धूपदान रखा था। जिसमें चन्दन की सुगंध निरन्तर निकल कर मस्तिष्क को

शान्त करती और चित्त में शुद्धता और भक्ति उत्पन्न करती थी। हजरत जरतुस्त के चित्र के एक ओर जर की मृतक माँ मेहरबानू की ओर दुसरी और उसके पिता पदल जीं का सुन्दर चित्र अच्छे चौखठे में शोभायमान था। ये तीनों तसवीरें बंबई के आर्ट स्कूल के अध्यापक के कलम के नमूने थे। इन्होंने ही जर को चित्रकला सिखाई थी। इन चित्रों में केवल प्राणार्पण ही करना बाकी था। माता पिता के तसवीरों के नीचे जर एक एक धूपबत्ती निरंतर जलाती। दरवाजे के दोनों तरफ संगमरमर के टेबुल ऐसे शोभायमान थे कि देखनेवाले दातों उंगली दबाते। ये छोटे पर बहुमूल्य टेबुल एक ही पत्थर में से गढ़े गए थे। दोनों पर एक एक फूलदान ताजे फूलों से सुशोभित रखे थे। इसके अतिरिक्त दोनों कोने में दो लकड़ी की टेबुलें इस से कुछ बड़ी होशियारपुर के कारीगरों की बनाई हुई थीं, जिनमें हाथीदांत के बेलबूटे बड़ी बारीकी से बनाये गए थे और जो हिन्दुस्तान के गौरव का नमूना था। इन मेजों पर छोटे छोटे चौखटों में मढ़ी हुई रंग बिरंग की फोटोग्राफ रखी थी। मखमल की कोच और कुर्सियों पर रेशमी गिलाफ चढ़ी हुई थीं। बीचोबीच एक बिल्लौरी तिरपाई और चार घूमने वाली बिल्लौरी कुर्सियाँ रखी थीं, ठीक उसी के ऊपर प्रायः दो सौ मोमबत्तियों का झाड़ लटक रहा था, जिसकी आभा टेबुल और कुर्सी पर पड़ने से कमरे की शोभा चौगुनी बढ़ जाती थी। भीत में विविध प्रकार के सुन्दर चित्र जड़े थे। प्रत्येक चित्र में काश्मीरी चारांक काम के उत्तम दुशाले लटकते थे। दो सुन्दर आलमारियों में चीन के बने हुए हाथीदांत के, दिल्ली की कारीगरी के नमूने चांदी के, तथा लखनऊ की कारीगरी के द्योतक मिट्टी के खिलौने सजाए थे। एक हाथी-

दांत के टेबुल में शतरंज के खाने खुदे थे और उस पर हाथी-दांत ही के मोहरे भी रखे थे। थोड़े में यही समझना चाहिये कि एक राजसी बैठक की तरह जर की बैठक थी।

दूसरे कमरे में चित्रकला सम्बन्धी अनेक सामान पड़े थे। उस कमरे में सदा ताला बन्द रहा करता था, क्योंकि उसमें जर किसी की तसवीर बना रही थी। उसमें अभी बहुत काम बाकी था। जर रात में केवल एक घन्टा, उस कमरे को अन्दर से बन्द कर के दो बड़े लम्प जला, बड़े ध्यान और प्रेम से वह चित्र तैयार करती थी। तीसरा कमरा उसका शयनागार था। उसमें दो आलमारियाँ थीं जो नाना प्रकार के अमूल्य वस्त्रों से खचाखच भरी थीं। दोनों आलमारियों के बीच एक दरवाजा था जिस में एक छोटा कमरा था वह जर का शृंगार घर था, उस में दो बड़े दर्पण, और ब्रश, कंघी, तेल, फुलेल, अतर आदि के बकस रखे थे।

पाँचवाँ प्रकरण

जरबानू की स्थिति।

माणिकचन्द्र की एक रात पाठकों ने देख ही लिया है, आज जर की एक रात देखिए। आठ बजे हैं। सात आठ आदमी ब्यालू करने टेबुल पर बैठे हैं। साढ़े नौ बजे तक सब ब्यालू कर अपने अपने स्थान पर चले गए। जर बानू भी सब से साहेब सलामत कर के अपने पिता की आज्ञा से अपने कमरे में गई। आगे बैठक के दरवाजे जर ने अन्दर से बन्द कर दिये। पहिले पहिल उस

ने आलबम (चित्राधार) का पेंच खोला। एक फोटो को जिस के नीचे 'केवल तुम्हारा माणिक' लिखा था, पांच मिनिट तक देखती रही। फिर आलबम बन्द कर पेंच भी लगा दिया और अपने चित्रकला के कमरे में गई। वहाँ उसने अपने हाथ से दो लम्प जलाये। रंग और कलम से उसने एक आइल पेन्ट बस्ट पर थोड़े समय तक काम किया। मूर्ति चित्रित करने का चौगुना समय उसका असल फोटो देखने में जाता। पांच मिनिट एक टक से फोटो देखती और एक दीर्घ श्वांस लेती, एकाध मिनिट काम कर फिर पाँच सात मिनिट तक फोटो देखने में लीन हो जाती। दस बज के पेंतीस मिनिट पर वह उठी, रूप कुंजा के कमरे का ताला बन्द करने के बाद कपड़े बदलने वाले कमरे में गई दीपक को तेज किया। एक सन्दूक खोल उसमें से एक लकड़ी का चीनी कारीगरी का खूबसूरत बक्स निकाला। उसका ढकना खोला, उस पर दिल्ली के सुप्रसिद्ध चित्रकार नज़ीर हुसेन के हाथ की हाथी दाँत पर चित्रित हुई उसी व्यक्ति की तसवीर जड़ी हुई थी, जिसकी कि तसवीर जर अभी दो जगह देख कर यहाँ आई है। कपड़े लत्ते बदल बड़ी सावधानी से उसने उस तसवीर को थोड़ी देर देख कर बक्स बन्द किया और बड़े सन्दूक में उसको रख एक ठंडी श्वांस ली और फिर अपने शयनागार में आई। पलंग पर बैठी। तकिये में से उसने एक जापान का बना हुआ रेशमी लिफाफा निकाला! उसमें रखी तसवीर को वह कभी अपनी छाती से लगाती, कभी उसको चूमती और कभी हाय मारती, कभी माणिक कभी प्यारा, कभी जिगर आदि शब्द उच्चारती थी। बारह बजते बजते वह निद्रा देवी के वशीभूत हो गई।

उसने सवेरे उठते ही उस तसवीर का दर्शन किया, चुम्बन

लिया, तत्पश्चात् तकिये की गिलाफ में बड़ी सावधानी से रखा। स्नान आदि के बाद कुछ व्यायाम कर, स्वच्छ वस्त्रादि कार धारण किया और हजरत जरथोस्त की तसवीर के आगे जा खड़ी हुई। धूपदानी में लोबान रखा और प्रायः एक घण्टे तक पवित्र मनसा वाचा और कर्मणा द्वारा अहुर्मजद का स्मरण कर, पवित्र जद अवस्था का पाठ किया। फिर जर ने न मालूम क्या प्रार्थना की कि उसके मृगनैन से अश्रुधारा बह चली। आलबम खोल, तसवीर देखी फिर उसको बन्द कर दिया साढ़े आठ बजे उसने अपने कमरे का दरवाजा खोला। वार्निंग बेल* पर दो थपके लगाए कि दो मिनिट में चाह और नाश्ता हाजिर हुआ। तदुपरान्त बम्बई से आई हुई डाक को जो नौकर ले आया था हाथ में लिया। उसमें कोई चिट्ठी नहीं पर तीन समाचार पत्र थे। जर ने पहिले अंगेजी समाचार पत्र खोला और उसमें से दरियाई सम्बन्धी सब लेख बड़े ध्यान से पढ़े। फिर गुजराती भाषा के समाचार पत्र को बारी आई, उस में भी उसने उसी विषय के समाचार पढ़े। उसने एक बार फिर उठकर उस तसवीर को देखा और आराम कुर्सी पर पड़ गई। अखबार पढ़ने में उसको दस बज गए। तब वह पिता के पास गई और वहाँ पाँच घन्टे तक बात चीत कर अपने कमरे में चली गई। फिर उस तसवीर को देखा, और "प्राइड एण्ड प्रेजुडिस†" नाम की पुस्तक पढने लगी। ग्यारह बजे उठी, तस्वीर देखी, आलबम्ब बन्द किया और माणिकचन्द के पास गई। वहां एक घन्टे तक उसने उस के काम में सहायता दी। बारह बजे भोजन

---

* नौकर चाकर को सूचना देने वाली घंटी।

† अंगरेजी का एक प्रसिद्ध उपन्यास।

करने के टेबुल पर जा बैठी। एक बजे उसने अपने कमरे की सिट-किनी चढ़ाई और एक पत्र लिखा, लिफाफे में उसको बन्द किया और एक ठंडी श्वांस लेती हुई अपने शृंगार घर गइ। वहाँ उसने एक पेटी खोली और उसमें इसको छोड़ दिया। उस पेटी में ऐसे कागजों के ढेर पड़े थे। तीन बजे से साढ़े चार बजे तक वह फिर माणिक के पास जा बैठी। काम काज से निवृत्त होने पर जर ने माणिक चन्द से पूछा—

"मिस्टर माणिक चन्द क्या आपने किसी समाचार पत्र में अपोलो जहाज के पता लगने की चर्चा पढ़ी है"

"श्रीमती आपके इस नित्य के प्रश्न के कारण मुझे प्रति-दिन पुस्तकालय में जा दस बीस पत्र पढ़ने पड़ते हैं, पर अभी तक तो मेरी समझ में कोई सम्वाद नहीं आया है"

"आलराइट, साहब जी," जर एक दीर्घ श्वांस से चलती बनी। वह अपने पिता के पास नित्य के नियमानुसार बरामदे में जा बैठी।

एक दिन जब जर नियमित रूप से ग्यारह बजे माणिक के पास गई तो माणिक ने अपने जेब से एक समाचार पत्र के वि-शेष अंश का तार निकाल जर के हाथ में रखा। जर ने उस में दरयाई समाचार पढ़े। हर्ष से उछलती हुई वह माणिक की तरफ घूम कर बोली, "थैंक यू, मिस्टर माणिक चन्द। आप के अनुग्रह और सुसमाचार के लिये मैं आप की यह तुच्छ भेंट करती हूं। इसे आप स्वीकार करें।" प्रसन्नचित्त जर ने एक गिन्नी माणिक चन्द के हाथ में रखी। माणिक चन्द को तो लगभग एक महीने का वेतन मिल गया। उसने जर को को-टिशः धन्यवाद दिए और फिर अपने काम में लग गया। आज उसके हाथ पैर में भी रोज से अधिक बल मालूम होता था।

आज उस को भूख भी अगर न लगे तो क्या आश्चर्य ! उस अंग्रेजी समाचार पत्र में लिखा था कि " अपोलो की खोज में गए हुए एक जापानी स्टीमर ने उस को दूर से देखा है । आशा है कि शीघ्र ही उसका पता लग जाएगा " इतनी ही बात को जर ने कम से कम पचीस बार तो पढ़ा होगा । फिर वह कोमल हरिणी की तरह कूदती हुई अपने कमरे में चली गयी ।

दूसरे दिन जब जर आफिस में आई तब उसने यह बात छेड़ी कि "माणिकचन्द जी, अपीलो कैसा प्यारा नाम है, क्यों ? क्यों आपको भी यह नाम प्रिय लगता है न ? हमारे वम्बई में इसी नाम का एक बन्दर है । सन्ध्या समय वह तो स्वर्गतुल्य हो जाता है । यह भी आप जानते होंगे कि रोम ग्रीस के गायन तथा वैद्यक शास्त्र के देवता का नाम भी अपोलो था । अहा हा ! मैं अपोलो स्टीमर देखने गई थी, वाह ! वह ऐसा सुन्दर, नवीन और साफ था मानो वास्तव में तस्वीर के अन्दर बिजली की रोशनी थी । उस पर प्रतिदिन बैंड बजता था । लोग कहते थे कि चलने में भी अपोलो बड़ा तेज था, अधिक हिलता डुलता भी न था । उसमें यूरोप से एक राजकुमार भी जो हिन्दुस्थान देखने आये थे, बैठे थे । मेरे कितने सम्बन्धी भी उसमें थे । परमेश्वर उस स्टीमर को कुशलता पूर्वक किनारे लगाए । उसमें एक लेफटिनेन्ट लेफटिनेन्ट...हा, बराबर अंग्रेज पारसी और बहुत से लोग थे । हे दयासागर—किसी के भाई किसी के पुत्र और किसी के...हाय—सब पर दया कर । सब की इच्छा पूर्ण कर । अरेरे ! दुनियाँ दुनियाँ !"

माणिक ने आज जर को पहिले ही पहल इस प्रकार चिंतित और शोकाकुल देखा था । उसने यह सोचा था कि जो पारसी

उसमें थे उस में सेठ के भी कोई सगे सम्बन्धी होंगे, जिस के कारण जर इतनी दुःखी होती है। उस विचारे ने अपने कृपालु मालिक की पुत्री को धीरज देने के लिये कहा, "श्रीमंती ईश्वर की लीला कोई नहीं जानता, तथापि अपने को मंगल कामना करनी चाहिए; यही अपना धर्म है। आगे ईश्वर की इच्छा प्रबल है। यों तो स्टीमर के साथ लाइफ बोट वगैरह मनुष्य के बचाव के साधन अनेक हैं, पर हा, माल असबाब की विशेष हानि—"

लाइफबोट का नाम सुन जर आशापूर्ण हो बोल उठी, "ठीक है, ठीक है, माणिकचन्द! आप सच कहते हैं, लाइफ-बोट और सहायतार्थ गए हुए और भी स्टीमर बराबर हैं। दीनबन्धु दया करेंगे, अवश्य दया करेंगे। लाइफबोट जिन्दगी का सहारा—कैसा मधुर शब्द है! लाइफबोट—अरे लाइफ्-बोट!" गल्ल अधीर की तरह जर अपने कमरे में दौड़ गई। माणिकचन्द मुंह वाये रह गया कि आज जर को क्या हो गया है। पाँच बजे जब सेठ से बिदा होने माणिक गया तो, सेठ ने कहा कि कल छुट्टी है। कारण कि कल जमशेद जी नवरोज है।

छठवाँ प्रकरण।

लाहौर—म्यूज़ियम

आज पारसियों का 'नवरोज़' तेहवार है। लाहौर निवासी सब ही पारसी आज हँसी खुशी में मग्न हैं। मध्याह्न बाद सब खाकी कर लाहौर का म्यूज़ियम (अजायबघर) देखने गए थे। म्यू-ज़ियम में एक तरफ़ एक प्रदर्शिनी देखने में छोटे बड़े लगभग

चालीस आदमी जुटे थे, दूसरी तरफ़ उन लोगों को देखने वाले सौ सवा सौ नागरिक एकत्र हुए थे। कितने सरल स्वभाव के मनुष्य बालकों ही को खड़े देख रहे थे। थाने पर ख़बर पहुंची की पांच सिपाही बन्दोबस्त करने के लिए आ धमके। ईश्वर की लीला अपरम्पार है, देखो सज्जन पुरुषों से परमेश्वर के नाती गोती पुलिस वाले भी काँपते हैं। देखते ही देखते भीड़ छट गयी। स्त्रियाँ भाँति भाँति के वर्त्तन, वस्त्र और चित्र विचित्र दृश्यों को देखने में लगी थीं। पुरुष लोग सिक्के धातु और शिल्पकारी ही की प्रशंसा में तन्मय थे। बालकवृन्द साँप बीछू, अजगर, नेवले आदि पशु-पक्षी देख देख कर खूब आनन्दित होते थे। परन्तु जरबानू के माथे न मालूम कौन सा भूत सवार था कि वह सब से अलग हो, जहाँ जहाज़ नौका आदि के काठ के बने हुए नमूने रखे थे वहीं जा एकान्तिस्त हो उनको देखने लगी।

आफ़त पर आफ़त! माणिकचन्द जी आज विशेष अजीर्ण के कारण डाक्टर के घर गए। बीस रुपये के वेतन में माणिकचन्द डाक्टर का बिल रोज उठ कर कैसे चुकाता होगा? डाक्टर वाछा जर के सगे मातुल थे। एदलजी ने जर के कहने से उन के नाम एक पत्र लिख दिया था कि माणिकचन्द के दवादारू का बिल दुकान खाते लिख रुपये मंगा लिया करना। माणिक जब वाछा के घर पहुंचा, तो वहाँ पता लगा कि वे एदलजी के यहाँ गये हैं और एदलजी के यहाँ से यह खबर मिली की म्यूजियम देखने गये हैं। गरज़ का मारा माणिकचन्द वहां पहुँचा। वहाँ वह क्या देखता है कि लाहौर भर के पारसी लोग सपरिवार मौज उड़ा रहे हैं। माणिकचन्द ने विनयपूर्वक सेठजी को सलाम किया। एदलजी माणिकचन्द

को देख प्रसन्न हुए। उन्होंने यह सोचा कि इसका आना भी यहाँ अच्छा ही हुआ, अगर यहां कोई कामकाज पड़ेगा तो अड़चन न होगी। जर के मन की बात तो वही जाने। वह माणिकचन्द को देख कुछ मुसकुराई, कुछ आनन्दित हुई और पुनः अपने विचार सागर में गोते लगाने लगी।

'सलाम साहब' कह कर माणिक डाक्टर के पास पहुंचा। डाक्टर ने हँसकर इतना ही कहा कि आज दवादारू की आवश्यकता नहीं है। इस दुनियां की खूबियों को देखिये और कुछ घूमिए फिरिए, भूख आपको स्वयं लगेगी।

घूमते घूमते जर वहाँ जा पहुंची, जहाँ प्राचीन मूर्तियों का संग्रह था। ज़मीन खोदते समय कहाँ से ये मूर्तियाँ मिलीं, आदि का वृत्तान्त एक तख्ते पर लिखा था, जो जनरल कनिंघम के नाम का था। एक मनुष्याकार प्रतिमा, जिसका नीचे का अंग खंडित था, उत्तम कोटि की शिल्पकारी का एक अच्छा नमूना था। इस मूर्ति के गलेमें एक दुपट्टा और माथे पर मुकुट था। एक हाथमें राजदंड था और दूसरा हाथ कंधे परसे टूट गया था। बालक डर से, स्त्रियां अरुचिसे और पुरुष वर्ग लापरवाही के कारण उसके पास खड़े न हुए। तख्तेका लेख पढ़ने से यह पता चला कि यह मूर्ति पेशावर ज़िलेके अन्तर्गत युसुफ़ जई नामक स्थानमें प्राप्त हुई थी। उसके समीप ही एक दूसरी प्रतिमा रखी थी, जिसका चेहरा पहले वालों से मिलता जुलता था। इसके आस पास दो और मूर्तियाँ पल्थी मार कर बैठी थीं। तीसरी मूर्ति एक दलाल के पुतर पर विराजमान थी। इसके दोनों हाथ टूट गये थे, बाकी का सब आकार ठीक ठीक था। चतुर शिल्पकारने उस मूर्तिका चेहरा ऐसा बनाया था कि यह प्रत्यक्ष विदित होता था कि यह मूर्ति किसी से

मय खाती है । माणिकचन्द बाछाके पाससे हो कर घूमते फिरते वहीं पहुंचा जहाँ जर खड़ी हुई प्राचीन मूर्तियों को देख रही थी । जर ने माणिकचन्द को देखते ही पास आ कर पूछा,

"मिस्टर माणिकचन्द ! यह किसकी प्रतिमा है ?"

माणिक ने बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया, "श्रीमती ! यह गौतम बुद्धकी प्रतिमा है ।" यह पेशावर ज़िले में प्राप्त हुई है । देखिये, कनिंघमने भी यह लिख दिया है ।"

भोली भाली जर ने प्रश्न किया "बुद्ध? क्या यह, जिसको हम लोग बुधवार कहते है उसी की प्रतिमा है ?"

माणिकने मुंह बनाकर कहा, 'नहीं साहबा' । (माणिक ने तो योंही मुंह बनाया था, पर जर के हृदय पर,उसके दोनों होठों ने, जो हँसते समय बड़ी विलक्षणता से मुड़जाते थे, कुछ विचित्र ही प्रभाव डाल दिया) 'बुद्ध एक महात्मा ऋषिका नाम है । यह मूर्ति कपिलवस्तु के राजकुमार की है जिनका नाम गौतम ऋषि था, और जो न्याय शास्त्र के कर्त्ता थे । जिस दिन से ये महापुरुष अन्तर्द्धान हुए, उसी दिनसे लोग इनको बुद्ध कहने लगे । इन्होंने संसार के लाभ के लिये सब माया-मोह त्याग दिया था और मुक्तिके द्वार की सच्ची खोज की थी । इस गौतम बुद्ध के करोड़ों शिष्य हैं । चीन, जापान और बर्मा में लोग इन्हीं का धर्म पालते हैं ।"

जर ने बड़ी आतुरता से पूछा "तब तो हाँगकाँग में भी यही धर्म प्रचलित होगा ?" यदि अपोलो स्टीमर बच जायगा तो हम लोगों को सब जानने में आयेगा, क्यों ?"

माणिक ने जर के भोले भाले प्रश्न पर कुछ मुसकुरा कर कहा, "यों तो आज कल वहाँ अनेक जहाज़ जाते हैं । पर धर्म

सम्बन्धी खोज जो कुछ पहिले हो चुकी है वही पढ़ने में आती है। मालूम पड़ता है आपने बौद्ध धर्म सम्बन्धी कुछ पढ़ा नहीं है, इसी से ऐसा कहती हैं। हाँ, अच्छा याद आया आजके तार से पता लगा है कि अपेलो बहुत भयानक स्थिति में है। चार पाँच स्टीमरें उसकी सहायतार्थ जा चुके हैं। यथा साध्य वे मुसाफिरों की प्राणरक्षा की पूर्ण चेष्टा करेंगे।" इतना कह माणिकने अपने जेब मेंसे एक अंग्रेजी समाचार पत्र निकाल जर के हाथ में रखा। आज तो जरबानू के यहाँ त्योहार था, इसलिये उसके पिताने उसके जेब रुपयोंसे भर दिये थे। सुसमाचार सुनकर जर ने अपने पोल (चोली विशेष) के जेब से दो गिन्नियाँ निकाल माणिकचन्द के हाथ में धरीं। माणिकचन्द बारबार की इस बात से बहुत शर्माकर बोला,—

"जरबानू! आज पीछे अब मैं आपको समाचार पत्रोंके सम्बाद लाकर नहीं दूंगा, कारण कि आप मुझे सहज में पुरस्कार दे कर लज्जित करती हैं। इससे तो यही सिद्ध होता है कि मैं सोने की मोहरों की लालचसे ही अखबारों में से खबरें खोज कर आप को देता हूं। नहीं साहब, नहीं, मैं इतना लालची और नीच नहीं हूं, मैं तो अपने सेठ की पुत्री की आज्ञा—

जर ने बात काट कर कहा "लीजिये भया न, अब मैं भविष्य में नहीं दूगीं। अस्तु, मैं यह पूछती हूं, माणिकचन्द, कि पेशावर में तो सब मुसलमानों ही की बस्ती है, वहां से जो यह मूर्ति निकली सो क्या वे भी मूर्तिपूजक थे?"

माणिकचन्दने कहा, "बात यह है कि मुसलमान भी पहिले मूर्ति की पूजा करते थे। हम लोगोंके तीर्थ-स्थान मक्कामें हजारों मूर्तियां थीं। परन्तु जब हज़रत मुहम्मद साहब पैगम्बर हुए, तब उन्होंने यह प्रथा बन्द कर दी और सब मूर्तियों के टुकड़े

टुकड़े करा डाले। पेशावर ज़िले में बुद्ध की मूर्ति निकलने से यह सिद्ध होता है कि वहाँ भी बौद्ध मतका प्रचार रहा होगा।"

माणिक ने विचार किया कि आज सेठजी का त्योहार है और अपने पास में पैसा भी आ गया है, अतएव सभ्यता के अनुसार सेठजी के यहाँ कुछ मेवा मिठाई भेजनी चाहिए। पस, वह धीरे से बाहर निकल आया। पास ही, चौमुहानी पर से वह दो रुपये की मिठाइयाँ और तीन रुपये के सूखे मेवे ले आया और सेठ के सम्मुख बड़ी नम्रता से भेंट रखी। सेठ ने प्रसन्न-बदन हो उसके सिर पर हाथ फेरा और भेंट स्वीकार की। म्यूज़ियम देखने के बाद सबों की इच्छा शाली मार बाग़ देखने की हुई। सब गाड़ियों पर लद कर वहाँ पहुंचे। लड़के वहाँ के बन्दरों को देख कर कूदने लगे, स्त्रियाँ मोर के रङ्गों पर मोहित हो गईं और पुरुष शेर, चीते और बाघों से छेड़छाड़ करने लगे। ज़ूर तालाब के किनारे जा खड़ी हुई। तालाब को देखते ही उसके मनमें समुद्र की तरंगें उठने लगी। उसने एक वृक्ष से पीठ टेक खड़ी होकर अपने जेब में से उस अंग्रेज़ी अख़-बार को निकाला और उसके पढ़ने में तल्लीन हो मनमाने अर्थ लगाने लगी। माणिक भी तालाब के किनारे खड़ा खड़ा बगलें और बत्तखें देख रहा था। तालाब के बीचोबीच तार का एक जाल बना हुआ था। उसमें भाँति भाँति के जलचर पक्षी उड़ते और किलोलें करते थे। माणिक को यह दृश्य देखते ही हिन्दू संसार का स्मरण हो आया। वह मन ही मन गुनगुनाने लगा, "अहा! हिन्दुओं के घर संसार और धर्म इस तार के जाल की तरह और हिन्दू लोग इन पक्षियों की तरह हैं। क्योंकि उड़ते फिरते, खेलते-कूदते, सब कुछ इतने ही घेरे में करते हैं। उन्नति की परवाह न करने वाले तो उन पंखहीन बगलों की तरह हैं।

उनको उड़ना भी नहीं है और उड़ सकते भी नहीं। पर उन्नति का विचार करने वालों पर यह धर्म की जाल कैसी? जब तक यह जाल काट कर आने जाने का कोई मार्ग न बनाया जायगा, तब तक ये कैदी की तरह दिया हुआ टुकड़ा खाएँगे और पड़े रहेंगे। अहो ऋषियो! अहो मुनियो! अपना उद्देश्यपूर्ण सनातन धर्म सुनाइए। इसके बाद ज़र और माणिक में फिर थोड़ी देर तक बुद्धदेव की मूर्त्ति-सम्बन्धी वार्तालाप होता रहा।

"माणिक चन्द! वह कैसा हिम्मत वाला और जितेन्द्रिय होगा जो अपने राज-पाट, धन-दौलत, ऐश-आराम, हुकूमत आदि को लात मार सगे सम्बन्धियों से मुंह मोड़ साधु हो गया! पारसी में ऐसे व्यक्ति को 'तारेक दुनियाँ' कहते हैं। आप के संस्कृत में, मैं समझती हूं, इसको त्यागी कहते होंगे।"

माणिक ने ज़र का कहना कुछ आश्चर्य की मुद्रा से सुन कर उत्तर दिया, "जी हाँ!" आज माणिक की बदहज़मी दूर हो गई थी। इतने में सब कोई घूमते फिरते तालाब पर आए और सन्ध्या हो जाने के कारण घर जाने की तैयारी करने लगे। अन्धकार होने के पूर्वही सब पदलजी के घर पहुंच गए। माणिक ने भी आज्ञा लेकर अपने घर का रास्ता पकड़ा। ब्यालू करके कुछ पढ़ने लगा, पर इसके दिमाग़ में तो ज़र के विचार चक्कर काट रहे थे। यह क्यों रात दिन अपोलो की चिन्ता में पड़ी रहती है? तत्सम्बन्धी सम्वाद देने पर यह अशर्फियाँ क्यों लुटाती है? क्या किसी के प्रेमपाश में यह फँसी है? क्या इसके हृदय की किसी के साथ गाँठ पड़ गई है? इस प्रकार की माणिक के मन में नाना प्रकार की तरंगे उठीं, पर यह बिचारा कुछ भी निश्चय न कर सका।

यहाँ माणिक अपने ही रङ्ग में चूर था, उधर पदलजी के

घर सब लोग खा पीकर अपने अपने घर चलते बने। अब बाप और बेटी में गपशप आरम्भ हुई। " पिता जी आज के तार आपने पढ़े या नहीं ? अपोलो की सहायतार्थ चार जहाज़ भिन्न भिन्न बन्दरों से रवाना हुए हैं। कितनों का यह ख्याल है कि परब्रह्म परमेश्वर किसी की भी आत्मा को कष्ट नहीं पहुंचाएगा।"

पदलजी ने झूलेदार कुर्सी में झूलते हुए कहा, " हां बेटा ज़र, मैंने भी इसको पढ़ा है। अखबार वाला लिखता है कि माल असबाब सहित,जहाज़ नदी के पेंदे में लग गया,पर यात्रियों के प्राण बचने की सवा सोलह आने उम्मेद है। लाइफ़ बोटों पर लोग उतार दिये गए हैं। यह भी कहना है कि उसमें यूरोप का एक राजकुमार भी है।

"पिता जी, मैं सोचती हूं कि होरम जी के खानदान वाले ईश्वर पर श्रद्धा नहीं रखते। इन लोगों की तो दो तीन स्टीमरें हैं, इन्हें तो अवश्य ईश्वर पर श्रद्धा रखनी चाहिए।"

ऐसी बातें प्रायः दस बजे तक होती रहीं। तत्पश्चात् ज़र अपने पिता की आज्ञा से अपने शयनागार में गई। आज उसने चित्रकला वाले कमरे में जाकर जागरन करना उचित न समझा। उसने अपने प्रेमपात्र की तसवीर देखी और 'जन्द अवस्था'* हाथ में ले बैठी। अहा हा ! आशा और प्रेम मनुष्य से क्या नहीं करा सकते ! जिन पारसियों के पैग़म्बर ने मूर्ति-पूजा की आज्ञा नहीं दी है, जिस इस्लामी मत में मूर्ति पूजा का निषेध है, उन्हीं लोगों के बालकों को जब चेचक निकलती है तब उनकी माताएँ सीतला देवी की मूर्ति पूजने जाती हैं। पुरुषों को इसकी जानकारी होते हुए, बच्चे के प्रेम से, स्त्री की पूर्ण श्रद्धा के कारण,

---

* ज़रतुश्त नामक पारसी धर्म की प्रख्यात पुस्तक।

और जीवन की इच्छा से 'नहीं नहीं कहते,' जाने हीं देते हैं। सभ्य अंग्रेज़ों की मेम साहिबा भी अपने बच्चों को अनेकबार नमस्कार कराने लाती हुई देखी गई हैं। प्रेम के वश में पड़ी हुई मूर्ति अथवा कबरों की अनेक मानमनौती करते हैं। आर्य समाजी लोग मूर्ति को खण्डित करते हैं, मूर्ति पूजा का निषेध करते हैं, तथापि वे अपने गुरुदेव "दयानन्द" को पुष्प हार चढ़ाते और प्रातःकाल उनके दर्शन करते हैं। एकेश्वर-वादी प्रार्थना-समाजी भी केशव, राममोहन और देवेन्द्र के दर्शनों के लिये लालायित रहते हैं। कर्मवादी भी पार्श्वनाथ की मूर्ति के पूजन में किलोलें करते हैं—अपने प्रेम पात्र के टपके ज्योतिष, रमल, नजूम आदि दिखाते हैं। इन सब को मिथ्या समझते हुए भी किसी के प्रेम पाश में फँसे हुए व्यक्ति यह सब करते हैं। माता-पिता पुत्र के लिए,पुत्र माता-पिता बहिन भाई या पत्नी के लिये, सम्बन्धी सम्बन्धी के लिये, मित्र मित्र के लिये प्रेमी प्रेयसी के लिये, चकोर चन्द के लिये, स्त्री पुरुष के लिये पुरुष स्त्री के लिये, कंजूस पैसा के लिये,पतङ्ग दीपक के लिये और भ्रमर पुष्प के लिये जो कुछ करता है वह केवल प्रेम के प्रभाव के ही कारण। ठीक कहा है—

"भूत लगे मदिरा पिये, सब काहू सुधि होय,
(परन्तु) प्रेम सुधारस जिन पियो, तिन न रहे सुधि कोय।"

हमारी कथा की नायिका जरबानू, यद्यपि एक सुधरी हुई, सुशिक्षिता, पढ़ी लिखी और नई रोशनी की नवयुवती है, तथापि इस समय प्रेमपाश में बँधी होने के कारण वह भविष्य देखने की चटपटी में पड़ी है। टिप्पणी, पंचांग, या और कोई साधन तो था ही नहीं। अतएव जो कुछ 'जंद अवस्था में निकले वही भविष्य फल होगा; यह विचार कर

उसने 'जन्द अवस्था' का ग्रन्थ हाथ में लिया, और मन को स्थिर और शान्त कर बोली, "ए पाप दादार ! ए सचाई के परखने वाले, ए मेरे दीन मज़हब के पेशवा 'जरथुंस्त' जो मेरा प्रेम सच्चा और पवित्र हो तो इस पवित्र ग्रन्थ में से मेरे पथ-प्रदर्शक वाक्य निकलें।" इतना कह उसने ग्रन्थ खोला और उसको निम्नलिखित वाक्य मिलेः—

"प्रत्येक विपत्ति टल जाती है। संसार संकटों का द्वार है। कोई भी ऐसा नहीं है जिसपर संकट न पड़े हों। अन्त भले का भला है। मन को व्याकुल नहीं करना चाहिए ? ईश्वर की इच्छा होगी तो अवश्य होगा। मनुष्य के उद्योग का फल क्या होना चाहिए ? धन दौलत से सुख और शान्ति नहीं मिलती, परन्तु बुद्ध की तरह दृढ़ता और श्रद्धा से शान्ति और मुक्ति की प्राप्ति होती है।"

इतना पढ़ पर जर विचार सागर में गोते लगाने लगी और बहुत देर के बाद जब उसको ध्यान आया तब वह बड़-बड़ाने लगी, "फल तो अत्युत्तम निकला।" बुद्ध का नाम पढ़ वह बहुत आश्चर्यित हुई कि जरतुस्ती धर्म में भी उस महात्मा का नाम निकला, जिनकी प्रतिमा आज ही देखी थी। अब तो उसे और भी खलबली पड़ी कि कब सवेरा हो और माणिक चन्द से बुद्ध के विषय में पूछूँ।

सातवां प्रकरण।

परीक्षा! बस!! परीक्षा परीक्षा!!!

भारतवर्ष की यूनिवर्सिटियां शिक्षा और कला सिखाने वाली नहीं है। उनका काम तो केवल परीक्षा लेने का है। एन्जिल का वाक्य है कि "ईश्वर किसी को परीक्षा न कराये।" ब्रिटिश-राज्य के आरंभ में सरकारी कर्मचारियों के दो दल हो गए थे और उन लोगों में मत भेद पड़ गया था। प्रथम स्वार्थान्ध अर्थात् अपना ही पेट भरने वाले का यह कहना था कि भारत वर्ष को शिक्षा द्वारा सुधारने का काय बड़ी जोखिम का है। इनके प्रतिद्वन्दी दूसरे मत वालों का यह विचार था कि "भारत वर्ष को उच्च कोटि की शिक्षा द्वारा सुधारने से सरकार को बहुत लाभ होगा, अशिक्षित और जंगली अवस्था में उनको रहने देने से ये लोग बड़े उपद्रवी और आफत की पुड़िया हो जायँगे, और जब तक वे सुशिक्षित नहीं होंगे तब तक अपनी राजकर्तृ सरकार के गुण और महिमा न जान सकेंगे। लार्ड मेकाले ने भी इस कथन का बहुत समर्थन किया था। इस विषय पर उन्होंने कई लम्बे चौड़े मौलिक लेख लिखे थे। उनका यही कथन था कि भारत वष को अच्छी शिक्षा द्वारा सुधारना, यही अंग्रेजी सरकार का मुख्य कर्तव्य है। ईश्वर ने जिन लोगों को अंग्रेज़ी राजकर्ताओं का आश्रित बनाया है उन लोगों का भला करने से ही वह कर्तार प्रसन्न होगा। आखिरकार इस महापुरुष के विचारों की तूती बोली विपक्षियों का पराजय हुआ। स्कूल और कालेजों की स्थापनाएँ हुईं। ऊंचे प्रकार की शिक्षा दी जाने लगी। इस शिक्षाने

धीरे धीरे ऐसा भयंकर रूप धारण किया कि इसने भारत-वासियों की समस्त शारीरिक सम्पत्ति नष्ट कर दी।

माणिक चन्द का नाजुक शरीर म्यूजीयम के सैलसपाटे का परिश्रम सह न सका। घर आते ही उसका शरीर टूटने लगा और हाथ पैर फटने लगे। साधारण ज्वर भी आ गया जो आज कल के विद्यार्थियों के नाम रजिस्टरी कर दिया गया है। अन्न छाती ही पर रहा। तमाम रात ओकाई आई, स्वप्न तो जन्म कुण्डली ही में लिखे थे। प्रातः काल उठ कर वह डा० वाछा के घर गया।

अभी भोर ही था। लोगों की भीड़ नहीं हुई थी। डा० वाछा ने माणिक की नाड़ी देख हँसते हंसते कहा, "मिस्टर एम० ए० दास! आप के लिये मैं किस आसमान से दवा लाऊं? आप के शरीर का प्रत्येक अंग क्षीण हो गया है। ताकत की दवा क्या असर कर सकती है? सब बदन कम-जोर पड़ गया है। अन्दर की मशीन काम करती ही नहीं। यन्त्र का यन्त्र ही जब बिगड़ गया है तो डाक्टर बिचारा क्या करे और दवाई भी किस किस पर अपना प्रभाव दिखाये? फेफड़ा, छाती, भेजा, अँतड़ियां पेट, कलेजा आदि सभी तो बिगड़ गये हैं। शरद ऋतु आरंभ हो तो आप से काड लिवर आइल का सेवन कराऊं। 'पर मैं आप से पूछता हूं, मिस्टर इम्तेहान चन्द' डा० वाछा ने हँसते हँसते पूछा "आप ने आज तक कितने इम्तेहान दिये हैं।"

माणिक ने मुंह बना कर कहा, "आपने मेरा नाम ठीक खोज निकाला। डाक्टर साहब, वास्तव में, हम लोगों का इम्ति-हान चन्द अथवा परीक्षा दास नाम उचित ही है, क्योंकि हम लोगों ने पढ़ा पर गुना नहीं—वेढ़िया ढोर ही रहे। बड़े बड़े

हिसाब लगाते पर 'दमड़ी का डेढ़सेर तो तीन दमड़ी का कितना' कोई पूछे तो मुंह बाय के खड़े रहें। व्यवहार में तो हमलोग भैंसके भाई और गांव के जमाई की तरह शिक्षित रहते हैं। भूगोल खगोल, भूमध्य समुद्र और डोवर की खाड़ी आदि कहां है सो सब जानते हैं पर गंडकी, घाघरा, और सतलज, के प्रताप का नाम निशान तक नहीं जानते। टापू (द्वीप) की व्याख्या कर सकते हैं, पर उसको पहिचान नहीं सकते। केवल परीक्षा सो परीक्षा ही! अलिफ़, बे, पे, टे, जीम और ए, बी, सी, डी और तुम भी सिड़ी। लीजिए अब आप को मैं अपनी परीक्षा की कथा सुनाता हूं। एक प्रकार से तो मेरा समस्त जीवन ही परीक्षा में व्यतीत हुआ है, और अब जो कुछ बाकी है वह परीक्षा के दण्ड भोगने में बीतेगा। लीजिये अब आप गिनिए।

(१) प्रथम परीक्षा पहिली पुस्तक में हुई,—अलिफ़, बे, टे, जिसको वर्णमाला कहते हैं, उसमें हुई, इस अवस्था में मुझे लंगोटी बाँधने का भी शऊर न था। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस समय एक अंग्रेज़ जब मुझ से प्रश्न पूछता था तब मेरा ध्यान घर पर आये हुए खरबूजों में लगा था। गाय को दो दिन का एक बछड़ा था उसको खिलाने के लिये मन उतावला हो रहा था। बला जाने उसने क्या पूछा और मैंने उसका क्या उत्तर दिया। पीछे से यह पता लगा कि पास हो गये हैं, तब मन कुछ प्रसन्न हुआ।

(२) अब मैंने वर्णमाला समाप्त कर गद्य और पद्य पढ़ना आरम्भ किया। अब खेलते कूदते बालकों को साढ़े पांच घन्टे तक कैदी रहना पड़ता था। उमर तो पाँच ही वर्ष की थी, पर लड़का शीघ्र पढ़ लिख ले और बाप के दिन फेरे, इस वास्ते छः छः घन्टे की कैद आरम्भ हो गई। चित्त तो हमेशा

खेल कूद में लगा रहे।, लेकिन वजरबट्ट की तरह एक काने मास्टर की डर से पढ़ापढ़ी चलती रही ।। साल बिता सब गणित आदि की परीक्षा हुई, उस समय हमलोग छः छः घन्टे तक भूखे प्यासे तड़पते रहे। घर आने पर भूख मर जाती, न खेलना अच्छा लगता न खाना ही, अब परिश्रम की मात्रा बढ़ गयी। मास्टर घर से पन्ने के पन्ने लिख लाने को कहता, यदि न लिख ले जाएं तो बेंतों की सड़ासड़ी होने लगती। प्राण सदा सूला पर रहते थे। उसी में सुकामना का आरम्भ हुआ।

(३) ज्यों त्यों करते तीसरे दर्जे की तीसरी परीक्षा आई। इस बार एक गिटपिट सिटपिट करने वाला इन्स्पेक्टर हम लोगों का परीक्षक होकर खून पीने आया। जब तक इन्स्पेक्टर पास न करे तब तक हम लोगों की तीसरे दर्जे के क़ैद खाने से मुक्ति न होती। इन्स्पेक्टर क्या थे साक्षात् परमेश्वर ही थे। उनको सैकड़े पीछे वीस लड़कों को पास करते भी ज्वर आ जाता। जिस दिन उस साहेब का स्कूल में आगमन हुआ था उस दिन लड़कों की हालत विचित्र थी। उनकी दशा ठीक वैसी ही थी जैसे भूखे शेर के आगे बकरों के झुण्ड की होती है। अस्तु आप का सेवक तो राम राम करते पास. हुआ। अभिमन्यु की तरह चक्रव्यूह का एक फाटक तो तोड़ा।

(४) चौथे वर्ष चौथे दर्जे में गए। वार्षिक परीक्षा मास्टरों ने ली। पास, डाक्टर पास। परन्तु पुस्तकों का बोझ सवासेर हो गया। इन में कुछ कापियां, कुछ व्याकरण, भूगोल और अर्थ की पुस्तकें आदि थां।

(५) पांचवें वर्ष में अंग्रेजी के साथ देशी गणित व्याकरण भूगोल कविता, लेखा और हिसाब किताब आदि की अन्तिम परीक्षा इन्स्पेक्टर ने ली थी। इस बार पहिली बार के इतना

भय ते। नहीं लगा था, पर परीक्षा बहुत कठिन हुई थी, इतना ते। ध्यान में है। इस वर्ष वही इन्स्पेक्टर न थे, वे छुट्टी पर थे। उनके सहायक इस बार परीक्षक थे। "बड़े मियां ते। बड़े मियां छोटे मियां सुभान अल्लाह।" उस भले आदमी की तबीयत जन्म भर लड़कों को पढ़ाते पढ़ाते ऊब गई थी। यहां तक वह इस कार्य से घबड़ा गया था कि मानो वह किसी को उठा कर खा जायगा या स्वयं ही आत्मघात कर लेगा। वह अपने शिक्षण-काल में लड़कों को पीस डालने ही में अपना बड़प्पन समझता था। जितने अधिक लड़के फेल हों उतना ही अधिक परीक्षक चतुर माना जाता। इस परीक्षा में ते। भगवान हीने मेरी रक्षा की, नहीं ते। तीन सै। और साठ हाथ के कुंए में ते। गिर ही चुके थे। एकाध ही नम्बर से लाज रही। यदि एक भी नम्बर की कोताई हुई होती ते। सब किये कराये पर पानी फिर जाता और पास भये हुए विद्यार्थी हंस हँस कर प्राण लेते से। अलग ही। माता पिता कच्चे का कच्चा ही खा जाने को तैयार होते और वर्ष भर पिष्टपेषण में बीतता से। अलग। पर ईश्वर ने गिरते गिरते लज्जा रख ली। मेरे क्लास में रूपये में बारह आने लड़के फेल हुए थे। माता पिता ने प्रेम से छाती से लगाया और नौकरी के किले बांधने लग गए।

(६) छठें वर्ष के आरम्भ में देशी पढ़ाई से पिंड छूटा। अब अंग्रेजी का नम्बर आया। आपने सुना ही होगा कि अंग्रेजी में प्रवेशिका परीक्षा बड़ी विचित्र होती है, देशी भाषा के पांच दरजे पास किये हों और इन्स्पेक्टर की सर्टिफिकेट भी मिली हो तथापि अंग्रेजी की प्रवेशिका परीक्षा का भूत सिर पर सवार ही रहता है। फिर भी स्कूल मास्टर की शक्ल कैसी मेढक की सी होती थी कि टेढ़ी मेढ़ी गरदन करके प्रश्न करते

और लिखाते और दम पर दम प्रश्नों की भरमार कर देते। और इन प्रश्नों में कभी कभी सेर और मन के भी हिसाब आ जाते, जिन को हमारे काने मास्टर ने कभी सिखाया भी न था।

देशी भाषा की परीक्षा एक गढ्ढा है जिसमें प्रति वर्ष हजारों आदमी गिरते हैं। यदि पास हुआ तो विद्यार्थी आगे के जगलों में भटकता फिरे और यदि फेल हुआ तो अपने भाग्यके नाम रोकर बैठे।

(७) पाँच वर्ष देशी भाषा में माथा मारकर छठवें वर्ष अंग्रेजी में पहुंचे। पहिली, दूसरी और तीसरी, इस प्रकार तीन वार्षिक परीक्षाएँ और मासिक परीक्षाएं मास्टर लेते। वे सब मिलाकर उन-चालीस परीक्षाएं हुईं। इसमें यदि देशी भाषा की छः परीक्षाएँ मिला दी जाँय तो पैंतालीस परीक्षाएँ होती हैं। सौभाग्य से अन्तिम परीक्षा में हम अच्छे नम्बर से पास हुए थे। हाय! मुझ को नहीं मालूम था कि ये नम्बर मुझे मेरी उम्र की एक एक घड़ी के बदले में मिलते हैं। अरे, रे, किस वास्ते मैंने इतना परिश्रम किया? अब मुझे उन दिनों पर शोक होता है। माता-पिता, इष्ट मित्र, संगी साथी, सगे-सम्बन्धियों की ओर से मुझे धन्यवाद सूचक पत्र मिले! इस परीक्षाने मेरा दिमाग़ फेर दिया। अब मुझे इस बात का चसका लगा कि एन्ट्रेन्स की परीक्षा में भी इतने अच्छे नम्बर से पास होऊं। लालच ने मेरे मन में अपना घर बना लिया। मेरी उत्कट इच्छा थी कि मुझे छात्रवृत्ति (स्कालरशिप) मिले। सेठ साहेब! पैंतालीस परीक्षाओं के बाद अब फिर मासिक परीक्षाओं का झगड़ा लगा। चार वर्षोंमें अड़तालीस परीक्षाएं दे अन्तिम एन्ट्रेन्स की परीक्षा दी। यह हुई आपके तरफ़ की मैट्रिक। यहां नम्बर मिला कर चौरानवे

परीक्षाएँ हुईं । छात्रवृत्ति के लोभ से मैंने जो; कड़ा असीम परिश्रम किया था उसका परिणाम यह हुआ कि परीक्षा में मैं ही प्रथम हुआ । यह मेरे सत्यानाश का द्वितीयं मूल कारण हुआ। कैसे कैसे कठिनसे कठिन विषयोंका अभ्यास करना पड़ता और कैसे विद्यार्थीयों की शक्ति के परे उनसे काम लिया जाता, ये सब दुखड़े फिर कभी सुनाऊँगा, आज तो केवल परीक्षाओं की गिनती ही कीजिये । अन्त में छात्रवृत्ति प्राप्त करने की जो उत्कट इच्छा थी वह पूर्ण हुई। इसके पश्चात फर्स्ट आर्ट में पदार्पण किया। कालेज में त्रैमासिक तीन परीक्षाएं वर्ष में दीं। अन्तिम परीक्षा ग्रेजुयेट होने के लिये दी। चार वर्ष की कालेज की बारह परीक्षाएं और युनीवर्सिटी की दो कुल मिला कर चौदह परीक्षाएं हुईं। अब सब मिला कर एक माला के १०८ मन के पूरे हुए। फिर एम० ए० की तैयारी हुई। वहाँ माला का सुमेर एम० ए० भी पूरा हुआ। विशेष क्या वर्णन करूं ? मैंने कैसे कैसे कष्ट उठाए क्या क्या खाया कैसी मेहनत की और किस प्रकार पन्द्रह वर्ष की घोर तपस्या के उपरान्त एम० ए० का पद प्राप्त किया आदि यदि कहने बैठूं या लिखूं तो एक अच्छा किस्सा तैयार हो जाय मैं बार-बार अपने मित्रों से इस बात का अनुरोध करता हूं कि वे मेरे मरने पर मेरे शव को जलावें नहीं पर एक कब्र में गाड़ दें और उस कब्र पर इतना अवश्य लिख दें:—

"देश को आबाद करनेवाली व्यापारिक और कलाकौशल की शिक्षा को लात मार सामान्य मनुष्य को एम० ए० पास कर के भूखे रहने से मार जाना हजार बार श्रेष्ठ है !"

डाक्टर माणिक चन्द की बातों से दयार्द्र हो कर बोला, "अहो मिस्टर इम्तिहान चन्द ! आप का किस्सा बहुत दया

जनक है, आप धन्य हैं जो आप कहीं भी फेल न हुए। यदि एकाध बार फेल होते तो आप की परीक्षाओं की संख्या सवा सौ तक पहुंच जाती। आप की अवस्था के आधार पर मैं एक लेख मेडिकल गज़ट में लिख भेजूंगा और पंजाब यूनीवर्सिटी के विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-सम्बन्धी असावधानी का एक नमूना जन साधारण को दिखाऊंगा। ऐसी शिक्षा से है ईश्वर अनभिज्ञ ही रह कर अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना मैं श्रेयस्कर समझता हूं।"

माणिक गद्‌गद् होकर बोला—"आप सच कहते हैं, डाक्टर साहब ! पर आप पंजाब ही को क्यों बदनाम करते हैं ! मैंने तो पढ़ा है कि सब प्रान्तों में यही हाल है। तिसपर आज कल की पढ़ाई इतनी महँगी हो गई है कि गरीब विचारा तो आधी मंज़िल ही में हो बीतता है। यदि यह मरता नहीं तो मेरी तरह बीमार होकर खाट सेता है। प्रत्येक दर्जे की इतनी अधिक फीस और पाठ्य पुस्तकों की भरमार के मारे तो नाकों दम हो गया है, उस में यदि किसी गरीब के तीन-चार बेटे हुए तो उसकी खोपड़ी ही गंजी हो जाती है। यह कापी लाओ, वह किताब लाओ, यह खरीदो और वह खरीदो—लायब्रेरी का चन्दा, क्रिकेट आदि खेलकूद का चन्दा, प्रिन्सिपल और प्रोफेसर के स्वागत और विदाई आदि के अवसर पर चन्दा आदि भरते भरते तो बिचारे निर्धन पिता की हड्डी सूख जाती है। प्रति वर्ष पुस्तकें बदली जाती हैं। विलायत के नये नये साहब आकर शिक्षा विभाग के बड़े साहब का बूट पालिस करते हैं, बड़े दिनों में भेंट की टोकरी पर टोकरी पहुंचाते हैं; फिर क्या, पाठ्य पुस्तकें बदल गईं, इसलिए इतिहास, भूगोल और गणित के नए नए ग्रन्थ खरीदने पड़ते हैं।

एक की पढ़ी हुई पुस्तक दूसरे के काम की नहीं। क्या यह पीड़ा कुछ कम है? हिन्दुस्तान में कितने के ग्रन्थ हैं—मेकमिलन, लौंगमैन, केशल, दत्त, फ्रेजर आदि दर्जन के दर्जन प्रकाशकों में लागावाटो चल रही है। इनके अतिरिक्त और जो नए पैदा होते जाते हैं उनका तो कहना ही क्या! उन लोगों के लिये विद्यार्थी ही सर्वस्व हैं—कामधेनु हैं। फिर भी आप देखिए, इतने परिश्रम का फल क्या? बीस रुपये की नौकरी! यूनीवर्सिटी में से प्रति वर्ष हज़ारों बकरे सूख कर तबाह से होकर बाहर निकलते हैं, उनमें से भाग्य ही से दो चार का चित्त व्यापार में लगता है। कितने तो मारपीट कर कहीं क्लार्क हो गए, या मास्टर हो गए, या पुलिसमैन अथवा पोस्टमैन (डाकिया) हो गए। देश में 'साहित्य-शिक्षण और साहित्याध्ययन अवश्य होगा पर पेट के गढ़े की पूर्ति तो उससे नहीं होती। जर्मनी, जापान, फ्रान्स, अमेरिका के विश्वविद्यालयों की शिक्षापद्धति ही अलग है। वहाँ कला-कौशल, व्यापार, धन्धा, साहित्य, वेदान्त आदि की पढ़ाई ही निराली होती है। शिक्षा का क्या अर्थ है, डाक्टर साहब, यह सब तो हमारे प्रोफेसर ने न कभी हम लोगों को बतलाया न वे स्वयं ही इसको जानते थे। आजकल तो शिक्षा का अर्थ "पढ़ो तोता राम राम" की तरह तोता रटान ही है। इससे देश का कल्याण कैसे हो सकता है? आजकल तो यूनीवर्सिटी में से "टके सेर भाजी और टके सेर खाजा" की तरह सभी घोड़े बारह टके के निकलते हैं फिर देश की दुर्दशा का हाल क्या पूछना है। सचमुच इस देश के विद्यार्थियों की बड़ी दुर्दशा है। पन्द्रह पन्द्रह वर्ष तक जी तोड़ कर परिश्रम करें, मां बाप के हजारों पर पानी फेरें, और लम्बी चौड़ी क्या-

धियाँ प्राप्त करें फिर भी अंग्रेज़ी राज्य में नौकरी के लाले पड़े रहते हैं ।.उद्योग-धन्धे की तो शिक्षा ही नहीं दी जाती । तेली, तमोली, हज्जाम, दर्ज़ी सब ही ग्रेजुएट, इसलिये सब ही को सरकारी नौकरी चाहिये । क्या यह दरिद्रता कुछ कम है ? नौकरी मिली मियाँ जी रोज के बिसरिया हुए । लाल मुँह वालों के लड़कों को देखिए । वे कैसे लालबुन्द बने रहते हैं । थोड़ी शिक्षा, थोड़ा परिश्रम पर नौकरी का लाभ अधिक । अनेक हिन्दू विद्यार्थी ऐसे हैं, जिन्होंने सैकड़ों परीक्षाएं पास की हैं और मेरी तरह अपनी शारीरिक सम्पति को नष्ट कर नौकरी के लिये दर दर भकटते हैं । वास्तव में ईश्वर की लीला ही विचित्र है, और कहा भी है कि,

"पढ़े फ़ारसी बेचे तेल, यह देखो कुदरत का खेल !"

"मिस्टर इम्तिहान चन्द ! आप जो कुछ कहते हैं वह अक्षरशः ठीक है । आजकल के शिक्षितों की यही हालत है । इस देश के कालेजों और स्कूलों में जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती है जापान में उससे बिलकुल भिन्न प्रकार की शिक्षा दी जाती है । मैं जब जापान गया था, तो वहां मैंने यह प्रत्यक्ष देखा था । यहाँ के मास्टर शिक्षक की तरह नहीं पढ़ाते बल्कि परीक्षक की तरह इतिहास १२ से १७ पन्ने तक, व्याकरण ६ से १८ तक, भूगोल में पंजाब के पर्वत और नदियाँ, और कविता में १५ से २५ सतर तक, देख लेना की-शिक्षा देते हैं । मास्टर की पढ़ाने के नाम से तो नानी ही मर जाती है केवल एन्ट्रेन्स में अपना पानी दिखाने के लिये जो कुछ परिश्रम करें वही बहुत है ! विद्यार्थी पढ़े तो उसका नसीब । कालेज में भी विद्यार्थी पास होते हैं तो अपने भाग्य ही से । प्रोफेसर जो पढ़ाकर पूरा करते हैं वह तो देखने ही के लिये ।

नवीन विलायती।भूसा यदि यहां के कालेजों में भरा जायगा तो उससे क्या यहाँ का अन्न पकेगा ? मास्टर इक्तिहान चन्द, यदि मैं एन्ट्रेन्स-बेन्ड्रेस, मेडिकल कालेज के फेर में पड़ता तो सौ वर्ष पर भी मेरा कहीं ठिकाना न लगता । डाक्टरों की कमाई भी कुछ मुझ से छिपी नहीं है । मैंने देशी और विलायती दोनों औषधियों का मनन किया है, जिसके कारण आज मैं इतना सुखी हूं ।"

"डाक्टर साहब, मैं क्या कहूं ? जिसको आपने पीड़ा बताया वह कुछ भी पीड़ा नहीं है। यूनीवर्सिटी भर की सब पाठ्य पुस्तकें पढ़, किसी भी परीक्षा में फेल हुए बिना एक सौ और नव परीक्षाएं देना, एक कोमल मस्तिष्क के युवक के लिये, क्या कोई साधारण बात है ? पढ़ने और पढ़ाने की दोनों पद्धतियां त्रुटि युक्त हैं, पर शिक्षा में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य इतना है कि memory, Power of Imagination, and Power of judging (स्मरण शक्ति, तर्क बुद्धि, और विवेक) का खूब विकाश करना चाहिए । आजकल की शिक्षा पद्धति का यह प्रभाव है कि अन्तिम दो (तर्क बुद्धि और विवेक)के नाम से शून्य और स्मरण शक्ति की तो तो बा ! परीक्षा हुई कि यद्यद् पठितं तद्तद् मुखे समर्पित प् । रट्टू पंडित जी की तरह पढ़ लिया, समझे ? इसी प्रकार की पढ़ाई में आजकल की शिक्षा सार्थक समझी जाती है । जो भूगोल और खगोल मुझे पढ़ाया गया है, उससे व्यवहार में मेरा कौन उपयोग होता है ? आज मुझे उसका एक अक्षर भी याद नहीं है । छः छः घन्टे बालक विद्यार्थियों को स्कूल में बन्द रखने से वह भी स्कूल की दरिद्र इमारत में-उनका शरीर रक्त हीन, निर्जीव, अस्थि पिञ्जर हो जाता है । प्राचीनकाल में पचास साठ वर्ष के पूर्व किसी

को भी चश्मे की आवश्यकता न पड़ती थी। परन्तु आजकल तो बारह बारह वर्ष के पिल्लों को आप तेली के बैल की तरह चश्में चढ़ायें हुए देखेंगे। यह वर्तमान् शिक्षा-पद्धति का प्रभाव है या और कुछ? परीक्षा की चिन्ता उनको ऐसी लगती है कि कितने तो परीक्षा-भवन में बेहोश हो जाते हैं, कितने परीक्षा देने के दूसरे ही दिन चार आदमी के कंधे पर यात्रा करने चले जाते हैं, और जो जीते रहते हैं, उनका उत्साह और उमंग तो पहिले ही से फिरंट हो जाता है। जब कि शिक्षित यूरोपियन भर पेट पेन्सन खाते हैं, तीस पैंतीस वर्ष तक भारत सरकार को खूब चूसते हैं, उस समय तक हमारे देशी भाई या तो नौकरी ही करते करते 'राम राम सत्य है' की अवस्था को प्राप्त होते हैं, नहीं तो एकाध वर्ष पेन्सन खाई न खाई कि साफ। बाबा आदम के पास पहुंचे। यह यहाँ की शिक्षा की खूबी है! जो कुछ होता है सब पेट के लिये। जब दिल में ही कुछ नहीं रहता तो देश की चिन्ता कहाँ? जर्मनी, जापान और अमेरिका अनेक सुविख्यात पुरुषों को उत्पन्न करते हैं, पर डाक्टर साहब, बहुत खोजने पर भी आप को बम्बई, कलकत्ता, प्रयाग, बनारस आदि नगरों की हमारी यूनीवर्सिटियों में से भाग्य ही से दस पाँच ऐसे प्रसिद्ध ग्रेजुएट मिलेंगे, जिनके लिये लोगों को गौरव होगा और जिन्होंने देश का कुछ भी कल्याण किया है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का निवाहना ही टेढ़ी खीर है। जब तक इस शिक्षा प्रणाली का संशोधन नहीं होगा और जब तक प्रजा को देश के विषय का अच्छा ज्ञान प्राप्त नहीं होगा तब तक देश में उन्नति होना भी असम्भव है और विद्यार्थियों की अवस्था भी सुधरना बड़ी मुश्किल बात है।"

डाक्टर वाछा ने कहा, "मिस्टर इम्तिहान ! आप ठीक कहते हैं, मेरे यहाँ जो विद्यार्थी दवा लेने आते हैं उनमें से अधिकतर की बीमारी का वाइस आजकल की शिक्षाप्रणाली ही है।" "डाक्टर साहेब, जितना कष्ट पढ़ने में होता है उतना ही परीक्षा देने में भी होता है। परीक्षक मानों सत्य का कांटा ही लिये बैठे रहते हैं कि आधे और एक एक नम्बर के लिये विद्यार्थियों की सब मिहनत पर पानी फेर देते हैं। गणित का उत्तर-पत्र जांचेंगे. पर रीति नहीं देखेंगे। विद्यार्थियों ने क्या लिखा है वह भी नहीं देखते, केवल उत्तर देखते हैं। उसी में विद्यार्थी का नसीब फूटता वा चर्राता है। कहते हैं कि कितने परीक्षक तो खेलवाड़ की तरह पत्रों को उछालते हैं उनमें जो उलटे सो विलटे और जो चित्त सो चेतते हैं। इस प्रकार का तो परीक्षा का फल नजर आता है। कितने परीक्षक ताक नम्बर वालों को पास करते हैं और जूस नम्बर वालों को फेल करते हैं, जैसे, एक तीन, पांच, सात पास हुए और दो चार, छः आठ फेल। इस प्रकार भी कितने परीक्षक पास फेल करते हैं। कितने परीक्षक अपनी स्त्री को, कितने अपने मित्रों को उत्तर पत्र जांचने को दे देते हैं, और कितने नींद में सोये हुए झोंका खाते जाते हैं और विद्यार्थियों के पत्र जांचते जाते हैं और इसी प्रकार विद्यार्थियों के भाग्य की कसौटी करते हैं। ऐसी परिक्षाएं पास करना कितना मुश्किल है इसका अनुभव तो जिसको होता है वही जानता है—

'जिसके पैर न फटे बेवाई,
वह क्या जाने पीर पराई।'

वास्तव में यदि वर्त्तमान् शिक्षा प्रणाली प्रचलित रहेगी तो यूरोप वालों को भारतीय विद्यार्थियों के लिये नए नए

अवयवों को बना कर भेजना पड़ेगा; यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो कितने लड़के अशुद्ध अक्षरों की तरह नष्ट हो जाएँगे और उनके प्रेमी, सम्बन्धियों को यावज्जीवन यूनीवर्सिटी को गालियाँ प्रदान करते ही बीतेगा। मेरे पिता ने वंश परंपरा का मर्दाना धन्धा छुड़ा कर यदि मुझे हिम्मत में पीछे और रोने में आगे वाली प्रणाली में न झोंका होता तो उत्तम होता। मैं राजपूत का लड़का हूं। टाड के लेख पढ़ने से अनेक बार मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ है कि मैं भी किसी वीर जाति का बीज हूं। पर इस समय मैं किस प्रकार अपने पेट के गढ़े को भरता हूं ? वाछा सेठ! यदि मैंने पल्टन में सात रुपये महीने की नौकरी की होती तो बहुत अच्छा होता क्योंकि तब मैं भूख लगते ही खाता और नींद आते ही सोता, और यदि मुझ में बाप-दादे के रक्त का प्रभाव होता तो मैं तलवार से अपनी उन्नति करता। पर अफ़सोस! सद् अफ़सोस!!

"औसाफ़े राजपूती तो मुझमें भी थे कभी,
एम० ए० बना के क्यों मेरी मिट्टी खराब की।"

डाक्टर वाछा ने माणिक की दशा पर रहम खाते हुए कहा "आपकी स्थिति तो बहुत समझने और उससे शिक्षा लेने योग्य है, मिस्टर माणिकचन्द!" आप के यूनिवर्सिटी की शिक्षाप्रणाली बहुत ही खराब है। बेहतर होता यदि आपने उपाधियां प्राप्त करने के लिये कोशिश न की होती। मैं समझता हूं कि मिडिल ने आप की पाचनशक्ति हर ली, एन्ट्रेन्स ने आप का दिल खराब कर दिया, फर्स्ट ईयर आर्ट्स ने आप के पेट और अँतड़ियों को खा डाला, बी० ए० ने आपको चक्षुहीन बनाया, और बचेदचाए फेफसे और भेजे को आपने एम० ए० को अर्पण किया। अब बाकी क्या रहा, लीप पोत चौका!

उस पर से आपने क्लार्क की नौकरी की। बैठे बैठे आपके खून का संचार भी बन्द हो गया। इस से मैं बेहतर समझता हूं कि अब आप परिश्रम न करें और कुछ विश्रान्ति लें। यदि हो सके तो आप कम से कम एक वर्ष सब काम काज छोड़ कर एकान्त वास करने की कोशिश करें। दवा खाने की अपेक्षा आप को हवा खाने की विशेष आवश्यकता है।"

माणिकचन्द ने भरे हुए गले से कहा, "आप क्या कह रहे हैं, डाक्टर साहब ? क्या आपने मुझे लखपंति का नाती समझ लिया है ? मैं कुछ पारसी का तो लड़का हूं नहीं, कि जाति की ओर से स्थापित अनाथालय में किसी सगे सम्बन्धी की सिफ़ारिस से जा पड़ूं। मैं तो एक ऋणी माता-पिता का पुत्र हूं और पेट में पत्थर बांध कर पढ़ा लिखा हूं। यदि मैं आज नौकरी छोड़ दूं तो बताइये माता पिता और स्त्री की क्या दशा होगी ?

'रहिमन निज मन की व्यथा, मनही राखो गोय,
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय।'

और भाग्यदेवी का मैं इतना दयापात्र सेवक हूं कि जहाँ जहाँ मैंने नौकरी के लिये पत्र भेजे वहाँ से जो उत्तर आये उनको यदि मैं सुनाने बैठूं तो लोग दाँतों अंगुली दबावें। एदल जी सेठ और उनकी पुत्री को परमात्मा चिरंजीवी बनाए कि वे मेरे ऐसे एक बेकाम माथे पड़े हुए नौकर का निर्वाह करते हैं।" इतना कहते कहते माणिक चन्द धीरज छोड़ कुर्सी पर जा पड़ा।

दयालु डाक्टर वाछा ने उसको बहुत धीरज दिया। उसके से एक डाक्टर की यथासाध्य सहायता देने का वचन दे उसने उसको अच्छी से अच्छी दवा दी। लगभग एक घन्टे की बात

चीत—और वह भी जोश की—से थक कर गिरते पड़ते माणिक अपने घर गया। उसने एक खुराक दवा पीया, पर विशेष थकावट के कारण अपनी नौकरी पर न जा सका। निराश हो बीमारी की चिट्ठी लिखी। एदल जी ने जर को वह चिट्ठी दिखाई। जर ने उसका पक्ष लिया और कहा कि आदमी ही है, बीमार भी पड़ता है। एदल जी कुछ भी न बोले। पर जर ने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि यदि पिता जी इसको निकाल भी देंगे तो मैं अपनी गाँठ से बीस रुपये महीना देकर उसकी परिवरिश करूँगी और उसको कभी भी निराश होने न दूंगी। इधर वाछा की बातों से डर कर माणिक ने रेलवे में एक सेकेन्ड गार्ड की नौकरी के लिये अर्जी दी थी। इसी प्रकार दिन बीतते गए। माणिक की अरजी मंजूर होना तो बाँझ के पुत्रोत्पत्ति के समान था क्योंकि वह स्थान तो गोरे बाप के गोरे बेटे के वास्ते अमानत था।

आठवाँ प्रकरण

माणिक चन्द का पिता गोविन्द सिंह यह चाहता था कि, यदि उसके लड़के की बहू लाहौर जाय तो उसका लड़का सुख से रहेगा। परन्तु गोबिन्द की स्त्री, माणिक की माता, प्रेम देवी यह चाहती थीं कि चाहे कुछ भी हो, पर रुक्मिणी को अपने ही पास रखना और पति के पास उसको जाने नहीं देना, और एक मज़दूरनी की तरह उससे ख़ूब काम कराना। गोबिन्द जब कभी अपनी इच्छा दर्शाता, तभी प्रेमदेवी झल्ला कर बोल उठती

कि बैठे रहिए, बैठे रहिए, ज़रा सी लड़की के हाथ में लड़के की गृहस्थी का भार सौंप कर क्या लोगों में हँसी करानी है? कौन जाने लड़की छटक जाए, या लड़का ही बहक जाए तो जाति बिरादरी में ख़ूब मुंह काला हो। उधर रुक्मिणी ने जिस दिन से उसके पति की नौकरी लगी थी, यह सोच लिया था कि अब सास ननद के त्रास से जी छूटेगा। इस बिचारी का विवाह हो हुआ था पर अभी तक वह अपने पति से बातचीत भी नहीं करने पाई थी। माणिक भी अपने अभ्यास में लीन था, इससे उसके मग़ज़ में सांसारिक सुख की पर्याप्त कल्पना न थी।

नित्य के जले भुने कटाक्षों की जलन से रुक्मिणी की शारीरिक स्थिति बिगड़ने लगी। सास का मुंह दिन भर कुप्पा सा फूला ही रहता और ननँद की नाक चढ़ी ही रहती थी। वे इसको छींकते दण्ड देतीं और चलते फिरते गालियाँ देती थीं। बात बात में वे इसके पीछे पड़ी रहतीं। मनुष्य कितना बरदाश्त करेगा? अन्त में उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। जहाँ खाना पीना अच्छा नहीं लगता, सुख से नींद नहीं आती वहाँ शरीर को कौन पूछे! एकाध बार उसने अपने नैहर भी कहलाया कि वहाँ वाले उसको थोड़े ही दिन के लिये बुला लें, पर वहाँ के लोग ऐसे रूढ़ थे कि एक कान से सुना और दूसरे से साफ़। पर वे लोग इतना तो अवश्य समझते थे कि सासननँद लड़की पर दुःख के बादल घहराती होंगी। 'ऊँचे चढ़ कर देखा तो घर घर यही लेखा' इससे वे चुप हो बैठे। मनमें बिचारते कि जब उसका पति अलग अपना घर करेगा तो सब बिपत्तियाँ दूर हो जायँगी।

गोबिन्द ने अपने भरसक पूरी कोशिश की, पर प्रेमदेवी एक से दो न हुई। आख़िरकार उसने लाचार होकर अपने पुत्र

को आठ दिन की छुट्टी लेकर घर आने को लिखा। ऐसा लिखने में उसका भीतरी मतलब यह था कि कदाचित पुत्र को देख कर उसकी माँ अपने विचार बदले और लड़के का घर बने। प्रेमदेवी यह तो चाहती न थी कि लड़के का घर फूटे। उसकी यह इच्छा थी कि बहू को अपने कब्ज़े में रक्खूँ और दासी की तरह उससे काम लूं, जिससे घर में उसका कुछ चले ही नहीं वह यह नहीं देख सकती थी कि लड़का बहू को माने, क्योंकि उसने अपने समय में भी बहूपन में वैसे ही सङ्कट भोगे थे। सच पूछो तो यह रीति परम्परा से इस वंश में चली आती थी। हिन्दू संसार में यह कोई नई बात नहीं है, इसमें कोई कलंक भी नहीं लगता। गोविन्द ने यह सब देख कर ही माणिक चन्द को उपर्युक्त पत्र लिखा था और केवल आठ ही दिनों की छुट्टी लेने की आज्ञा दी थी।

पत्र पढ़ते ही माणिक विचार-सागर में डूब गया। अभी मैंने दो तीन छुट्टियाँ ली हैं, उस पर यह आठ दिनों की एक साथ छुट्टी सेठ जी कैसे देंगे ? पत्र पढ़ते ही यह प्रश्न उसके मन में उठा। दिन भर लिखने का इतना काम रहता है कि ज़र की मदद से किसी न किसी तरह वह ख़तम होता है। दूसरा भी कोई गुमाश्ता नहीं है। एवज़ी में काम करने वाला भी कोई नज़र नहीं आता। ऐसे ही अनेक विचारों के बाद उसने अपनी एक मात्र मददगार, सलाहकार और आश्रयदात्री ज़र से अपने घर का दुःख कहा। मौक़ा देख उसने अपने घर का पत्र भी उसके आगे रख दिया और आठ दिन की छुट्टी के वास्ते विनती की।

ज़रबानू ने पूछा "ओ हो, हो, माणिक चन्द, तो आपका विवाह हो गया है ?" जिसके उत्तर में माणिक चन्द ने नीची

मजेर ने लिखते लिखते 'हाँ जी' का संकेत करते हुए माथा हिलाया। ज़र ने एक लम्बी सांस लेते हुए कहा, "आप लोग सचमुच बड़े सुखी हैं, माता पिता ने चार चावल छिड़क जो गाँठ बाँध दी, उसको निबाहने के लिये आप लोग पवित्र हृदय से अपने सुख दुःख के साथी के समान वफ़ादार रहते हैं। यह हिन्दुओं के ही भाग्य में लिखा है। आप लोगों की स्त्रियाँ भी उसी प्रकार प्रेम की मूर्ति ही होती हैं। जिसका हाथ पकड़ा वही उनका वर, बल्कि वही परवरदिगार है। कैसा धैर्य और कैसा विश्वास होता है!

माणिक चन्द्र ने कहा, "जी हाँ" हम लोगों में पुरुष की अपेक्षा हमारी अशिक्षिता स्त्रियाँ ही अधिक पवित्र, सुशीला और पति परायणा होती हैं। ग़रीब से ग़रीब स्थिति को श्रेष्ठ करके निबाहना, पति के साथ प्रेम क़ायम रखना, इन बातों में समस्त संसार की स्त्रियों पर प्रभुता प्राप्त करने वाली आर्य अबलाएँ ही कही जाती हैं। पानी भरना, बर्तन माँजना, रसोई बनाना, दलना, बीजना-चुनना, झाड़ना-बोहारना, गाय-भैंस की रक्षा करना, बाल बच्चों को पालना खेती बारी के काम में अपने पति की सहायता करना, पति के सो कर उठने के पहिले उठना, पति के भोजन करने के उपरान्त भोजन करना, और अन्त में मृत पति के पीछे जीते हुए सती होना आदि ऐसे अनेक अलौकिक गुण सम्पन्न महिलाओं को उत्पन्न करने वाली केवल हिन्दू जाति ही है।"

ज़र ने पूछा "तो क्या पुरुष भी उतने ही वफ़ादार होते हैं, माणिक चन्द्र?"

माणिक चन्द्र ने नम्रता से उत्तर दिया, "हां, श्रीमती यदि आप राजा रामचन्द्र का इतिहास पढ़ेंगी तो आपको आदर्श

की तरह स्पष्ट हो जायगा कि पुरुषों को किस प्रकार चलना चाहिये और उस महात्मा ने इन नियमों को किस उत्तमता से पाला है।"

जर ने पूछा "फिर क्या हमारे में भी ऐसे पुरुष होंगे जो अपनी स्त्रियों को रामचन्द्र की तरह जी से चाहें ?"

माणिक ने उत्तर दिया, "आप में भी ऐसे पुरुष हैं, आप लोगों में रामावतार हुआ है और वह अब भी जीवित है। राजा रामचन्द्र ने तो सीता जैसी एक ज्ञानी, विलक्षण, बुद्धिमती और सुन्दर स्त्री के साथ एकपत्नी व्रत पाला था, परन्तु हिन्द के दादा, दादा भाई नवरोजी ने, जिनके भाग में एक भोली........स्त्री पड़ी थी उसी के साथ संसार निभाया और जिस प्रकार रामचन्द्र सीता की खोज में समुद्र पार गये थे उसी तरह ये अपनी स्त्री को अपने साथ लेकर समुद्र पार गए थे। इस विषय में आप स्वयं मुझसे अधिक जानने वाली हैं, आप ने तो इस अलौकिक पुरुष के प्रत्यक्ष दर्शन तक किए हैं, मैं तो केवल कानों ही से सुनी बातें कह रहा हूं।"

जर ने एक ठण्डी साँस लेकर कहा, "मिस्टर माणिक चन्द आप बड़े स्वतन्त्र विचार के मनुष्य हैं, आपने जो कुछ कहा वह सब अक्षरशः सत्य है। मैं आप को छुट्टी दिलाने के लिये कोशिश करूँगी। मैं अब आप से पूछती हूं कि आप ने मुझसे एक दिन पूछा था कि मैं और माणिकशा ! अरे तोबा—मेरा शरीर जले मैं आप के लिये......माणिक चन्द ! क्या आप हमारे मज़हब से भी परिचित हैं ?" आप उस विषय का हमको कुछ ज्ञान दे सकते हैं ?

माणिक चन्द ने हाथ में कलम उठाते हुए कहा, "जी हाँ, यथाशक्ति, संस्कृत तथा फ़ारसी के अक्षर-ज्ञान जिसको प्रोफे-

सर बुस्सलुल मौलवी महमद हुसैन आज़ाद ने अभी प्रकाशित किया है—के अनुसार मैं तो यही सिद्ध कर सकता हूं कि हम लोग एक ही माता पिता की सन्तान हैं। पर समय के प्रभाव से हम लोग छूट से गये थे अब फिर दूसरे रूप में आ मिले हैं अतएव हम लोग एक दूसरे को पहिचान नहीं सकते।"

काम काज से निपट कर माणिक बरामदे में गया। दस पाँच मिनिट काम काज की बातचीत कर मालिक को सलाम कर घर चला गया। उसके चले जाने पर ज़र ने अपने प्रिय पिता से माणिक के विषय की बात छेड़ी।

"बाबा जी, किसी ने सोलह आना यह बात ठीक कही है कि 'आदमी वसे और सोना कसे' पहिचाना जाता है। इस माणिक चन्द को जैसा हम लोगों ने सोचा था, यह दूसरे हिन्दुओं की तरह वैसा हाथ-मुंह फैलाने वाला नहीं है और यह हमारे पवित्र जरथोस्ती धर्म को भी बहुत मानता है। तत्सम्बन्धी इसने बहुत कुछ अभ्यास भी किया है। बात ही बात में इसने तो यहाँ तक कहा कि हिन्दू और पारसी एकही माता-पिता की सन्तान हैं। बाबा जी हम लोग यदि एक दिन यह सब बातें इसके मुख से सुनें तो कैसा होगा। समय भी उचित रीति से पसार होगा और बहुत सी हमें धर्म सम्बन्धी ज्ञान की बातें भी मालूम होंगी।"

पदल जी ने इसको स्वीकार करते हुए कहा "जैसी तेरी मरज़ी।"

दूसरे दिन पदलजी के पास जापान भेजे हुए माल के बिक्री का तार आया, उसमें इनको चौदह हजार का मुनाफ़ा होने की बात लिखी थी। पदलजी एक अनुभवी और महान व्यापारी था, यह नफ़ा उसके आगे कोई चीज़ न था। माल को भेजते

समय माणिक चन्द ने इसमें पाँच छः हजार का नफ़ा कूता था और सेठ जी ने भी अपनी अंगुली पर हिसाब लगा कर आठ दस हजार का नफ़ा आँका था। आज पदलजी कुछ विशेष आनन्द में थे। इस अवसर का लाभ उठा कर समयानुकूल चतुर जर ने माणिक के हित की बातें छेड़ीं। आज पदलजी की बैठक बरामदे में हुई। आज लम्बी चौड़ी मेज़ पर सोडा, बरफ, एक बोतल शराब, और बिस्कुट के साथ में थोड़ा बहुत फल फूल भी रखा गया था। चार बजे जब दूकान के काम काज से छुट्टी पा पदलजी ने आनन्द करने को सब को बुलाया तब माणिक भी वहाँ बुलाया गया था। आज पहिला ही दिन था कि वह अपने मालिक और उनके सगे सम्बन्धी के साथ इस तरह उनके तफरीह में सम्मिलित हुआ था। वह स्वयं राजपूत की औलाद था, इससे उसको शराब पीने में कोई बाधा न थी, परन्तु वह सेठ के साथ भोजन करने में हिचकता था, तो भी उसने थोड़ा फलफूल खाया ही। तदुपरान्त और सब लोग खा-पी कर अपने इच्छानुसार घूमने-फिरने निकल गए, केवल पदलजी, जर और वृद्ध मास्टर जो पदलजी का विश्वास पात्र दूर का सम्बन्धी था—रह गये। जर ने माणिक चन्द से बड़े मधुर स्वर में कहा, "मिस्टर माणिक चन्द कृपया बतलाइये कि हमारे और आप के धर्म में कौन कौन सी समानता है इसको जानने की बाबा जी की बड़ी इच्छा है।" इतना कह कर उसने एक ऐसा इशारा किया जिससे वह समझ गया कि आज सेठ को प्रसन्न करने से आठ दिन की छुट्टी आसानी से मिल जायगी। सामने की कुर्सी पर अदब से बैठ कर कुछ आवेश में आए हुए हमारे एम. ए. महाशय ने नीचे लिखे अनुसार चर्चा छेड़ी—

"जब मैं कालिज में पढ़ता था तभी मेरे मन में आपकी चपल, सुघड़ और उद्योगी जाति के तरह तरह के विचार स्फुरते थे पारसी कौन हैं ? कहाँ से आए ? हैं, आदि प्रश्न नित्य मेरे मन में उत्पन्न होते थे। जिस किसी पारसी से मेरी भेंट होती उसी से मैं यह प्रश्न किया करता था। उस समय मुझे स्वप्न में भी यह ध्यान न था कि मेरे भाग्य में पारसी जाति की ही नौकरी की रजिष्टरी हुई है। अहोभाग्य हैं इस सेवक के जिसको आज ऐसे मालिक की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। भला ऐसा कौन मालिक होगा जो अपने सेवक को पुत्र कह के बुलावे और उसकी रत्नवत पुत्री अपने नौकर के काम में सहायता करे और उसका पिता कुछ भी न बोले बल्कि पूरी पूरी तन-खाह देता जाय ? ऐसे किस के नसीब हैं ? इस गंगा जैसी निर्मल देवी ने, जो आपके हृदय का टुकड़ा है, यदि किसी हिन्दू के यहाँ जन्म लिया होता तो हमारे जैसे नौकरों को इसके दर्शन का भी लाभ न मिला होता। हिन्दू होतीं तो अपने जनाखाने के बाहर ही कहे को निकलतीं, और इतनी सुशिक्षिता कहां से होतीं ! जिस दिन यादव राणा ने पार-सियों को अपना आश्रय दिया, उस दिन को मैं इस दीन देश के लिए बड़े गौरव का समझता हूं। संजाण गाँव का बड़ा भाग्य कि जिन बन्दर से होकर पारसी जाति वहां आ बसी। आज हमारे देश का आप की जाति के कारण बड़ा मान होता है वफ़ादारी में भी आप की जाति कुछ पीछे पड़ी हुई नहीं है।" जो जो शर्तें संजाण के राणा के साथ हुई थीं वे अभी भी आप लोगों में पाली जाती हैं और भविष्यत् में भी पाली जायँगी। गौ वध न करने का आप लोगों का उपकार हमारे हृदय में से कभी नहीं निकल सकता। ईसवी सन् ८५१ में शाह मजदेजर्द

के साथ ईरान के राज्य का अन्त हुआ । यह बादशाह क्यमुरियावंश का पैंतालीसवाँ अधिकारी था । मुसलमानों से पराजित होकर जो लोग यहाँ आ बसे है उन्होंने खेती बारी का काम अपनाया है । लगभग तीन सौ वर्षों तक वे बड़ी शान्ति से रहे । परन्तु इसके बाद यादव राणा के पौत्रों पर अलीफ खाँ एक बड़ी सेना लेकर चढ़ आया । पारसियों का खौलता हुआ खून अभी ज्यों का त्यों था । खेती-बारी करने से वे कुछ इतने कमजोर नहीं हो गए थे कि अपने आश्रयदाता पर आई हुई विपत्तियों को बैठे हुए देखा करें । अरदेशर नाम के एक शूर-वीरने अपनी अध्यक्षता में पन्द्रह सौ आदमियों का एक दल तैयार कर के दुश्मनों से ऐसा मोर्चा लिया कि इस्लामी सेना को अन्त में भागना ही पड़ा, जिसका उनको स्वप्न में भी ख्याल नहीं था । पारसियों की फ़ौज में पुरुष के भेष में कितनी स्त्रियाँ भी लड़ने को आई थीं । भागते हुए दुश्मनों का पीछा करने में जो सवार लगे थे उनमें दो चार स्त्रियाँ भी थीं । अकस्मात् एक के सिर पर से साफ़ा खसक गया और उसके लम्बे लम्बे बाल उसकी पीठ पर छितरा गए । लाचारीसे उसने अपना घोड़ा पीछे फेरा । यह घटना प्रायः पचास एक सवारों के देखने में आई थी । यह बात उड़ते उड़ते अलीफ खां तक पहुंची । दूसरी बार उसने असंख्य दल-बल से चढ़ाई की और हिन्दुओं तथा पारसियों को पराजित किया ।"

जर ने अधीरता से पूछा "इस समय क्या कोई अरदेशर जी के वंश में है ?"

माणिक ने उत्तर दिया मुझे "इसकी क्या खबर होगी, श्रीमती ?"

नवां प्रकरण

सेठ जी की फिदागिरी।

माणिक चन्द की बातों से प्रसन्न होकर पदलजी ने ऊंची आवाज़ से कहा "है, है।" "मैंने इस वंश के एक लड़के को जब वह बहुत छोटा था तब देखा था, नाम भी उसका अच्छा ही है। इस समय मुझे याद नहीं आता। क़रीब दो वर्ष हुए मैंने किसी अखबार में पढ़ा था कि वह लड़का लेफ्टिनेन्ट जनरल होकर कहीं नौकरी पर गया है। यदि मैं भूलता नहीं तो, वह हिन्दुस्तान से कहीं बाहर नौकरी पर गया है।"

ज़र की स्थिति इस समय बड़ी विचित्र हो गई थी। वह दम पर दम खींचती और बलात्कार से अपने मनोभावों को दबाती थी। कहीं उसके मन का भाव कोई समझ न जाय, इससे वह डरती हुई इधर उधर ताक रही थी।

माणिक की बातचीत फिर शुरु हुई "दूसरे सब वर्णों की उदारता पारसियों की उदारता के आगे रद्द है।" न जाति का ख्याल न पांति का ख्याल; न द्वेष न पक्षपात। जो कुछ कार्य उन्होंने किए हैं सब स्वार्थ रहित किए हैं। पाठशालाएं स्थापित कीं तो सब के लाभ के लिये, अस्पताल खोले सो प्रत्येक जाति की आरोग्यता के विचार से। दादा भाई नवरोजी और सर फिरोजशाह मेहता जैसे पुरुषों को उत्पन्न करने का मान और गौरव आप ही की जाति को......

ज़र ने बात काट कर कहा "पर मिस्टर माणिक चन्द! यह सब तो आपने केवल हमारे धर्म की प्रशंसा ही की,

परन्तु हमारे आप के धर्म की समानता, और उस अक्षर ज्ञान की तो चर्चा ही आपने उड़ा दी, क्यों ?"

माणिक चन्द ने, विषयान्तर होने के कारण कुछ शर्मा कर, जर के प्रश्न का नम्रता पूर्वक उत्तर दिया। "वह भी कहता हूं, श्रीमती।" "हमारे हिन्दू धर्म में मूर्ति पूजा का प्रचार होने के पूर्व ही हमारे पूवज वैदिक धर्म के तत्वों के अनुसार सूर्य, अग्नि, वरुण, इन्द्र, आदि नैसर्गिक विभूतियों की पूजा और प्रार्थना करते थे। हमारे धर्मशास्त्रों में इसके अनेक प्रमाण हैं। आपके धर्म में भी आज तक ये ही तत्व माने जाते हैं और उसमें मूर्ति पूजा का प्रवेश नहीं होने पाया है। जिस समय पारसियों को आश्रय दिया गया, उस समय उनके आश्रयदाता राजा ने उनसे उनके धर्म सम्बन्धी अनेक प्रश्न किये थे, जिनके उत्तर में ईरान से आए हुए पारसियों ने कहा था:—

'हे दयालु राजन्,हम अपने धर्म का वर्णन करते हैं,सुनिए! हमारे धर्म से आप को ज़रा भी भय नहीं खाना चाहिए। हम लोगों के यहां आने से आप को किसी प्रकार की भी अड़चन नहीं पड़ेगी। आर्यावर्त में हम सबके मित्र बन कर रहेंगे। आपको अन्तःकरण से यह मान लेना चाहिए कि हम लोग केवल यज़्दान परमेश्वर की आराधना करते हैं। अपने धर्म की रक्षा करने ही के लिये हम लोग मुसलमानों के पंजे से भाग कर इतनी दूर चले आए हैं। केवल धर्म रक्षा ही के लिये हम लोगों ने अपनी सब स्थावर और जंगम सम्पत्ति का त्याग किया है। इतनी लम्बी यात्रा में हमको अनेक संकटों का सामना करना पड़ा था, पर वह सब धर्म ही के लिये। गृह, भूमि, और धन आदि का जो हम लोगों ने एकाएक त्याग किया है वह भी धर्म ही

के नाम पर। हम लोग सुप्रसिद्ध जमशेद बादशाह के एक समय सर्व सम्पन्न, पर अब निर्धन, वंशज हैं। सूर्य और चन्द्र, इन दोनों आकाश की विभूतियों को हम पूज्य भाव से मानते हैं। इनके अतिरिक्त हम तीन नैसर्गिक वस्तुओं को भी पवित्र मानते हैं, वे ये हैं—गौ, जल और अग्नि। अग्नि और जल की हम-लोग एक निष्ठा से पूजा करते हैं। गौ, सूर्य और चन्द्र की भी आराधना में हम लीन रहते हैं। परमात्मा की जो जो प्रकाश रूप और अलौकिक विभूतियां हैं, वे सब हमारी पूज्या हैं।' पारसियों के कहे हुए उनके धर्म के तत्व हमारे वैदिक धर्म से कितनी समानता रखते हैं। अब मैं आप को अपने पुरातन आर्य धर्म के तत्वों को यथासाध्य विवेचन से समझाने का थोड़ा बहुत यत्न करूंगा। हमारे आर्य धर्म में भी अग्नि, जल, सूर्य, चन्द्र आदि विभूतियों को अति पवित्र माना है। जलके लिये तो वेद में एक स्थान पर ऐसा उल्लेख है कि "आपो नारा इति प्रोक्तः" आपः यह जल शब्द का बहुवचन है, जल का समूह वही साक्षात् नारायण परमेश्वर हैं। इसी प्रकार अग्नि, सूर्य और चन्द्र की भी प्रशंसा की गई है, उन सबों का कहना और सुनना इतना मनोरञ्जक नहीं होगा। यज्ञकी अग्नि को हम लोग उतनी ही पवित्र मानते हैं, जितना आप लोग आतशबहे-राम को। जिस प्रकार आप लोगों में अग्नि, जल और सूर्य के सम्मुख खड़े होकर प्रार्थना करने की प्रथा है, वैसीही हमलोगों में भी चाल है। हमारा धर्म भी गौ को पवित्र मानता है। जिस प्रकार आप लोगों में आपके धर्म की सूचक, 'कस्ती' धारण करने में आती है, उसी प्रकार हम लोग 'यज्ञोपवीत' धारण करते हैं। जिस प्रकार हम लोगों के यज्ञ में सोमरसका उपयोग होता है, आप लोगों में भी वैसी ही यज्ञ की क्रिया

होती है। अब हम लोग धर्म के विषय की यहां समाप्ति करके अक्षरज्ञान की चर्चा करेंगे। 'स' का 'ह' होना एक साधारण नियम है। जिससे सोम का होम हो जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। अग्नि के लिये जंद भाषा में 'आतस' शब्द का प्रयोग किया जाता है और संस्कृत में उस को हुताशन कहते हैं। अश्व और अस्प, मर्त्य और मर्द। संस्कृत में जिस वाहन को रथ कहते हैं जंद भाषा में उसको रस कहते हैं। 'स' का 'थ' होना भी, भाषा का अपभ्रंश होना, एक पुरातन नियम है। हस्त शब्द का अपभ्रंश हाथ हुआ। संस्कृत में देव शब्द देवता वाचक है और फारसी वाले इस शब्द को दैत्य के अर्थ में प्रयोग करते हैं। प्राचीन काल में फारसी भाषा में भी देव शब्द का पवित्रात्मा अथवा सुर ऐसा ही अर्थ होता था। पैगम्बर जरथुस्त ने धर्मान्तर किया। उसके बाद यह शब्द दानवों का सूचक हुआ। इस प्रकार हम जितना ही अधिक भाषा और शब्दों पर विचार करेंगे, उतना ही हम लोगों को पता लगेगा कि पारसी और आर्यों के मूल धर्म-संस्थापक और उनकी भाषा एक ही होनी चाहिए। ये सब एक ही खान के प्रकाशमान हीरे होने चाहिए।"

एदलजी माणिक के इतने अधिक अनुभव से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने निश्चय कर लिया कि आज पीछे माणिक का पूरा ख्याल रखना चाहिए। अपने ज्ञाति की स्तुति किसको नहीं अच्छी लगती? एदलजी की अपेक्षा पुराने विचार वाला वह बूढ़ा मास्टर तो इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने झट उठ कर माणिकचन्द को गले लगा लिया और पारसियों-प्रति सदा वफ़ादार रहने की बार बार शिक्षा दी। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि माणिक ने किसी प्रकार की स्वार्थ-

सिद्धि अथवा पेद्लजी को प्रसन्न करने की नीयत से यह सब बातें नहीं कही थीं। उसने तो केवल अपने स्वतन्त्र विचार ही प्रगट किये थे। परन्तु आज की यह पारसियों की प्रशंसा माणिक के हक में बहुत अच्छी हुई। पद्लजी माणिक पर इतना मोहित हो गया कि उसने माणिक को अच्छे ओहदे पर पहुंचाने का मन ही मन निश्चय कर लिया।

पद्लजी ने प्रेम से पूछा "तुम्हारा विवाह हुआ है कि नहीं बेटा माणिक?"

माणिक ने नीची दृष्टि किए हुए उत्तर दिया। "हां बावाजी"

पद्लजी ने ममता और उदारता से पूछा, "तब तुम अपनी स्त्री को यहीं क्यों नहीं बुला लेते?" "मैं तुमको पास में ही कहीं मकान दिला दूंगा और अन्न पानी भी भरवा दूंगा। तुमको किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं होने पावेगी। यदि तुम वफ़ादार रहोगे तो यावज्जीवन मैं तुमको अपने बच्चे की तरह रखूंगा।"

"आपका यावज्जीवन मैं विश्वासपात्र अनुचर रहना चाहता हूं। आपसे बढ़ कर कोई भी मुझे अच्छी तरह पाल नहीं सकता। एक निराधार और अशक्त मनुष्य को आप के यहां से जो कुछ टुकड़ा आधा टुकड़ा मिल जायगा वही मेरे लिये अमूल्य भोजन है। आपसे छुट्टी मांगने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ती थी। मेरे पिता ने आज तीन दिन हुए मेरे पास एक पत्र लिखा है, जिसमें उन्होंने भी यही इशारा किया है। पर आपके काम को फेंक कर मैं कैसे जा सकता हूं? मैं आपके सामने उपस्थित नहीं हो सका, पर श्रीमती बहिन जर को मैंने वह पत्र दिखाया था।"

पद्लजी ने जर को प्यार से बगल में दबा कहा, "क्योंरी पागल लड़की!" "तैने मुझसे कहा क्यों नहीं?"

जर ने उत्तर दिया "हां, बाबाजी, आप काम में फँसे थे, आज भोजन के समय मैंने माणिक चन्द के लिये आप से कहने का विचार किया था।"

एदलजी ने कहा "ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, माणिक! पर एक काम करना, तुम किसी अपने मित्र को आठ दिनों के लिये काम करने को रख जाओ और उसको सब काम काज समझा दो, और तुम भी शीघ्र लौटना। एदलजी अपने वृद्ध सहोदर भाई की ओर घूम कर बोले, "बैरामजी दो जाड़े का गरम अच्छा कपड़ा कल इसको निकाल देना। देखना इसमें भूल न हो। बढ़िया और सुन्दर कपड़ा देना।"

बैराम जी एदल जी की उदारता से गद् गद् हो कर बोले, "अच्छा रे भाई," "धरमी धरम करे, तो मेरे हाथ क्यों पापी बनें?" ईश्वर ने जब आपको सर्वसम्पन्न बनाया है तो आप ग़रीबों को नहीं देंगे तो किसको देंगे? सखावत में जो हीला हवाली करे तो वह जरथोस्ती बच्चा ही नहीं।"

महफ़िल बरखास्त हुई, माणिक सीधा नीलागुम्बज नाम के महल्ले में पहुंचा। वहाँ उसका एक सहपाठी रहता था, जो मेट्रिक में उसके साथ पढ़ता था। येनकेन प्रकारेण उससे अपनी एवज़ी में आठ दिन काम कर देने का बचन ले वह अपने घर गया। जो माणिकचन्द दो चार पैर चलने पर थक जाता था, और छः तक की गिनती गिनने में ही हाँफ उठता था, आज उसी माणिक को मातृभूमि में जाने के उत्साह से आनन्द पूर्वक एक दो मील लम्बी यात्रा करने और एक विस्तृत व्याख्यान देनेका बल आ गया।

दूसरे दिन माणिक अपने मित्र के साथ नौकरी पर गया, वहां उसने उसको सब काम काज समझा दिया। दस बजे उसने एक शीशी निकाली और एक खुराक दवा पी। इतने

ही में बैराम जी का आदमी आया। बड़ी खुशी से वह वहां जाने को दौड़ा। उस भले आदमी ने दरज़ी को भी बुलवा कर बैठा रखा था। बैरामजी ने दरज़ी के कहने मुताबिक कपड़ा पसन्द कर के बेंवतवाया और दरज़ी को ताक़ीद करते हुए कहा, "देखो मियां साहब, कल संध्या तक अगर कपड़ा सी कर नहीं लाओगे तो कपड़े का दाम तुम्हारे नाम लिखेंगे।" ज़र ओर माणिक इस वृद्ध सज्जन की उर्दू भाषा सुन कर हस पड़े। भले वृद्ध ने सिलाई के भी पैसे दूकान ही से दिये।

तीन दिन बीत गए। मध्यान्ह के भोजन के बाद ज़र एक छोटी से पोटली ले इधर उधर देखती सब की निगाह बचाती हुई माणिक के पास आई। उसके पास नया क्लार्क बैठा था, अतएव वह चुपचाप उस पोटली को और एक पत्र को रख कर चलती बनी। पत्र में यह लिखा थाः—

"मिस्टर माणिकचन्द, आप जिस योग्यता से हमारे यहाँ रहते हैं और मुझे आप की जो स्वाभाविक प्रतिभा नज़र आती है, उसका बदला देने को सामर्थ्य मुझमें नहीं है। बाबाजी ने आपको जो कुछ दिया है उससे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। मैं अपनी तरफ से यह यह किञ्चित् भेट आप की अर्द्धांगिनी के लिये देती हूं। इसको अस्वीकार करने का अधिकार भी सिवाय उसके और किसी को नहीं है, अतएव आप इसको अवश्य लेते जाइए। यह भेट पिता जी से छिपा कर देने का पाप जो मैं करती हूं, उसके लिये ईश्वर मुझे माफ़ करेंगे। यथासाध्य शीघ्र आकर अपना काम संभाल लीजिएगा, क्योंकि इस नवीन व्यक्ति से मैं बातचीत नहीं कर सकूंगी। ईश्वर आपकी यात्रा सुफल करे।

शुद्ध मन से आपकी हितेच्छु

'जर'

पत्र पढ़ कर माणिक ने उसके बहुत छोटे छोटे टुकड़े कर डाले। पोटली को एकान्त में ले जाकर खोला; उसमें एक जरी की बारीक किनारे की रेशमी साड़ी थी, चोली के लिये दो गज़ मखमल थी, तीन रेशमी रूमाल, एक अतर की शीशी और एक सुन्दर डिब्बी में छोटीसी सोने की अंगूठी थी, इतनी चीज़ें उसमें थीं। पोटली बाँधते समय माणिक की आखों में पानी भर आया। उसने जर और उसके पिता को मन ही मन आशीर्वाद दिये। संध्या समय बैराम जी ने उसको बुला कर एक सूट उसको पहिनाया और दूसरा सूट एक पोटली में बाँध माणिक के हवाले किया। अपने आफिस में आ माणिक ने ज़र वाली पोटली निकाल इसके साथ बांधा। फिर वह सेठ को अन्तिम सलाम करने गया। उसके पीछे पीछे बैराम जी और ज़र हँसते हँसते जा खड़े हुए। माणिक ने जाकर शुद्ध अन्तःकरण से सेठ के पैरों पर अपना सिर रखा! सेठ ने उसको प्रेम से उठा, उसके माथे पर हाथ रख खुशी से उसको छुट्टी दी। फिर बैराम जी और ज़र को प्रणाम कर वह अपने घर गया। दूसरे दिन माणिक अपनी मातृ भूमि के लिये विदा हुआ।

दशवां प्रकरण

पति-पत्नि का मिलाप

आज विद्वान पुत्र आएगा और लोग उससे मिलने आएंगे आदि इन्हीं सब सोच विचार में गोविन्द हुका लेकर खाट पर

बैठा हुआ पुत्र की राह देख रहा था। उसके आगे पीतल की डिब्बी में अफ़ीम रखी है। तमाखू के पिंडे, अंगीठी और कोयले के ढेर ही बैठक को शोभायमान किये थे। जनान खाने में प्रेमदेवी भी मन ही मन मग्न होती थी कि आज पढ़ा लिखा कमासुत पुत्र रुपये लेकर आवेगा। बहिन दरवाजे पर ही खड़ी राह देख रही थी। हवा से ज़रा भी दरवाज़े खड़के कि 'भाई आए, कौवा बोला कि, समाचार आया; माणिक भैया आते हैं,' इस प्रकार प्रतिक्षण वह पुकार उठती थी। रुक्मिणी को सास ननँद के पास बैठने का सैाभाग्य ही कहां? वह बिचारी तो एक कोने में बैठी थी और उसके मन में यही विचार उठ रहे थे कि कब पति घर आए और कब एकान्त में मिलें कि मैं सास ननँद के सलूक का हवाला दूं और हमारी गृहस्थी अलग हो जाय। यहां उसको सब की दासी बन कर रहना पड़ता था, अलग घर करने पर तो वह और उसका पति दोनों ही सुख से रहेंगे।

इसी प्रकार गोविन्द के घर में चारो कोने में चार प्रकार के विचार चल रहे थे। थोड़ी देर में माणिकचन्द्र आ पहुंचे। आते ही बाप ने खड़े हो कर उसको छाती से लगाया। माणिक चन्द ने अपने पिता के पैर छुए और उनके पैरों की धूल आंख और माथे पर चढ़ाई। अपने अंग्रेजी पढ़े हुए पुत्र के इस बर्ताव से वह हर्ष से गद्गद् हो गया। फिर वह अपनी माता के पैरों पड़ा और उसने एक सुपुत्र का कर्त्तव्य बजाया। माता ने उस की बलैयां ली और उस पर हाथ फेरा। वह क्यों न ऐसा करे? आखिर को माता ही ठहरी। उसने अपने पुत्र का हाथ पकड़ अपनी आंखों में लगाया। बहिन भी भाई के गले में हाथ डाल कर उससे खूब जूझी। इस समय माणिक ठीक वैसा ही मालूम

होता था जैसे हेडम्बा की बाँह में अभिमन्यु। रुक्मिणी बिचारी एक कोठरी में चुपचाप बैठी थी। वह सन्ध्या तक बाहर न निकल सकी। इसी का नाम गुजरात में लाज है और उत्तरीय भारत में इसी को हया कहते हैं।

माणिक के आने पर घर की तथा पड़ोस की सब स्त्रियाँ गाती बजाती देवी के मन्दिर में बधाई लेकर गयीं। माणिक बैठक में अपने पिता के पास जा बैठा। अड़ोसी-पड़ोसी सगे सम्बन्धी जो कोई मिलने को आए, सभी ने आते ही यह प्रश्न किया, "क्यों भाई बीमारी से उठे हो क्या?" हाँ, हाँ, हाँ, कहते कहते माणिक का तो सिर दुख चला। पिता भी माणिक की ऐसी दशा देख मन ही मन जल भुन कर खाक हो रहा था। चेहरे पर तेज का नाम नहीं है, गाल बैठ गए हैं, आँखें गढे में गोते खा रही हैं। शरीर में माँस का नाम नहीं है। चमड़ी में करचुली पड़ गई है। पिता ने बताशे का शरबत बना माणिक को दिया। इससे माणिक की जो कुछ भूख थी वह भी कूच कर गई। भोजन का समय हुआ, बारह बजे की गजल बजी, मिलने आए हुए सब अपने अपने घर गए। एकान्त देख माणिक ने साथ लाई हुई चालीस रुपये की रकम पिता के हाथ में रखी पिता ने माणिक से कहा—"अपनी माता को सौंप दे।" माणिक ने घर में जा माता को वह रकम दे दी। माता हर्षित हुई! अहा, नगद नारायण, रूप देव, महालक्ष्मी सी महारानी की तस्वीर सहित, ठनन, ठनन, मंगल शब्द उच्चार करने वाले, किसको अच्छे नहीं लगेंगे? 'कमासुत पूत माता का प्यारा' भला इस लोकोक्ति को कौन झूठ कह सकता है? 'पूत कमासुत हुआ' इस बात से माता का अभिमान पुनः उद्दीप्त हुआ। आज इतना लाया तो कल हजारों लावेगा ऐसी

आशा बँधी। खैर, रात पड़ी। सास ने इतने वर्षों में आज प्रथमबार बहू के सिर पर हाथ फेर कर "सो रहो बेटी!" ऐसे मधुर शब्दों का उच्चारण किया। बहू ने तो समझ ही लिया कि पति के आगमन से ही ऐसा हुआ है।

चलिए अब माणिक चन्द के शयनागार की तरफ़ चलें। बात तो ज़रा बे अदबी की है, खैर, विवेक को पेन्सन देंगे। प्रथम तो दम्पति की बैठक देखने लायक़ थी। माणिक अपनी प्रिया को हर्षित करने की नीयत से ज़र की दी हुई पोटली अपने सिरहाने रख कर बैठा था। परन्तु स्त्री खाट के पैताने, पति की तरफ पीठ कर के, पांच हाथ का घूंघट तान-मानों किसी को मुकाम देती हो-केहुनी घूंघट पर रख, और हाथ का पहुंचा बग़ल में दबा इस प्रकार बैठी थी-मानो पति पत्नि में जान पहिचान ही नहीं है। उस समय दंपति की ऐसी स्थिति थी।

माणिक ने थोड़ी देर उसके बोलने की प्रतीक्षा कर, खुद ही अधीरता से सवाल किया—"क्यों? शरीर कुछ नरम है क्या?"

बहू रानी लज्जा से अधिक संकुचित होकर ठीक खाट की पाटी पर जा बैठीं। घूंघट को और भी बढ़ा कर काले वस्त्र रूपी बादलों में चन्द्र मुख को छिपा दिया।

माणिक ने बड़ी मधुरता से कुछ आगे बढ़ कर सवाल किया-"क्यों कोई जवाब नहीं मिला?"

बहू जी रो पड़ीं और घूंघट के अन्दर आंसू और काजल को उसी से पोंछ डाला। कहाँ एम० ए० साहेब की पुस्तकों की ओफिलिया, जुलियट, क्लीयोपेट्रा; कहाँ लयला, शीरीं, अर्जुमन आरा, रूशा जलीस; कहाँ दमयंती, सुलोचना;

संयुक्ता, और राधा; और कहाँ उनके साथ में जंगली, अशिक्षिता, शर्म वाली मूढ़ और सास-ननँद के त्रास से आग भभूका भई हुई बिचारी राजपूतिन बाला ! माणिक कुछ आगे बढ़ कर प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ फेरने गया कि "पीछे हटिए" के शब्दों ने उसको पीछे हटा तकिए के सहारे बैठा दिया।

माणिक ने पत्नी की इस अज्ञानता पर ध्यान न देते हुए तीसरी बार पूछा-"मेरा कौन सा अपराध हुआ है ?"

सिसकती हुई और अपनी साड़ी से आंसू पोछती हुई, भोली, पर चिढ़ी हुई रुक्मिणी बोली-"जाव जाव। क्या आप ने मुंह को भी इतना पूछा कि दिन भर में मुई ने पानी भी पीया है या नहीं ?"

निर्दोष माणिक ने कहा " दिन भर माता पिता पास में थे। भला बताओ कि उनका लिहाज़ छोड़ कर किस तरह पूछ सकता था ? दो तीन बार मेरे ध्यान में यह बात आई थी पर माता पिता की मर्यादा तोड़कर मुझ से कुछ पूछा न जा सका।"

सामने मुंह तो हुआ, पर घूंघट ज्यों का त्यों ही रख रुक्मिणी बोली, "आप की माता तो साक्षात् राक्षसी का ही अवतार हैं। खून की प्यासी होकर वह मेरे पीछे पड़ी हैं। दो वर्ष में एक दिन भी चैन से बैठने का मौका नहीं दिया है।" इन अनुचित शब्दों के सुनने से माणिक के मन में कुछ खेद तो हुआ, पर वह बोले क्या ? एक कहे तो दो सुनना पड़े।

माणिक ने पूछा-"माता तुमको इतना क्या कष्ट देती है ?"

रुक्मणी इस प्रश्न से अधिक चिढ़ कर बोली-"हाय, हाय,

यदि कलेजा चीर कर कर दिखा सकती तो मैं आपको दिखा देती कि पूरा है या चलनी हो गया है। उठते-बैठते, बात बात में टेढ़ा-सीधा बोलती और चुटकियाँ भरती थीं। किसी दिन भी मुझे लौंडी-दासी-बेमरजाद-छिनाल आदि बनाए बिना नहीं रही है। और हमारे भाई बाप को तो ऐसा ऐसा कहती हैं कि मेरे कलेजे में छाले पड़ जाते हैं।"

माणिक यद्यपि यह जानता था कि सास-पतोहू में बारहवें चन्द्रमा पड़े हैं पर घर घर यही लेखा होने से उसे इसमें कुछ नवीनता नज़र न आई। उसने बात उड़ाने की गरज़ से कहा—"आपकी कुछ भूल देखती होंगी। वे अपनी बड़ी हैं, उनकी गालियां कुछ द्वेष से भरी थोड़ी ही होती हैं।" परन्तु रुक्मिणी का तो वर्ष का मलाल उमड़ आया था वह किसी प्रकार रुक सकता था? उसने तो दफ़तर के दफ़तर उलटने शुरू किए।

पत्नी ने इतिहास का श्री गणेशायनमः करते हुए कहा—आपको नौकरी मिली इसमें मैंने कौनसा पाप किया? उस दिन से तो वे हाथ धो कर मेरे पीछे पड़ी हैं। शुभ मुहूर्त्त में आप के पिता ने मुझ को लाहौर भेजने की चर्चा की। अब तो और भी मेरे भोग लगे। लड़के को कौड़ी का तीन कर डालेगी, लड़के को खा आयगी, उसको चूस डालेगी, अब यों कहने लगी, मानो मैं कोई जीती हुई डाकिनी हूँ और आप मेरे प्रिय नहीं हैं। एक दिन तो यहाँ तक कह डाला कि तूने तो अपने ससुर को कुछ खिला कर अपने वश में कर लिया है, वह तेरे ही सी कहता है।"

माणिक ने हंसते हुए बात को खतम करने के ख्याल से कहा—"अरे भोली! तुझे छोटी समझ कर न भेजने को कहा होगा, इसमें क्या हो गया?

संसार में क्या ऐसा भी कहीं अन्धेर होता है कि लड़के का घर बने और मां को अच्छा न लगे ? अपने देश की रीति ही ऐसी है, इसमें इनका कोई कसूर नहीं है। थोड़े दिन और सुख दुःख से बिताओ, आगे चल कर अलग घर करूँगा। ये अपने रास्ते और हम अपने......

माणिक की बात काट कर रुक्मिणी बोली, " नहीं, अब मुझसे बर्दाश्त नहीं होगा। मुझे आप अपने साथ लेते चलिये।"

माणिकचन्द ने हाँ में हाँ मिलाते हुये कहा, "अगर ऐसी ही इच्छा है तो ऐसाही होगा।" और अपनी लाई हुई पोटली को खोल उसमें से एक रेशमी रूमाल निकाल उस पर अतर छिड़का और रुक्मिणी के हाथों में देते हुए कहा कि "लो यह हमारे सेठ की पुत्री ने आपके लिये भेट भेजी है और देखो यह भी—"

रुक्मिणी ने हाथ में से रुमाल गिराते हुए भनक कर कहा, "हूं, न जाने क्या यह शराब की तरह महकता है ! बातें उड़ाने कैसी आती हैं। मैं सब समझती हूं।"

माणिक खिजलाकर बोला, "तो क्या अब माता को निकाल दूं ? सवेरे पूछ लेंगे, अगर वे हां कहेंगे तो लेते चलेंगे, नहीं तो थोड़े दिन की और बात है। उसमें क्या ?"

अश्रुपूर्ण नेत्रों से रुक्मिणी बोली, "इतने दिन जीताही कौन रहेगा ?" आपकी बला जाने यहां कैसी कैसी यातनाएँ भुगतनी पड़ती हैं। एक दिन बीमार पड़ी, इच्छा न होने के कारण मैंने भोजन नहीं किया। फिर क्या था, 'अब तो लाहौर जाना है, वहां खूब कचरकूट होगी, यहां का रूखासूखा क्यों अच्छा लगेगा,' आदि बातों ने मेरा कलेजा टूकटूक कर डाला। आखिर को भखमार कर बिना भूखही खाना पड़ा। जब खाने बैठी तब फिर उन्होंने अवाजें

क़सूली शुरू कीं कि 'जब भूख नहीं थी तो फिर बीमारी हालत में भकोसने की कौन ज़रूरत थी ? इच्छा बिना कहीं खाया जाता है ?'. दूसरे दिन मैं अधिक बीमार हुई, पर इसकी परवाह किसने ? उनके लेखे तो मैंने ढोंग रचे थे। बुखार की तेजी से जब मेरी आँखें लाल हो गई तो कहती क्या हैं कि 'जाने की छटपटी में रात भर नींद नहीं आई है, इससे आंखें लाल होगई हैं।' न कभी हाल हवाल पूछना और न कभी शरीर में हाथ लगा कर देखना कि हाल क्या है ? मैं किसके आगे जा कर अपने दुखड़े रोऊँ ? एक कोने में बैठ कर ईश्वर से सदा मौत देने के लिये प्रार्थना करती रहती हूं।" ये बातें रुक्मिणी के सच्चे अन्तःकरण से निकली थीं। जिनके पूरे होते ही उसकी आंखों से अश्रुधारा बह चली।

माणिक भी अनी वाला आदमी था। उसको अपनी माता के तीखे स्वभाव का पूरा पता था। परन्तु लोक लाज के कारण वह कुछ बोलता न था। यदि वह अपनी स्त्री का पक्ष लेकर माता से कुछ भी कहे तो गाँव भरमें इसकी चोंचों हो जाय। कोई उपाय न देख वह चुप ही रह गया। रुक्मिणी के दिल का सब मलाल निकल जाने पर उसने उसको समझाने का निश्चय किया था।

रुक्मिणी ने फिर अपना रोना-शुरू किया "माताजी वृद्ध हैं ख़ैर उन्होंने जो कुछ कहा सो कहा पर आपकी बहिन की ज़ीभ तो चार हाथ की है, उनका तो कहना ही क्या है। नित्य नई नई बे सिर पैर की हमारी चुगली माँ के आगे करती है और इस प्रकार एक नया तक़रार खड़ा होता है। आपका पत्र आता, तो आपके पिता जी घरमें उसको पढ़ सुनाते। मैं घूंघट निकाल घर में एक कोने में बैठ रहती। पत्र पढ़ जाने

पर वह उसको लाकर मेरी गोद में फेंक जाती, मैं उसको उठा कर बिछौने के नीचे रख देती। अब तो वह गली गली घूम कर अड़ोसी-पड़ोसी सब को सफूका पूर आती कि "आज कल की छटी हुई बहुएँ ऐसी होती हैं कि अपने पति के पत्रों को बड़ी सावधानी से रखती हैं।"

माणिकने कुछ आगे बढ़ कर उसके कंधे पर हाथ रखा—बड़े भाग्य कि रुक्मिणीने उसको हटा न दिया, पर ज्यों का त्यों रहने दिया,—और कहा, ख़ैर, यह तो बताओ, कि तुम्हारे भाई और माता-पिता सब कोई राज़ी खुशी तो हैं? वे लोग कभी यहाँ आते जाते हैं कि नहीं?

रुक्मिणी बोली—"उन बिचारों को क्या खबर कि आपके ऐसे सरदार के घरमें भी लड़की को कुछ दुःख होगा। ख़बर होती तो वे कभी के आकर मुझे ले गए होते। और नहीं तो, छाछ-रोटी तो वे आनन्दसे खाते हैं। आपके पिता दो बार नीलाम मेंसे साड़ियाँ लाये दोनों बार मैंने अपने कानों सुना कि इसका बहू को घाघरा और कुर्ती बनाना पर आपकी माता ने उसका कुछ भी ख्याल न किया। आपकी बहिनने उसको दबा लिया और ऊपर से कहती क्या है कि इसका दुलहा तो पारसी के घर नौकरी करता है, यह तो अब रेशमी साड़ी पहिनेगी, इसको यह घाघरा क्यों अच्छा लगेगा।"

"ईश्वर उसका भला करे। मैं तुझे रेशमी......"

रुक्मिणी माणिक के कहने का भावार्थ न समझ और बात काट कर छनक कर बोली, "क्यों खूब, अपनी बहिन को कौन बुरी कहेगा?" "दिन भर काम करते करते प्राण निकल जाते हैं। सवेरे उठते ही घन्टी पीसना, फिर बासन माँजना, घर साफ़ करना, गाय दूहती, गोबर पाथना, पानी भरना,

रसोई बनाना और इतना करने पर भी ऊपर से सबोंकी बातें सुनना और गालियां खानी। आपने ते शास्त्रोंके सब पन्ने उलट डाले है, भला, बताइऐ ऐसा कहाँ, लिखा है ? दो महीने से रोज़ संध्या को बुखार आता है अन्न भाता नहीं, छातीमें सूल उठती है, दवा-दारू तो दूर किनारे यह भी कोई नहीं पूछता कि मरेगी या जीएगी ? फलाने की कुतिया बीमार पड़ी थी तो चार आदमियोंने इकट्ठा होकर उसकी दवा की थी, मैं तो आदमी हूं पर मेरी उतनी भी कोई पूछ नहीं रखता, तो फिर, बताइए क्यों न शरीर "कुढ़े ?"

सुशिक्षित माणिक के हृदय पर इन शब्दों ने बाण का काम किया। उसने अपनी स्त्री को छाती से लगा लिया और रूमाल से उसके आँसू पोंछते हुए कहने लगा, "ये लोग तुम्हारी दवा क्या करेंगे ? मैं तुम्हारी दवा करूंगा। जिस प्रकार इतने दिन विताये, उसी तरह चुपचाप एक दो महीने और भी विता लो, तुम्हारे लिये मैं पूरा बन्दोबस्त करके तुम को वहां बुला लूँगा और बड़े डाक्टर से तुम्हारी दवा कराऊँगा।"

रुक्मिणी कुछ कपटी या झूठी तो थी नहीं। उसके मन का भार हल्का हुआ कि वह शान्त हो गई। उसने जिन जिन दुःखों का वर्णन दिया था वे अक्षरशः सत्य थे। माणिक ने ज़र की दी हुई सब वस्तुएँ उसको दीं। उनको पाकर वह बहुत आनन्दित होकर कहने लगी, ईश्वर उसका सदा भला करे। वह हम गरीबों पर बिना जान पहचान के भी बहुत माया रखती है कैसी भली है !" तदुपरान्त नई घर गृहस्थी के विषय में अनेक हवाई किले बांधे गए और फिर पति-पत्नी दोनों निद्रादेवी के वशीभूत हो गए।

रात की बात चीत में दो बज गए थे। माणिक का क्षीण

शरीर जागरण करने के लिये समर्थ न था। सबेरे वह साढ़े आठ बजे सोकर उठा। माणिक की माता ने जान बूझ कर अपनी लड़की को दरवाज़े के बाहर दम्पती की वार्तालाप सुनने को बैठा रखा था। बिलबिल्ली लड़की ने कुछ सुना था और कुछ नहीं, पर, सबेरे उसने अपनी मां के सम्मुख उन सब बातों में ऐसा निमक मिर्च लगा कर कहा कि प्रेम देवी उसको सुनते ही साक्षात् चंडिका का अवतार हो गई। "बस, इस आग लगौती का घर में कुछ काम नहीं है।" सैकड़ों बार उसने इस वाक्य को दोहराया होगा। माणिक भी स्नान आदि कर्म से निवृत होकर एक पुरानी कुर्सी पर एदल जी को अपने राज़ी खुशी के पहुंच की चिट्ठी लिखने बैठा। लड़के को दिखाने के लिये प्रेम देवी आज रोटी बनाने बैठी थी गोविन्द चूल्हे में से अपनी चिलम में आग लेते हुए प्रेम देवी से बोला, "फिर भी कहता हूं, अब भी अगर लड़के के साथ बहू को विदा करना हो......"

रोटी को ज़ोर से पटक कर प्रेम देवी चिल्लाने लगी, "इस कांगड़ी रांड के नाम पर सलाई लगा दो, इस हरामज़ादी ने रात भर अपने खसम के कान भरे हैं। यह लड़का भी मेरा नहीं है, अगर मेरा लड़का होता तो रात ही को उसके झोंटे पकड़ घर के बाहर करता। यह तो बह गई है, पति के आने से फूल गई है और इसको अब लड़के के बीस रुपये पर ही मोट मँगरी सूझी है। देखो मैंने तो लड़के के लिये हज़ारों पर पानी फेरा है तब यह इस लायक़ हुआ है।" इतना कह कर प्रेम देवी ने ज़ोर से छाती कूटना शुरू किया।

गोविन्द चुपचाप चोर की तरह वहां से खिसक गया। रुक्मिणी भी एकान्त में बैठी हुई आंसू डालने लगी। प्रेम

देवी चौके में फटाफट रोटियां पटकने लगी और बहिन जी कुप्पे सा मुंह फुला सब तमाशा देखने लगी। माणिक ने रात में कही हुई सब बातें प्रत्यक्ष देख लीं। इसी विषय पर मन में गुनावन करता हुआ वह चिट्ठी छोड़ने घर से बाहर निकला। उसके जाने पर क्रोधान्ध प्रेमदेवी बोली कि, "अबकी बार लड़के को जाने दे, तब मैं इस कुतिया से पूछूँगी।"

ग्यारहवां प्रकरण।

पटवारी का अखाड़ा।

माणिक को सिर्फ चार दिन और चार रात घर पर रहना था, उस में से पहिला दिन और पहिली रात किस तरह बीती सो तो पाठकों ने देख ही लिया। दूसरा दिन भी इसी प्रकार क्लेश और झँझट में ही बीता। इससे माणिक का मन बहुत उदास हो गया था। तीसरे दिन नया सूट पहिन कर माणिक हवा खाने को नदी के किनारे गया। लौटते समय तुलाराम पटवारी की बैठक रास्ते में पड़ी। माणिक उस को बहुत धिक्कारता था, फिर भी नदी में रह कर मगर से बैर करना उसने अच्छा न समझा।

माणिक ने विचार किया कि "चलूं, सोच विचार कर तो इसके यहाँ आया नहीं हूं, रास्ते में घर पड़ गया है, चलूं देख तो लूं कि कितने वर्णसँकर एकत्र हुए हैं और क्या क्या गुल खिल रहे हैं?" इस विचार से दरवाजा खोल उसने अन्दर प्रवेश किया। वहाँ वह क्या देखता है? एक तरफ पाँच दस-

बाज चरस की दम भर रहे हैं। वह उनका रँग देखने जरा ठहर गया। एक ने चिलम हाथ में लेकर कहा, "अब तो लगे दम और टले गम" और दम मारा। लवर छः अँगुल ऊंची उठी। दूसरे ने चिलम लिया और कहा,

"आव तो रंग है रंगी का, जिसने एक रंग पैदा किया,
और लानत है दो रंगी को, जिसने दोस्ती में दग़ा किया।"

इसने भी चिलम खूब जगाई, धूएँ के बादल बाँध दिए। खाँसी और कफ देख कर माणिक की तबीयत घबरा गई। अब उसने दूसरी दिशा में दृष्टि डाली, इधर भाँग से भरा हुआ एक तपेला नजर आया, उस पर एक साफी ढँकी थी और उसके चारों तरफ त्रिपुण्ड धारी लोग बैठे थे। और "जयशंकर दुलहा की, जय विजया माता की" पुकार मच रही थी। एक आदमी पटवारी जो को भाँग पिला कर लोटा ले आया और सर्टिफिकेट के तौर पर उसने कहा "गुरू जी कहते थे, अच्छी गहरी छनी है।" इस पर सब भंगेड़ी प्रसन्न हो गए। कोई लोटे से तो कोई चुल्लू से भाँग पोने लग गए। "आवतो विजया माता, गुण की दाता, ज्यों रखे पुत्रको मात, चढ़ते ज्ञान उतरते ध्यान, अकल विकल करे तो गुरू गोरखनाथ की आन।" इस प्रकार एक ने बोम मारी। इतने में दूसरा गर्ज उठा—

"बम गिरनारी, शिखर पर बैठ कर फिकर कर हमारी"

वहाँ से माणिक आगे बढ़ा तो उसने लोगों को गाँजे की चिलम फूँकते हुए देखा। यह सब खेल पटवारी के घर के विशाल चौक में हो रहा था। अफीमची बुड्ढे भी 'असलिया' अमलिया की गुनगुनाहट कर रहे थे। माणिक इस विलक्षण दृश्य से दंग हो गया। इतने में सामने से उसको सितार की आवाज़ सुन पड़ी। देखा तो भक्तराज, विप्रकुलावतंस तुला-

राम जी एक चौकी पर हाथ में सितार लिए तार के तरंग में एकतार भये हुए नज़र आए। जितनी बार चिलम चढ़े, भाँग घोटी जाए, और अफीम घुले, उतनी बार वे सब पहिले मुनिराज को भोग लगाते, तब आगे की कार्रवाई होती। 'अग्रे अग्रे विप्राणां' की कहावत भला किस से छिपी होगी सवेरे उठ कर नशा पानी करना तो पटवारी जी के लिये एक उत्तम कर्त्तव्य था। फिर दिन भर तो गांव के लोग आपहो ला ला के भोग धरते थे, उस में किसी का अहसान थोड़े था। यह सब देख माणिकचन्द के तो छक्के छूट गए कि यह कोई विचित्र मूर्त्ति है। 'बाबा बैठा जपे, और जो आवे सो खपे' ऐसा मन में विचार कर माणिक आगे बढ़ा और 'नमस्कार महाराज' कह कर सामने खड़ा हो गया। नशे में चूर महाराज ने अपनी लाल आँखें खोलीं और जानबूझ कर धूर्तता से पूछा, "कौन है भाई?"

माणिक ने उत्तर दिया, "जी, मैं गोविन्द सिंह का पुत्र माणिक।"

"अरे गोविन्द का तू चिरंजीवी और माणिक तेरा नाम?" (कविता आरंभ हुई)

बैठते बैठते माणिक ने कहा—"जी, वही आप का दासानुदास।"

"आइये माणिकचन्द कहिये शरोर तो सुखी?"

सोरठा का एक चरण अपने नियमानुसार कह कर पटवारी ने सितार नीचे रखा। इतने में एक आदमी ने आकर उनके हाथ में गांजे की चिलम दे प्रणाम किया। पटवारी ने "ॐ नमः शिवायैः" कह कर गाँजे का दम मारा, और फिर धुएँ के बादलों की सृष्टि की। चिलम लाने वाला उस चिलम

को अपनी मण्डली में वापस ले गया। पटवारी ने फिर उसी चरण को दोहराया, 'आइए माणिकचन्द कहिये शरीर तो सुखी?"

माणिक ने रङ्ग देख दङ्ग हो कर पूछा, "जी, सब आपकी कृपा है, आप तो चैन से हैं?"

"दीन विप्र के हेतु, क्या लाये क्षत्रिय भेट?" दोहे का एक चरण बना पटवारी जी ने प्रश्न किया:—

माणिक ने पहिले ही से जड़ काटते हुए कहा, "मैं गरीब भेट सौगाद कहाँ से लाऊँ? मुझे तो अपना ही पेट भारी पड़ रहा है।"

"एम० ए० हो कर मित्रवर, खोटे बहाने मत करना।
लाहौर तुम लूट लाए हो, विप्र की भेंट अवश्य करना।"

एकाएकी पटवारी जी के मुख से इन दो पदों के निकल पड़ने से उनके आनन्द का पारावार न रहा। इतने में एक वृद्ध भङ्ग की एक प्याली लाया। "जय नीलकण्ठ" कह कर पटवारी जी उसको चढ़ा गये। फिर उन्होंने हुक्का पीना शुरू किया।

पटवारी जी ने कहा, "आग लगे ऐसे एम० ए० होने मे, जिसमें धन का व्यर्थ व्यय होता है, स्वास्थ बिगड़ता है, और शरीर क्षीण हो जाता है। फल क्या हुआ कि महीने दिन बीस रुपये मिले।"

"भया व्यर्थ यौवन, भया व्यर्थ जीवन।
भयी व्यर्थ मेहनत, गया व्यर्थ में धन—हा हा हा।"

"क्यों सच है न माणिकचन्द!" इसी दरमियान में चरस और गांजे की चिलम आई।

लाने वाले ने कहा, "गुरू जी, गङ्गाजमनी रङ्गत है।"

"गङ्गाजमनी हाथ में तो, सरस्वती तुम्हारे साथ में, बच्चा मेरे।" बड़ी रङ्गत का एक पद ललकार कर पटवारी ने दम खींचा। आसपास के चिलम की ताक में खड़े हुए लोगों ने खूब बोम मारी, "वाह कविराज जी, जीओ प्यारे भोलानाथ आनन्द रक्खे।" उसके बाद भक्तजनों में परसादी गई।

एक एक पद पर पटवारी जी धूएँ को बाहर फेंकते और खों खों, ठों ठों करते हुए बोले, "बेटा माणिक, धन यौवन खोया, यह कविता कैसी हुई?"

माणिक ने खूब हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा, "एक एक अक्षर उसका सच है महाराज, अतिशयोक्ति का तो नाम ही नहीं। इसलिये न यह [illegible] अपना जीवन कैसा सार्थक करती है? मैंने एम० ए० ही पास कर के कौन सा शेर मारा? जैसे का तैसा ही रहता तो भी अच्छा होता।"

"करो चिन्ता को, दूर चढ़ा लो भांग का लोटा,
हाथ की फेंक दो कलम, न घूमो बांध कर सोटा।"

काव्य छन्द के दो पद पटवारी ने मिला कर कहे और चटपट एक लोटे को जिसमें थोड़ी भाँग थी माणिक के आगे धरी।

माणिक चन्दने हाथ जोड़ कर कहा "मुझे तो आप क्षमा करें। मैंने तो आज तक कभी भी भाँग नहीं पी है। भविष्यत् में भी पीनेका विचार नहीं है।"

गुरुदेवने उपदेश दिया—कि "ज़रा भी संशय मत करो, यह शंभू की बूटी है, न पीनेपर वे कोप करेंगे।"

माणिकने उत्तर दिया—"आप सत्य कहते हैं, पर मैं तो सदाशिव महादेव को भी भाँग पीने से रोकने वालोंमें एक हूं! वे भी भाँग पीना छोड़ दें तो अत्युत्तम।

पंडित जीने इस पर लाल लाल आँखें कर अंग्रेज़ी शिक्षा की आलोचना करते हुए कहाः—

'वह साम्प्रतिक शिक्षा हमारे सर्वथा प्रतिकूल है,
हममें, हमारे देश के प्रति, द्वेषजति की मूल है।
हममें विदेशी भाव भरके वह भुलाती है हमें,
सब स्वास्थ्य का संहार करके वह रुलाती है हमें ॥ १ ॥
होती नहीं उससे हमें निज धर्म में अनुरक्ति है,
होने न देती पूर्वजों पर वह हमारी भक्ति है।
उसमें विदेशी मान का ही मोह-पूर्ण महत्व है,
फल अन्त में उसका वही दासत्व है दासत्व है ॥ २ ॥'

[मै० गुप्त]

इसका यह कारण नहीं है, माणिकने वह बात उड़ा दी और कहा, " नहीं महाराज, बल्कि मेरी छाती में दर्द है, डाक्टरने मुझे इस कारण मना किया है।"

लोटे की भंग आप ही उड़ाकर, तुलारामने लावनी के ढंग के दो पद ललकारे—

"बढ़ गई नास्तिकताई जगत में भारी,
तृतीय नैन थी प्रलय करो त्रिपुरारी।"

एक चरण हिन्दी और एक गुजराती का सुन माणिक-चन्दने हंसते हँसते कहा "वाह वाह भूदेव, आप तो हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओंमें पारंगत हैं।

"अरे बेटा, गुरु महाराज के सामने तो सातो कलमें हाथ बाँध कर खड़ी रहती हैं। इतनेमें एक अफ़ीमचीने आगे आकर एक अफ़ीम की गोली का बाबाजी को भोग लगाया। माणिक के सामने ही क्षणभर में वह गोली तो गुरुजीके पेट में जा समाई। एक बार ज़ोरसे डकार कर, फिर होशमें हो पटवारी

माणिक की परीक्षा लेने की तैयारी की। आधा दोहा हुए प्रश्न किया:—

पाठ पिङ्गल का पढ़कर, है किया कभी काव्य।"

जी हाँ, थोड़ी बहुत आप बीती बातें लिखी तो हैं, पर उनको आगे कहना लखपतिको चार पैसे की भेंट करना है।" मा-.ी इस बात से पटवारी का दिमाग आसमान में चढ़ गया।

"माणिक तब कवितान को, हमहुं करहि रसपान।"

जैसी आप की इच्छा।" माणिक ने जब अपनी छुट्टी हीं देखा तब उसने कहा कि पंजाब में उर्दू भाषा अधिक ता।होने के कारण मेरी कविता भी उसी जबान में है:-

कोई नहीं है हद सितम बेहिजाब की;
तालीम यूनीवर्सिटी ख़ाना ख़राब की।
माना उसूले इल्म पे है ज़िन्दगी का हस्;
किस काम जब हो जीस्त मुशाबेह हबाब की।
मिहरे पिदर से बेहतर उस्ताद का है ज़ोर,
लेकिन न इतना जिस से हो सूरत अजाब की।
तड़के पढ़ो, सबेरे पढ़ो, रात को पढ़ो;
इत्ता के कभी आए न नौबत ख़ाब की।
गुर वाले मिडिल से बचे सौ मुश्किलों से हम;
पूछो न हम से सूरतें इस इज़्ले राब की।
एन्ट्रेंस फर्स्ट आर्टस में पीसी हैं चक्कियाँ;
ना गुफ़ता वह है हालत पेचों ताब की।
जुग़राफिया रेयाजियों तारीख़ों फलसुफा;
माज़ून फलसुफा है हमारे सबाब की।
सौ पुश्त से था पेश ए आबा सिपाहगरी;
एम० ए० बना के क्यों मेरी मिट्टी ख़राब की।

माणिक चन्द की कविता से भूदेव खूब प्रसन्न हुए और उन को धन्यवाद दिया—

"आयु कीर्ति व यश बल, बाढ़ माणिक कविराय"

पर दूसरा चरण न सूझने से दोहा अधूरा ही रह गया।

तत्पश्चात् माणिक ने हाथ जोड़ कर घर जाने की आज्ञा माँगी और घर आया। घर में सास बहू का पुराण चल ही रहा था। यह देख वह मन ही मन ख़ाक हो गया और अपने कमरे में चुपचाप चला गया। ब्यालू का समय हुआ। माणिक के पेट में भूक तो थी ही नहीं। यदि नहीं खाता तो माँ कहती है कि बहू को दो कड़ी बात कही सो पति को अनाज ही नहीं अच्छा लगा। अतः माणिक ने नाम के लिये दो कवर खा लिये और घर में जा सो रहा। दूसरे दिन वह सब से भेंट मुलाकात कर के बिदा हुआ। घर का अन्धेर खाता देख उस का दिल जल भुन कर ख़ाक हो गया था। देश की कुप्रथाओं पर उस को खूब क्रोध आया। जिस से उसको आरोग्यता को भी धक्का लगा। ट्रेन ही में ज्वर रूपी भूत ने उसको आ पकड़ा। बस वह कम्मल ओढ कर डिब्बे ही में पड़ा हुआ थर थर काँपने लगा। उसके लाहौर पहुंचने के समय पारा एक सौ चार डिगरी चढ़ गया था। लाचार होकर उसने एक चिट्ठी अपने मालिक के यहाँ और एक अपने मित्र के पास भेजी।

जरवानू की आठ दिन से यह हालत थी की मानो उसकी कोई अमूल्य वस्तु खो गई हो। समाचार पत्रों में भी अपोलो सम्बन्धी कोई समाचार नहीं आते थे। यदि तत्सम्बन्धी कोई सम्वाद रहता तो भी केवल इतना ही कि, "सहायतार्थ अन्य स्टीमरें गई हुई हैं।" उसको समयानुकूल सहायता मिली या नहीं, उसमें से कोई बचा या नहीं, या सब किसी को लिए,

लिये वह जहाज़ समुद्र के पेंदे में जा लगा, आदि कोई भी समाचार नहीं मिलता। न जाने माणिक को देख जर कैसे धैर्य धारण करती थी उसके चले जाने पर इस नवयौवना की गति और दशा में एक विचित्र प्रकार का फेरफार हो गया है। यदि उसके पास खुरशेद जी का खेलवाड़ो बालक न होता तो उसकी आरोग्यता में भो खलल पहुंचता। थोड़ी देर बाप बेटी में बातें हुईं, पर चिट्ठी के समाचार जानने पर जर का कमल सा चेहरा एकाएक मुर्झा गया। पिता के मन में खेद न हो, इस कारण अपने मन के विकार उसने मन ही में दबा रखे। एदल जी ने माणिक को एक चिट्ठी लिखी कि वह एक महीने आराम करे और उचित औषधि का सेवन करे। डाक्टर बाछा को भी लिख दिया कि वे माणिक की भली प्रकार ध्यान पूर्वक दवा करें। माणिक को खर्च के लिये एक गिन्नी भी भेज दिया। माणिक चन्द ने अपने ऐसे दाता और दयालु सेठ के लिये क्या धारण की होगी, यह लिखने की अपेक्षा ध्यान में उत्तम रीति से आ सकती है।

माणिक के अपनी जन्म भूमि अमोटा से विदा होने पर, माँ और बेटी दोनों हाथ धोकर गरीब रुक्मिणी के पीछे पड़ गईं। त्राहि त्राहि पुकारती बिचारी रुक्मिणी अन्त में क्षय रोग का शिकार बनी। महीनों से खुराक नष्ट हो गई थी, दिनों दिन शरीर क्षीण होता जाता और अशक्ति बढ़ती जाती थी। तथापि काम काज का भार तो घटता ही न था। प्रत्युत माँ बेटी की ओर से अधिकाधिक काम लेने की पैरवी चालू थी। एक दो दिन गोविन्द को ऐसा जान पड़ा कि रुक्मिणी शरीर से कुछ घट रही है। उसने डरते हुए प्रेमदेवी से पूछा, "इसका क्या कारण है?" चिढ़ी हुई सिंहनी की तरह प्रेम

देवी बोली, कुछ पत्थर थोड़े ढोने पड़े हैं।" पाँच हाथ के घूंघट से सिर से पैर तक ढके रहने के कारण गोविन्द बहू का मुंह तो देख नहीं सके, तो दवा दारू किस बात की करें ? इसका फल यह हुआ कि बिचारी रुक्मिणी आख़िरकार खाट से लग गई। कुछ दिनों तक उसको काढ़ा और चूर्ण दिया गया। पर उससे क्या होता है ? निरुपाय गोविन्द ने समधी के यहाँ पत्र लिखा। वे लोग आकर अपनी भली चंगी भेजी हुई लड़की को डोली में डाल कर घर ले गये।

माणिक की बीमारी से जर के हृदय में एक प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हो गई थी। वह आलबम के चित्र देखते देखते उसको खुलाही छोड़, कार्यवशात् भीतर के कमरे में गई उसी समय बम्मन वहाँ आ पहुंचा, और आलबम को खुला देख उसको टेबुल पर से खींच लिया। देखते देखते वह जर के पास जा पहुंचा और उससे पूछने लगा, "फूफी जी, यह किस की फोटो है।"

"अरे पागल, उसको इधर ला," जर ने झट उसको ले कर बन्द कर दिया।

"नहीं हमको बताओ यह कौन है ?"

"और किस की, एक पारसी की है।"

"हूं ! यह तो बड़ी तस्वीर है, देखें, मुझे फिर दिखाइए।" कहते कहते बम्मन ने जर की साड़ी पकड़ ली।

जर आलबम खोल, उसको अपनी गोद में बैठा, और उस की बलैया लेकर बोली। "ले, देख।"

"यह इस पर नाम किस का लिखा है ?"

जर लाज सेमुस्कुराती हुई बोली, "अरे बेटा नाम और किस का होगा, तस्वीर वाले का ही तो।"

बम्मन दुलार में दोनों पैर हिलाता हुआ बोला। "फूफी जी आपके पैरों पड़ता हूं, मुझे बताइए इसका क्या नाम है?"

जर ने लाज और संकोच से लाल हुये मुख से अपने प्रेम-पात्र का नाम लिया। "इनका नाम···नाम तो···माणिक जी, ले, बस।"

बालक ने उसी भोलेपन से पूछा। "और इनके पिता का नाम?"

"अरदेशर" इतना कह कर जर ने आलबम तकिये के नीचे रख दिया और बम्मन को खेलाती खेलाती बाहर ले गई। बालक बम्मन भी फोटोवाली बात भूल गया।

बारहवाँ प्रकरण।

परीक्षा का फल।

अकबर के समय की एक यह बात प्रसिद्ध है कि एक समय अकबर बादशाह ने अपने चार वजीरों की बुद्धि परखने के लिये चार बकरे तौला कर एक एक को दे दिया। उनका हुक्म यह था कि "एक महीने के बाद सब को अपना अपना बकरा दरबार में लाना होगा, पर बकरा तौल में घटने या बढ़ने न पावे, इसका पूरा ध्यान रखना होगा, नहीं तो सख्त सज़ा मिलेगी।

एक वज़ीर अपने बकरे को सुबह और शाम तौलता था! वजन बढ़ता तो खुराक कम कर देता और घटता तो खुराक बढ़ा देता था। दूसरा वज़ीर बकरे की खुराक रोज़ बदलता

था। आज हरी घास है तो कल सूखी। एक दिन यदि बाजरा देता तो दूसरे दिन उपवास कराता। तीसरा वज़ीर बकरे को खूब खिलाता पिलाता और उसको खूब दौड़ा दौड़ा कर उससे भर पूर काम लेता था। बीरबल अपने बकरे को दिनभर खूब खिलाता और शाम को उसे एक शेर के पिंजरे के आगे बाँध देता था। दिनभर में बकरा जितना खा पी कर बढ़ता था उतना ही रातमें वह शेरके भय से घट जाता था; इससे उसका वजन उतने का उतना ही बना रहता। अन्त में बीरबल ही का बकरा समतौल रहा।

यही स्थिति आजकल अपने देशके विद्यार्थियोंकी है। इधर खा पीकर विद्यार्थी तैयार हुए कि उधर परीक्षा रूपी व्याघ्रने उनका खून ऊपर का ऊपर ही चूस लिया। आजकल हिन्दुओंके सिर पर शिक्षाका भूत सवार है। सब माँ बाप को यही इच्छा रहती है कि जैसे बने वैसे लड़का जल्दी जल्दी परीक्षाएँ पास करता चला जाय। सगाई और विवाह भी परीक्षा के सर्टिफिकेट पर ही निर्भर रहते हैं। प्राचीनकाल में जन्म-पत्रिकाएँ और जन्मकुण्डलियाँ मिलाई जाती थीं। उनके स्थान पर अब सर्टिफिकेट देखे जाते हैं। जहाँ प्रचीनकाल में कुल और वंश पूछे जाते थे, वहाँ अब पास और फेल का प्रश्न होता है। नौकरी, चाकरी काम-धंधा, गति-अवगति सब विश्वविद्यालय की सनद परही अवलम्बित हैं। पैसे वाले के पुत्र रोना रोया करते हैं कि गरीब के लड़के हमसे अधिक मेहनत करके बाज़ी मार ले जाते हैं। गरीबके लड़के यह गड़बड़ी मचाते हैं कि पैसे बिना हम उच्च शिक्षा कहाँ से प्राप्त करें? उधर मुसलमान चिल्लाते हैं कि हम में हिन्दुओं से कम शिक्षा है, इधर हिन्दू लोग यह हाय मार रहे हैं कि समुद्र-यात्रा का

शास्त्र निषेध करता है, अतएव सिविलसर्विस परीक्षा भारत में हो और उसकी शर्तें कुछ ढीली कर दी जायँ। पारसी लोगों का यह रोना है कि लम्बी धोती वाले नौकरी का भाव बिगाड़ देते हैं। बस, दसों दिशाओं में परीक्षा पास करना और प्रारब्ध बेच पराई नौकरी करना, यही हाय हाय सब को लगी है। बंगाली अलग ही कला के बावले बने हैं। उनका यह प्रण है कि यदि जहन्नुम में भी परीक्षा हो तो उस को भी अवश्य पास करना, तब अन्न जल करना। हिन्दुओं की तो बात दूर रही, पर अंग्रेजों की तो रूह रूह बंगालियों के नाम से ही कांपती है। शिल्पविद्या का नाश हुआ कारीगरी कारागार में और हुनर हिमालय को गये। व्यापार वन्ध्या हुआ, रोजगार रांड़ ही है। बस मोक्ष की बारी केवल नौकरी ही में है और वह भी सरकारी नौकरी में, अन्नदाता सरकार की जान गोरी, नीति गोरी, रीति गोरी, प्रीति गोरी सब गोरा ही गोरा अर्थात् इनकी नौकरी भी गोरी। इस गोरी पर यदि काले मोहित हो जाएं तो इसमें आश्चर्य या नवीनता क्या? यदि सरकारी गोरी नौकरी काले का तिरस्कार करके गोरे को ही बरमाला पहिनाये तो उसमें कसूर किसका?

अब सरकार निकाल देती है, धक्का मारती है, अर्द्ध चन्द्राकार देती है, इस आशय के प्रस्ताव पास करती है कि इस नौकरी पर काले का अधिकार नहीं है तथापि लोग मुँह के बल गिरते हैं और अपने मुँह की खाते हैं। इतने पर भी लोग उधर से अपना मुँह नहीं मोड़ते। इन सब झगड़ों का नतीजा क्या? इस तरह एम० ए०, और बी० ए० एफ० ए० और एच० ए०, डी० ए० और सी० ए० आदि को एकत्र कर के हिन्दु-

स्तानी क्या उनका अचार डालेंगे ? माता पिता के तुल्य सरकार के घर की प्रतिच्छाया, आभा भी गोरी होती है, वहाँ काले व्यर्थ में सफेदी पर स्याही करके क्या कर सकते हैं ? यदि वे अपना मुँह खोलते हैं तो पीछे से धौल पड़ती है, अमलदार लोग और अधिकारी वर्ग तोबड़े सा अपना मुँह बनाते हैं।

परीक्षक महात्माओं की तो गति ही निराली है। वे लोग कठिन से कठिन प्रश्न खोज कर आजकल के विद्यार्थियों के समक्ष रखने ही में अपनी विद्वत्ता और महत्ता समझते हैं। परीक्षकों का मुख्य कर्त्तव्य तो विद्यार्थियों का पूरा ज्ञान जानना है। किन्तु आजकल इसके स्थान पर उनको क्या नहीं आता यही जानने में उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझ लिया है। वे चुन चुन कर ऐसे प्रश्न करते हैं जो विद्यार्थियों को बिल्कुल व्यथ जँचते हैं। उनमें विद्यार्थी ऐसी भूल में पड़ जाते हैं कि उनका जीवन मिट्टी में मिल जाता है।

जहाँ तक हो सके विद्यार्थी लोग फेल हों, और चौरासी योनियों में भटका करें ऐसे ही प्रयत्न के सम्बन्ध में प्रश्न सरकार की तरफ से होते हैं। परीक्षा की कापियाँ किस योग्यता से जाँची जाती हैं, यह तो आप पढ़ ही चुके हैं। विद्यार्थी मरें या जीएं इसकी परवाह परीक्षक को काहे की, यदि वे ऐसा करें तो उनकी नानी ही मरे।

"परीक्षा तेरा सत्यानाश हो" ऐसा कहने वाले अनेक विद्यार्थी मिलेंगे। परन्तु "आप ऐसा क्यों कहते हैं ?" यह पूछने वाला कोई बिरला ही विद्यार्थी होगा। इसका कारण क्या ? सन् १८३३ ई० में जब हिन्द-सरकार की ओर से शिक्षा सम्बन्धी अनुरोध इँग्लैण्ड भेजे गए थे, उस समय यह किसी के भी ध्यान में नहीं आया था कि इसका परिणाम यह होगा

कि हिन्दुस्तान के बालक इस प्रकार लैलेमजनू हो जायंगे। प्रतिवर्ष यूनीवर्सिटी की टकसाल से सैकड़ों कलदार सिक्के निकलते हैं। इनमें से कितने सिक्के दुनियाँ में प्रचलित होते हैं सो जानने योग्य है। अभी तक यूनीवर्सिटी ने बहुत थोड़े ऐसे विद्यार्थियों को उत्पन्न किया है जिन्होंने प्रसिद्धि पाई हो। महात्मा रानाडे ने शिक्षा के इस खरीते की, उसकी रीति, शिक्षणपद्धति आदि पर बड़े महत्व की विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है। पाश्चात्य देशों में विद्यार्थी वर्ग जब परीक्षा देकर गंगा नहाते हैं तब उनके चेहरे लालबिंब रहते हैं। परन्तु भारतवर्ष में स्थिति बिल्कुल ही विपरीत है। यहां के विद्यार्थी जब परीक्षा दे चुकते हैं उस समय उनके चेहरे पर स्याही छाई रहती है, मालूम पड़ता है, कि मौत के मुह से लौट कर अभी आ रहे हैं। उनकी स्थिति ठीक वैसी ही रहती है जैसी एक अस्थिपिञ्जर, युक्त मुरदे की। आजकल की शिक्षा ने कितने कालीदास, भवभूति, बराहमिहर, धन्वन्तरि, चरक, सुश्रुत, व्यास बाल्मीकि, वामन, मोरोपंत, तुकाराम, ज्ञानदेव, प्रेमानन्द, नृसिंह, सूरदास सुन्दरदास, राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ, वासुदेव या सुधाकर को उत्पन्न किया है? छापा-तिलक वाले साधु तो अनेक मिलते हैं, पर सच्चा साधु एक भी भाग्यवशः से मिलता है। इसी प्रकार विद्या के प्रेमी, जिस पर सरस्वती की कृपा हो और जिसने अपनी पढ़ाई को सार्थक किया हो, ऐसे तो दो ही चार विद्यार्थी यूनीवर्सिटी की टकसाल से बाहर निकले हैं।

शारीरिक सम्पत्ति के विषय की तो बात ही न पूछिए। देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक यह पुकार हो रही है कि देश का कल्याण करो, कल्याण करो, किन्तु कल्याण

करने वालों को देखिएगा तो लिलिपट* के निवासी भी इनकी अपेक्षा जबरदस्त मालूम होंगे। एक सुशिक्षित बी० ए० एल० एल० बी० घर में बैठा तमाशा देखेगा। यदि दो चार अफगानों ने आकर उपद्रव मचाया हो, बाजार लूटा हो, स्त्रियों की इज्जत ली हो और लोग चिल्ला रहे हों। शहर में हजारों आदमी के रहते भी, इन जँगलियों का सामना करने को किसी की भी हिम्मत नहीं पड़ेगी। भीम की गदा हनुमान की हुंकार, अर्जुन का गाँडीव, घटोत्कच्छ का वेग, कुम्भकर्ण का आहार आदि को चाहे पुराणों की गप्प कहिए या कवियों की सूझ, इस से हमें कोई मतलब नहीं, प जिन्होंने शिवा जी की तस्वीर में उनका बलिष्ट शरीर, आबदार नेत्र और उग्र चेहरा देखा है उन में से क्या कोई कहेगा कि ऐसे मनुष्यने देशके लिये कमर नहीं कसी थी ? मुगल सेना जिस को शैतान कह कर पुकारती थी, वह बाजीराव पेशवा, जब भूखा होता तो कच्चे ही चने चबा जाता था। सदाशिव ने जिसने अफगान दुर्रानी की छाती चीरने का प्रण किया था, पानीपत के युद्ध में एक ही वार में सात अफगानी सिपाहियों को काट डाला था। अवध का नवाब शुजाउद्दौला जब हाथी की पूंछ पकड़ कर खड़ा हो जाता तब क्या मजाल थी कि हाथी एक कदम भी आगे बढ़ सके। बारामती की सवारी में तँबू में विराजमान, माधोराव पेशवा पर जब एक मदोन्मत्त हाथी दौड़ता हुआ आया, उस समय एकोजी राव पाटन करने अपनी कटार के एकही वार से हाथी की चार अँगुल सूँड काट डाली थी। क्या यह सब भी परीक्षा

*Gullivers travel नामक उपन्यास में लिखा है कि लिलिपट के निवासी छः इन्च लम्बे होते थे। अतः इनकी ताकत का अनुमान आसानी से हो सकता है।

ही का परिणाम था ? आजकल की परीक्षा से ऐसी शक्ति कभी भी नहीं आ सकती। सैन्डो और करीमबख्श को जिन्होंने देखा होगा वे कह सकते हैं कि जब तक शारीरिक सम्पत्ति प्राप्त नहीं होगी, तब तक वर्तमान शिक्षा का फल भीख माँगना ही होगा। जल्दी जल्दी परीक्षा देकर लोग पञ्चतत्व में मिलने की तैयारी करते हैं। इसके अतिरिक्त और वे कर ही क्या सकते हैं ? न देश आबाद न टेंट ही गरम !

यदि सच पूछा जाय तो आजकल नवयुवक विद्यार्थियों की तो परीक्षा ने जड़ ही काट दी है। सबों को एकही ओर फेरा है। विद्या, कला, चातुरी व्यापार वाणिज्य, शारीरिक सम्पत्ति आदि सम्पादन करने के मार्ग तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली में नजर ही नहीं आते। सच कहा जाय तो यही देखने में आता है कि विद्यार्थियों के आगे मृत्यु का दरवाजा खोलकर उन्हें नाना प्रलोभन दिखाए जा रहे हैं।

पश्चात्य देशों का हवा-पानी, शिक्षा प्रणाली, शिक्षा के उद्देश्य, व्यापार, सरकारी नौकरियों का प्रबन्ध, लोगों की शारीरिक स्थिति, और व्यायाम के नियम आदि सब भिन्न हैं। तथापि वहाँ की रीति-भाँति की पूरी नकल यहाँ देखने में आती है और दिनों दिन, एक एक कर के, नियम के नाम पर अनेक नई अड़चनें उपस्थित की जा रही हैं। उसमें विशेषता यह है कि वहाँ के नियम विशेष कठिन बना कर यहाँ प्रयोग में लाए जा रहे हैं और यहाँ जिन विषयों की शिक्षा दी जाती है वे बहुधा निरुपयोगी होते हैं ? जिस किसी ने अंग्रेजी की चार पांच किताबें पढ़ीं कि वह अपने धर्म को तुच्छ समझने लगा। राम जाने किस जादू के प्रभाव से, निराकार भगवान को मानने वाले भारतवासियों को साढ़े तीन

मन और पाँच सेर का ईसु बेटा कहाँ से और किस प्रकार स्वाभाविक सिद्ध हुआ। पुस्तकों की ढेर का तो हिसाब ही नहीं मिलता। एक परीक्षा समाप्त हुई की पसेरी भर पुस्तकें भी बासी हुईं। दिमाग़ तो पीछे थकता है पर पुस्तकों को ढोते ढोते हाथ पहिले ही तोबा तोबा पुकार उठते हैं !!

मां बाप को रात दिन एक यह भी चिन्ता ग्रसे रहती है कि भले चंगे लड़के दिनों दिन गले क्यों जाते हैं ? वे लड़कों की दवा करते हैं, डाक्टरों का उपचार करते हैं, प्रसिद्ध दवाएँ खिलाते हैं शरद् ऋतु में उड़द के लड्डू, शालिम पाक, या मेथी पाक का सेवन कराते हैं, पर असर कुछ भी नहीं होता। शरीर बढ़ने की बात तो दूर रही, वहाँ तो कद भी घटता जाता है। अंगकी स्वाभाविक वृद्धि रुक जाती है। साधारणतया युवा अवस्था आई कि चश्मे की आवश्यकता पड़ी। गदह पचीसी बीती न बीती कि बालों की स्याही गायब। ऐसी अवस्था में उनके सन्तान यदि बेढंगे या अशक्त हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? भारतवर्ष में धीरे धीरे बाँस के बराबर से हाथ के बराबर और फिर बिलस्त के बराबर की प्रजा उत्पन्न होगी। छोटा शरीर, कम [illegible], [illegible] विचार और अन्त में छोटी अवस्था—सब कुछ छोटा ही छोटा होने की संभावना नज़र आती है।

तेरहवाँ प्रकरण

मृत्यु-शैय्या

माणिक का पिता प्रतिदिन अपने घर में कलह पुराण सुनता था। उस पर कभी कभी मनन भी करता, पर उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता था। किन्तु उसका पुत्र तो चारही दिनों की मनोव्यथा से शारीरक संकटों का शिकार बन गया। डाक्टर साहब ने अपने बहनोई और भांजी के मुलाहज़े से तथा माणिक के स्वयंके परिचय के कारण उसके उपचार में कोई बात उठा न रखता था। डाक्टर की ख़ास देख रेख में दवा होती थी, तथापि रोग का वेग न रुका। "मरज़ बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की।"

बुख़ार, खाँसी, क़ै और पेट की पेचिस इन चारों ने एक साथ ही उस दुर्बल पर चढ़ाई की। उस की अशक्ति भी अपनी पराकाष्ठा को पहुंच गई थी। कभी कभी वह गाफिल भी हो जाता था। तृषा के कारण गले में काँटे पड़ गए थे। शरीर को एक एक हड्डी में दर्द पैदा हो गया था। डाक्टर बिचारा कहां तक चल सकता है? जब रोग ही असाध्य हो गया तो उसका क्या चारा और दवा का क्या दोष? डाक्टर वाछा इसकी प्रकृति को जान गया था। इतने पर भी वह कमर कस कर इसका उपचार करने लगा। फिर भी स्थिति में कुछ अन्तर नहीं पड़ा। 'फूटी की बूटी कहां'?

घंटे घंटे भर पर जर का आदमी आता, और 'वही हालत हैं' यही उत्तर ले कर जाता॥ उस दयालु बाला को माणिक के लिये कितना प्रेम था यह तो पाठकों से छिपा नहीं है। माणिकके

लिये वह बहुत ही दुःखी और चिंतातुर रहती थी। उसे माणिक को एक बार अपनी आँखों से देखने की बड़ी उत्कंठा हुई पर शायद पिताजी को किसी प्रकार का वहम हो, इस विचार से उसने अपनी इच्छा को दबा रखा। पिता जी को किसी प्रकार का वहम होगा, यह विचार जर के मन में आज ही प्रथमबार उत्पन्न हुआ था। ज़र जब माणिक का पक्ष लेती, उसके लिखने पढ़ने के काम में उसे सहायता देती, और खुले आम उससे बातचीत और हंसी ठट्ठा करती, उस समय तो उसको स्वप्न में भी यह विचार नहीं आया था कि पिता जी शक करेंगे, तो फिर आज ही ऐसा विचार क्यों उत्पन्न हुआ, सो तो ईश्वर ही जाने।

"क्या मेरा दरियाव दिल पिता मेरे प्रति ऐसा नीच विचार करेगा ?" मनही मन बड़बड़ाती हुई जर अपनी बैठक में इधर उधर घूमने लगी, "किसके लिये ? अरे इस दीन-हीन माणिक-चन्द के लिये !" इतना कह वह एक हाथ कमर पर और दूसरे की उंगली गाल पर रख विचार सागर में गोते खाने लगी। इस समय का उसका भाव किसी चतुर चित्रकार द्वारा चित्रित होने योग्य था। "कुछ नहीं अब कल," इतना बड़बड़ा वह अपने सोने के कमरे में चली गई।

दूसरे दिन दोपहर को एक बजे डाक्टर ने आ कर जर से कहा, "अब माणिक एक ही दो दिन का पाहुन है।" इस समाचार ने जर के हृदय पर ऐसी चोट पहुंचाई कि वह एकाएक घबड़ा कर अपनी कुर्सी पर लड़खड़ा पड़ी। जर ने गद्‌गद् स्वर से शावकशाह से पूछा, "क्यों मामाजी, क्या कोई ऐसी दवा नहीं है जिससे इस ग्रेजुएट की जान बच जाय ?"

शावकशाह ने अपनी भांजी जर के माथे पर हाथ फेरते

हुए कहा, "बेटी जर, अपने भरसक तो कोई भी बात इसके लिये उठा नहीं रक्खी है, और अन्तिम घड़ी तक कोशिश होती ही रहेगी, आगे ईश्वर की जैसी इच्छा, मुझे स्वयं इस बालक पर बहुत प्रेम है। तुम्हारे पिता इसकी बुद्धि पर फिदा हैं, और वृद्ध बैरामजी तो दिन में चार बार आदमी भेज कर पुछवाते हैं कि माणिक की तबीयत कैसी है। यह लड़का हमलोगों से बहुत हिलमिल गया है। आगे इसका भाग्य। इससे अधिक हम लोग कर ही क्या सकते हैं?"

जर ने हमदर्दी दिखाते हुए कहा, "मामाजी, आपको मेरी कसम है, आप वहीं जाइये। मैं भी पिता जी की आज्ञा ले कर एक घण्टे में वहाँ आती हूं। ईश्वर इसको आरोग्य करे! मुझे इसका बहुत खयाल है। बिचारे का बिवाह भी हो गया है।"

शावकशाह अनारकली की ओर बढ़े और जर भी धीरे २ अपने पिता के पास आ कर कहने लगी, "पप्पा, मामा जी अभी आए थे वे कह गये हैं कि माणिकचन्द की कोई आशा नहीं है। यदि आपको किसी भाँति की अड़चन न पड़े तो मैं अन्तिम बार जा कर उस बिचारे की सेवा कर आऊं। फिर दूसरे लोग भी अपने को इस बात की बदनामी का टीका नहीं देंगे कि एक सुशिक्षित नौकर की बीमारी की हालत में उसे देखने भी नहीं गये। क्यों मैं ठीक कहती हूं न?"

एदलजी अपनी बेटी के इस उदार विचार पर प्रसन्न हो, उसको आज्ञा देते हुए बोले, "खुशी से, प्यारी बेटी, देखना अगर दो रुपये खर्चने भी पड़ें तो पीछे मत हटना ईश्वर न करे कि स्थिति निराशापूर्ण हो, नहीं तो उसके मा बाप को तार दे देना और मेरे पास भी आदमी भेजना। मैं स्वयम् आऊंगा, जाओ, खुशी से जाओ, मामाजी वहाँ हैं, दूकान बन्द होने के

बाद बैरामजी को भी मैं वहीं भेजूंगा। कोचवान को गाड़ी जोतने के लिये कहलाओ और लड़के से कहो कि चाह तैयार करे। इस समय एक क्षण भी खोने का मौका नहीं है।"

"मैं अपने पिता के इस दरियाव दिल पर हजार बार अपने को न्यौछार करती हूं" कहती हुई जर प्रसन्न हो कर अपने कमरे में गई और झटपट साड़ी बदल कर बाहर आई। फिर न जाने क्या सूझी कि चट किवाड़ खोल एक स्मेलिंग साल्ट की शीशी निकाल अपने जेब के हवाले की और लड़के को हुक्म दिया कि एक तपेली चाय जल्द तैयार करके माणिक के घर ले आए। फिर गाड़ी पर सवार हो वह पाँच मिनिट में माणिक के घर पहुंची। चारों ओर के लोग आश्चर्य करते थे कि 'यह अप्सरा इधर कहाँ जा रही है।' नौकर माणिक का घर बता, गाड़ी ही में वापस चला गया। जर ने सन्ध्या को गाड़ी लाने का हुक्म दिया और चाह भेजने की ताकीद की।

जर धड़कते हुए दिल से और थरथराते हुए पैर से ऊपर चढ़ी। माणिक एक खाट पर मूर्छित दशा में पड़ा था। डाक्टर बाछा उसकी नाड़ी पकड़ चिन्तातुर बदन से घड़ी देख रहे थे। जर आते ही माणिक की खाट के सामने जा खड़ी हुई। उसका पवित्र और दयालु हृदय माणिक की दुर्दशा देखते ही व्याकुल हो गया।

थोड़ी देर बाद माणिक के होठ साधारण रीति से हिले और उसके उस विशेष स्मित हास्य का दर्शन हुआ जिसमें उसके होठ बड़ी विचित्रता से झुक जाया करते थे। उसकी काली भौहें भी धनुषाकार चढ़ गईं। इस दृश्यने न जाने जर के विचार में क्या उलट फेर कर दिया कि वह तो चक्कर खा कर, पवन के झकोरे से कोमल डंठल की तरह ज़मीन पर लोट गई। बाछा

और माणिक के नौकर ने मिलकर उसको एक टूटी फूटी आराम कुर्सी पर बिठाया। नौकर धीरे धीरे उसके चेहरे पर पंखा झलने लगा और डाक्टर वाछाने उसके जेब से रूमाल निकाला तथा उसके ऊपर 'कोलोन वाटर' छिड़क उसको सुंघाने लगा। पाँच मिनिट में जब जर होशमें आई तो कुछ लज्जा और साहस से कहने लगी, "मामा जी आप मेरी कुछ चिन्ता न करें।" फिर दोनों उठ कर रोगी की खाट के पास आ बैठे। वाछा की कुर्सी पैताने और जर की सिरहाने थी।

दया की मूर्ति जर बिनासंकोच माणिक के माथे पर अपना नाज़ुक हाथ फेरते हुए बोली, "क्या सोचते हैं, मामा जी, क्या यह बिचारा बच जायगा?"

वाछा ने तिपाई पर से दवा की शीशी उठाते हुए कहा। "यह मौत और जिन्दगी के बीच में झूल रहा है। अगर आज का दिन टल गया तो कुछ आशा की जा सकती है।"

क़रीब एक घन्टा बीत गया, पर स्वर्ग के साधनों को सिद्ध करने में लगे हुए शरीर में चैतन्यता नहीं आई। इसी बीच में वाछा और जर ने दो बार उसका मुंह खोल कर उसे दवा पिलाई पर निरर्थक। छाती धुक धुक करती थी और श्वांस चल रहा था, परन्तु बेहोशी ऐसी छाई हुई थी कि एक एक क्षण पर जर की चिन्ता बढ़ती जाती थी।

जर ने अपने रूमालसे माणिक के चेहरे पर की मक्खियाँ उड़ाते हुए कहा, "मेरे पास बहुत तेज स्मेलिंग साल्ट है, मामा जी, क्या उसको भी सुँघा देवें।"

"हाँ, हाँ," कह कर डाक्टर ने हाथ बढ़ाया और जर ने रज से शीशी निकाल कर दे दी। इसने तो अपना पूरा असर दिखाया। माणिक घबड़ा कर कुछ काँपा और थोड़ी ही देर बाद उसने

करवट भी बदली । "अब इसका दिल ठिकाने से काम करने लगा" डाक्टर आशापूर्ण वचन बोले । इतने में माणिक की पलकें भी कुछ उठीं । वह शीशी फिर उसके नाक के आगे रखी गई । बहुत थोड़े समय में कँपकँपी खा कर उसने अपनी आँखें खोल दीं । पर अभी उसकी जीभ तो बन्द ही थी । इस लिए बोला नहीं जाता था । वह किसी को पहिचान भी नहीं सकता था । पांच सात मिनिट के बाद उसकी ज़बान खुली और उसने पागल की तरह बड़बड़ाना शुरु किया । वह चारों तरफ़ आँखें फाड़ फाड़ कर देखना और मिल्टन तथा शेक्सपियर की; कविता के स्फुट पद मनमाने तौर से बड़बड़ाता था । कभी उर्दू कवि का तो कभी फ़ारसी कवि का, और कभी संस्कृत के काव्यों का उच्चारण करता हाथ पैर पछाड़ता था । आँखों को भी कभी खोलता और कभी बन्द कर लेता था, घबराहट बहुत ही बढ़ गई । दम पर दम ताली पीट कर वह यही कहता, "एम० ए० बना के क्यों मेरी मिट्टी ख़राब की !" इन शब्दों को सुनकर बाछा मुस्कुराते थे और जर मन ही मन ख़ाक होती जाती थी ।

चाय आई । जर ने खाट पर बैठकर माणिक के सिर को अपनी कोमल जाँघों पर रखा और उसको चाय पिलाने लगी । आधा गिलास चाय पेट में जाने पर माणिक की बड़बड़ाहट कुछ कम हुई । पाव घन्टे के बाद थोड़ा दूध और दो चिम्मच आसव, ये दोनों मिला माणिक के मुख में दवा छोड़ी गई । इस चमत्कारी दवा के पेट में पहुंचते ही, फिर बड़बड़ाहट शुरू हुई । अब तो माणिक खाट पर खड़ा होकर भागने की कोशिश करने लगा । जर माणिक को रोकने की बहुत चेष्टा करती, पर वह एक ही झटके में उसके कोमल हाथों

को झटक देता था। एकाध बार तो उसके झटके से जर को कुछ आघात भी हुआ पर इस सहृदय दयामयी ने अपनी भौंह तक न बिगाड़ी। इतने में ही नीचे किवाड़ी किसी ने खटखटाई। नौकर नीचे जा यह ख़बर लाया कि माणिक के गांव के दो आदमी बाज़ार में उसकी बीमारी का हाल पा उसको देखने आए हैं। डाक्टर ने कहा, "अभी वह बेहोश है और यहां भीड़ भाड़ करने की कोई जरूरत नहीं है।" नौकर ने नीचे जाकर यह जवाब दिया। पर वे, इस बात पर बिल्कुल ध्यान न देते हुए, धड़ाधड़ उपर चढ़ आए। डाक्टर बिचारा अंग्रेज़ी में बड़बड़ाता ही रह गया।

इन दोनों अतिथियों में से एक तो दीवान चन्द नाम के माणिक के जाति बन्धु थे और दूसरे महापुरुष तुलाराम जी पटवारी थे। ये लोग किसी कार्यवशात् लाहौर आए थे। खोजने पर नीचे के दुकानदार से माणिक की बीमारी का पता लगा, तब वे ऊपर देखने के लिये आए। इन लोगों ने तो मन में यही समझा होगा कि बिचारा माणिक अकेला पड़ा होगा पर वहाँ तो एक अप्सरा उसके सिर को अपनी गोद में रख उसे दवा पिला रही थी। इतना ही नहीं, एक अंग्रेज डाक्टर भी उसकी सेवा सुश्रूषा में वहाँ तैयार था। दोनों ने यह कौतुक देखा और एक कोने में जा भूमि पर पलथी मार बैठ गए। महात्मा तुलाराम जी का भक्त मन जर की सुन्दर सलोनी मूर्ति पर पानी पानी हो गया। पर जर का प्रभावशाली चेहरा ऐसा तेजस्वी था कि तुलाराम जी के नेत्र उस पर ठहर ही नहीं सकते थे और न उनको इतनी हिम्मत ही पड़ती थी कि वे आँख उठाकर आँख भर उसको देख ही लें। थोड़ी देर वे बैठे रहे। इसी समय में जर ने सुराही में से

दवा निकाल माणिक को चम्मच से पिलाना शुरु किया। दवा पिलाकर उसने रुमाल से उसका मुंह पोछ डाला। तुला-राम जी की इच्छा हुई कि मैं भी बीमार पड़ूं और यह नाज़नीं मेरी सेवा-सुश्रूषा करे। पर कुदरत ने यारी न बख्शी। कर ही क्या सकते थे? भीतर ही भीतर खाक हो रहे थे। अन्त में उन्होंने इस प्रकार बात छेड़ी:—

"श्रीमती यह हिन्दू का बालक है, अन्तिम समय इसका कोठा भ्रष्ट मत कीजिये। यह तो गंगा जल पिलाने का समय है इस समय तो इसके मुंह में तुलसीदल और सोना रखना चाहिये।"

नर्स ने नाक भौं चढ़ा कर कहा, "खैर होगा।" फिर डाक्टर क्रुद्ध होकर बोले, "यदि आप लोग सीधी राह यहां से चंपत न होइयेगा तो आपको अपमानपूर्वक बिदा करना पड़ेगा इस लिये अब आप कृपा कीजिये।"

लाचारी थी कर ही क्या सकते थे। बिचारे अपना सा मुंह लेकर नौ दो ग्यारह हुए। "भैया, यह समय जाने का नहीं है, भले ही दो घड़ी की देर हो। लड़का अब किनारे आ लगा है, इतनी दूर आये हैं और हालत आँखों से देखी है, भला ऐसी हालत में इसको लकड़ी के सुपुर्द किये बिना कैसे चल सकते हैं?"

दीवानचन्द ने कहा, "आपका कहना तो ठीक है।" लोगों को यदि इसका पता लग जायेगा तो बदनामी का ठीकरा मुफ्त में अपने सिर पर फूटेगा। चलो यहीं बैठें, परन्तु महाराज जी, यदि यह खाट से उठ खड़ा हुआ तो बिना प्रायश्चित किये पंगत में नहीं लिया जायगा क्योंकि इसका कोठा अपवित्र हो चुका है। भाई, यह धर्म की बात है, इसमें तो सगे बाप को भी नहीं छोड़ा जायगा।

पटवारी जी ने भी सुर में सुर मिलाते हुए कहा "खूब कही, जान जाए तो भले जाए, पर धर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। यह तो भ्रष्ट हो ही चुका अब तो इसके घर भर का न्योता काटना ही पड़ेगा। क्या देख कर भी आँखों में धूल झोंक लेंगे? क्यों, उस नाजनी की चटक मटक देखी थी न?"

तुलाराम और दीवानचन्द के जाने के प्रायः एक घन्टे बाद माणिक ने ध्यान पूर्वक आँखें खोल कर देखा कि उसके लक्षाधिपति सेठ की पुत्री उसके सिर को अपनी गोद में रखे हुए उसे दवा पिला रही है और रूमाल से मक्खियाँ उड़ा रही है। जरके इस व्यवहार से वह उसका सदैव के लिये ऋणी हो गया। उसने बोलने की अनेक चेष्टाएं की, पर आवाज़ गले से बाहर न निकली। अन्त में हृदय की उर्मियोंने अश्रुधारा का रूप धारण कर नेत्र द्वार से निकलने का प्रयत्न किया, और यह प्रयत्न सफल भी हुआ। आँसू का प्रवाह उसकी साड़ी पर से उसके पैर पर जा गिरा। परन्तु वह दृढ़ चित्त चतुर बाला इससे न तो ज़रा भी डगमगाई, न कम्पायमान हुई, उलटे दया और प्रेम से अपने हाथों से उसके आँसू पोछने लगी। माणिक ने धीरे धीरे अपने शरीर भर की शक्ति एकत्र कर ऊँचा मुँह करके कहा "मेरी धर्म की बहिन, मेरे संकटों में सच्ची सहायता करने वाली भगिनी, आपका कल्याण हो, आप खूब फूलें फलें!"

माणिक के होश में आने से जर को जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन यह लेखनी करही नहीं सकती। मनुष्यत्व अथवा हमदर्दी इसी का नाम है। ईश्वर प्रत्येक घर में ऐसी पुत्रियों का अवतार दे और घर की शोभा दे यही मेरी प्रार्थना है।

प्रायः डेढ़ घन्टे के बाद फिर वे दोनों, अनिमंत्रित आग-

न्तुक ऊपर आए और घर में घुसने के लिये बहुत फांफे कूदे, पर कुछ सिद्धि नहीं हुई। अन्त में उन लोगों ने अपना रास्ता पकड़ा और रात की गाड़ी से अमोटा के लिये रवाना हो गए माणिक की अवस्था सुधरने की थोड़ी बहुत आशा अब सब के मन में हो गई।

चौदहवाँ प्रकरण

काश्मीर का प्रवास

काश्मीर का प्रवास करके लौटे हुए एक यात्रीने अपने ग्रन्थ में अपने उद्गार इस प्रकार लिखे हैं। अत्युत्तम होने के कारण वे पाठकों के जानने के हेतु यहां उद्धृत किये जाते हैं:—

"श्री कामाक्षा तीर्थ और आसाम देश के दुर्गम दुरारोह भूधर शृंग, दुर्गम वन, तालाब, झरने आदि से युक्त अलौकिक, प्राकृत शोभामयी विधाता की लीला भूमि को देख चकित चित्त ऐसा लुब्ध हो गया था कि वहाँ से चले आने के उपरान्त दीर्घ काल तक हृदय पर चित्रित उस प्रदेशका चमत्कारी चित्र अष्टप्रहर आंखोंके समक्ष नाचा करता था, और मन रूपी पक्षी उस स्थान में विचरने के लिये निशदिन उत्कंठित रहता था।"

"अनेक भाषाओं के विविध ग्रन्थों के पठन और श्रवण से मन में ऐसी लालसा हो आई कि तुषारधारी और नगर-राज-कुमारी वह स्वर्णोपम काश्मीर नगरी तो अवश्य देखनी चाहिये कि जिसके यशगान में क्षेमेन्द्र, हेलाराज, नीलमुनि, पद्ममिहिर, छविलभट्ट, कल्हण, जैनराज, श्रीवरराज और प्राज्यभट्ट आदि

कवीश्वरों ने भारत की सुरस वीणा में अत्युत्तम पद गाये हैं, जिसको दिल्लीश्वर यवन बादशाहों ने बिहिश्त (स्वर्ग) की उपमा दी है, जिस भू-स्वर्ग की शोभा अवलोकन करने को यूरोप और अमेरिका जैसे सात समुद्र पार के देशों से, प्रतिवर्ष विपुल धन व्यय कर, नाना प्रकार के कष्ट भोग प्रियजनों का वियोग सह अनेक प्रवासी आते हैं, और जिसको प्रसिद्ध डाक्टर निव्स तथा डाक्टर एवट आदि ने स्वर्ग का पद प्रदान किया है, उसी काश्मीर देश को देखने की मेरे मन में इच्छा हुई। परन्तु ऐसा अवसर मिलना ही महा दुर्लभ था। अन्त में अनुकूल अवसर और प्रसङ्ग मिले ही। धन्य है वह सर्व शक्ति-सम्पन्न जगदीश्वर कि जिसकी अनुकम्पा से आशा के प्रयास बिना अनायास एक ऐसा सुअवसर प्राप्त हुआ कि जिससे मेरा काश्मीर का प्रवास निश्चय हो गया।"

प्रिय पाठकगण! काश्मीर देखने की इस प्रवासी की तरह सबको इच्छा होना स्वाभाविक है, परन्तु सबको वैसा प्रसङ्ग मिलना असम्भव है। खैर, इस समय हम लोग इस वार्ता के नायकों के साथ साथ काश्मीर के कितने ही स्थानों का अवलोकन करेंगे, जिससे थोड़ा बहुत सन्तोष तो हृदय में अवश्य होगा। इसमें कोई शँका नहीं है। चलिये तब आगे बढ़ें और काश्मीर का अवलोकन करें।

शीतल समीर की सुगन्धित लहरें शरीर में लगने से आनंद देतीं और रोग को हर लेती थीं। झेलम नदी का स्वच्छ और निर्मल जल ऐसा मालूम होता था कि बिल्लौरी पत्थर जमीन में बैठाया गया हो। न उसमें वेग था और न लहरें ही उठती थीं। अर्थात् झेलम अपना उच्छृङ्खल स्वभाव छोड़ कर सर्वथा शान्त बन गई थी। कोसों तक मालूम पड़ता था कि पानी को

चादर बिछा दी गयी है, और वह चादर ऐसी सुन्दर और साफ है कि उसमें एक जगह भी सिकुड़न या सल का नाम नहीं। पानी के इस सरपट मैदान में एक सुशोभित डोंगी—मुग्धा सामान्या स्त्री के समान नृत्य करती हुई दृष्टि-गोचर हुई इसमें तीन मनुष्य बैठे थे। पीछे दो और डोंगियाँ थीं जो इस तरह आ रही थीं जैसे नाचने वाली के पीछे रहने वाले समाजी। पहिली डोंगी में बैठे लोग, मालूम पड़ता था, नसीम बाग की तरफ जा रहे थे। नदी के दोनोँ किनारे घने वृक्षों से सुशोभित थे। फल के भार से वृक्षों की शाखाएँ जमीन सूँघ रही थीं। फल देखने में जितने सुन्दर थे उतने ही स्वादिष्ट, खाने में भी थे। दूसरे इन फलों का जीवनकाल केवल कुछ घण्टों ही का होता था। वहां के मनुष्य भी भाग्यवान थे जो ये फल लम्बी आयुष के नहीं होते थे। नहीं तो, बम्बई और कलकत्ता के व्यापारी उनके वंश का नामोनिशान भी न रहने देते और वहाँ के निवासी तो उन फलों का स्वाद भी न पा सकते। जब तक सत्यानाशी रेल वहां नहीं पहुंचती तब तक तो गनीमत है। यदि वहां तक रेल पहुंची तो जिस प्रकार राली ब्रादर्स ने हिन्दुस्तान में से अन्न का दाना चुन लिया है उसी प्रकार कोई पाली ब्रादर्स पैदा हो कर फलों का सत्यानाश करेंगे। इस बात को ब्रह्मवाक्य की तरह अक्षरशः सत्य जानना! यदि फल बिगड़ेंगे तो बरफ या मधु में रख कर या और किसी प्रकार से उनको बाहर भेजे बिना न रहेंगे।

डोंगी के तीन यात्रियों में से एक लम्बा और भरे शरीर का मनुष्य था। उसका पहनाव अंग्रेजी था। सिर पर स्मोकिंग कैप (टोपी) थी। आंखों पर सोने की कमानी का चश्मा कसा था। मूछें लम्बी लम्बी थीं, गाल भी भरे थे। देखने में

एक यूरोपियन या यूरेशियन सा मालूम पड़ता था। वह एक आरामकुर्सी पर बैठा था। पास ही एक तिपाई भी पड़ी थी। उस पर गरमा गरम चाह का एक प्याला, एक रकेबी में ताजा मक्खन और एक में घी में तली हुई पावरोटी रखी थी। बगल में पड़ी हुई दूसरी कुर्सी पर दो एक अंग्रेजी समाचारपत्र और एक अंग्रेजी उपन्यास पड़ा था।

दूसरे यात्री ने भी अंग्रेजी पोशाक पहिनी थी, पर हाफ़-कोट के एवज में उसने एक लम्बा कोट पहिना था। सिर पर इसने एक थान का फेटा बाँध रखा था। देखने से मालूम होता था कि इसकी सात पीढ़ी में भी किसी को साफा बाँधने का शऊर न था। यदि इसने इस साफे के बदले पारसी चाल का फेटा बाँधा होता तो लोग इसको पारसी ही समझते। यह भी एक आराम कुर्सी पर पड़ा था। सामने तिपाई पर एक चाह का प्याला और राजतरंगिणी नामक काश्मीर के इतिहास का गुजराती अनुवाद, पड़ा था। इस व्यक्ति के मुख का रंग बिल्कुल फीका, शरीर दुर्बल, परन्तु मुख मुद्रा आरोग्य-सूचक देखने में आती थी। देखने से मालूम होता था कि यह अभी बीमारी ही से उठा है।

तृतीय व्यक्ति, वही नव यौवना, गौरांगी, सुखरूपा, कुमारी थी। उसके शिर पर काश्मीर के बहुमूल्य दुशाले का रुमाल लपेटा था। नारंगी रंग की रेशमी साड़ी उसके युवावस्था के शरीर पर सोने में सुगंध का काम कर रही थी। साड़ी के नीचे अंग्रेजी चाल का एक गुलाबी पोलका (चोली विशेष) था। पोलके में की जरी की बूटियाँ साड़ी को पार कर दर्शक के हृदय तक को छेदने में समर्थ थीं। पैर में रेशम के काम के मखमली जूते शोभायमान थे। बटन के काज में गुलाब के फूल की एक

अर्ध-विकसित कली खोंसी हुई थी। मालूम पड़ता था कि वह उसके गुलाबी गाल के रंग से शर्मा कर मुर्झा रही है। इनके रंग रवैया देख कर मल्लाह लोग यह निश्चित नहीं कर सके कि ये लोग किस जाती के हैं। पहिला प्रवासी देखने में युरोपियन मालूम पड़ता था पर उसके मुंह में चुरुट न थी; यह भी एक आश्चर्यजनक बात थी। दूसरा प्रवासी एक बाबू जान पड़ता था, पर इस बाबू की ये लोग इतनी सेवा-सुश्रूषा क्यों करते हैं, यह बात उनको और भी हैरत में डाल रही थी। एक मल्लाह ने अपनी काश्मीरी भाषा में इस प्रकार इस रहस्य के प्रति अपना अनुमान प्रकट किया—

"भाई, मेरे ध्यान में तो आता है कि यह कोई अमीर-जादा है। यह लड़की भी किसी काश्मीरी ब्राह्मण की मालूम होती है जो सदा के लिये यहाँ से बाहर निकल भागी है। यह अंग्रेजी पढ़ी लिखी है और जान पड़ती है कि इस अमीरजादे को अपने चंगुल में फँसा लिया है। यह अंग्रेज इसकी रियासत का मनेजर जान पड़ता है।"

दूसरे मल्लाहने भी इस कथन का समर्थन करते हुए कहा, "हो सकता है, लखनऊ और इलाहाबाद में बहुत से काश्मीरी आ बसे हैं। अंग्रेजी राज्य में नंगे सिर घूमना कुछ आश्चर्य-जनक तो है ही नहीं। इस साहब के साथ तो इसका बाप बेटी का नाता समझ पड़ता है और सम्भव है कि लड़के से इसकी आँख लड़ गई हो।"

तीसरा बीच ही में बोल उठा लड़का बड़ा होशियार है। "देखो अंग्रेजी कैसी गिटपिट गिटपिट बोल लेता है, मैं साहब ही की औलाद हो। यह पुतली इसकी ऐसी सेवा करती है जैसे दाई। मेरे ध्यान में आता है कि यह अमीरजादा अभी

बीमारी से उठा है और इस डाक्टर और दाई को ले कर हवा पानी बदलने आया है। पर यह महामाया इसको चौरासी के फेर में डाले बिना नहीं रहेगी। है भी दई की सँवारी हुई।"

इस प्रकार बात चीत में लगे हुए मल्लाह नाव खेते जा रहे थे। तीनों मुसाफिर अपनी अपनी खिचड़ी अलग ही पका रहे थे। उनकी बात चीत निराले ही ढंग की थी।

इतने ही में प्रथम प्रवासी ने जलपान कर के हाथ धोते हुए कहा "सामने वाली पहाड़ी पर नज़र कीजिए। यह जो मधुर सुगन्ध आ रही है वह वहीं के फूलों की है। यह सुगन्ध चमेली के फूलों की सी लगती है, पर वास्तव में यह चमेली की नहीं है। ये फूल बोए या सींचे बिना कुदरत के खेलवाड़ के नमूने हैं। एशियाई कवियों ने माशूक की जुल्फों के साथ इनकी तुलना की है। हकीकत में ये माशूक की जुल्फे ही हैं। रेशम को शर्माने वाली इनकी मुलायमियत और चट-कीलापन है और उत्तमोत्तम कस्तूरी को मात करने वाली इसकी मस्त सुगन्ध है। इस समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम लोग वेनिस में सैर कर रहे हैं। पेड़ों की समानता तो गज़ब की हैरत में डालती है। इन्हें देखकर यही प्रतीत होता है, मानों प्रकृति के भेजे हुए माली ने नाप जोख कर फरमायशी पेड़ लगाए हों। इन्हीं सब दृश्यों ने अंग्रेजों के दिल को मोह लिया है। देखिए, सामने के मैदान में कैसी अच्छी प्रयोग-शाला बन सकती है। यह देखिए इस मैदान में का बाग, इसे तो प्राकृतिक वनस्पति शाला ही कहना चाहिए। वाह! कैसा सुहावना दृश्य है, मानों स्वर्ग ही उतर आया है।"

पंजाबी प्रवासीने कहा "कुदरती उदारता ऐसी ही होती है। सामने दृष्टि डालिए, देखिए उधर लव खिंचाँ गंगी नहा रही

हैं, मालूम पड़ता है कि परियों और हूरों का समूह कोहेक़ाफ़ से घूमने को इधर उतर आया है। यदि इन लोगों के सुन्दर सुडौल शरीर पर 'गौन' पहिनाया जाय तो क्या ये मेम साहेबा से किसी तरह भी कम नज़र आएँगी ? पर निर्धनता! यदि यूरोपियनों के समान मनमाने सुख इनको मिलें तो ये यहीं स्वर्ग बना दें।"

स्त्री प्रवासी ने अपने कोकिल स्वर से सबों को अपनी ओर आकर्षित कर कहा, "हां, हां, माणिक चन्द्र, दो चार स्त्रियाँ यहाँ से ले चलिए और दो चार मद्रास से मँगाइए, बाद सबों को गौन पहिना कर कहिए कि ये हिन्दुस्तान की सुन्दरियाँ हैं, फिर देखिए कैसा आनन्द है ?"

माणिक,—"हिन्दुस्तान के प्राचीन वेदान्तियों ने मुलतान और लाहौर की जलती हुई लू में न्याय और अध्यात्म शास्त्रों की क्या छानबीन की होगी ? ऐसे मनोरम्य स्थानों में किस प्रकार उन्होंने अपने को क़ाबू में रखा होगा और कैसे ऐसे असाधारण विषयों का ज्ञान सम्पादन किया होगा ? लोग कहते हैं कि पंजाब में कोई भी महात्मा नहीं हुए हैं। यह सच है, हों भी कहाँ से ? जहाँ निरन्तर अग्नि वर्षा होती हो, शरीर जलकर ख़ाक होता हो, और मन मोमबत्ती की तरह सदा जला करता हो वहां शान्ति और अभ्यास कहाँ से हो सके ? वर्षा–ऋतु में भी बुरे हाल और शरद्–ऋतु में तो हाथ पैर अकड़कर लकड़ी हो जाते हैं। ऐसी हालत में यदि कोई शरीर पर क़ाबू रखे, तो कैसे और किन साधनों से ?"

प्रथम प्रवासी ने कहा "यू आर राइट" यदि संसार भर के प्रत्यक्ष नरकों की गणना करनी हो तो अफ़्रिका, अमेरिका और हिन्दुस्तान का अधिक भाग छोड़ सब अच्छी जगहें हैं।

यदि यह काश्मीर न होता तो हिन्दुस्तान भी अच्छी जगहों में गिना जाता।

डोंगी चली जा रही रही। एक के बाद दूसरे नए नए स्थान नजर के सामने आते थे। इतने में जर ने शीशी में से एक खुराक दवा निकाल कर माणिक से कहा, "लीजिए यह एक खुराक दवा पी जाइए और दुशाले को पैर पर डाल लीजिए। आग लगे इस पुस्तक में इस में क्या लिखा है कहती हुई जर ने माणिक के हाथ से किताब छीन कर टेबुल के ऊपर पटक दी।

दवा पीं कर मुंह पोंछते हुए माणिक ने कहा "जरआ यनू इसमें काश्मीर का प्राचीन इतिहास लिखा है। हिन्दी भाषा में भाग्यही से ऐसी पुस्तकें मिलतो हैं। इसका मूल ग्रन्थ संस्कृत भाषा में है और इसके प्रणेता कल्हण पंडित हैं। इस ग्रन्थ में कहीं कहीं तो तिलस्मातों और चमत्कारों की खूब ही चर्चा की गई है और यही ग्रन्थ का जीवन है। अस्तु संस्कृत कवियों की यह पुरातन रीति है, अतएव यह क्षम्य है।

पानी की सतह पर डोंगी नाच रही थी। वह एक विशाल मैदान के पास पहुंची, जो चारों ओर से पहाड़ियों और झाड़ियों से आवृत्त था, इसी कारण उसकी शोभा दिन दूनी और रात चौगुनी हो रही थी। माणिक को इस भूमि के देखते ही इतना आनन्द हुआ कि वह एकाएक उठ बैठा और अपने मन के उद्गार प्रकट करने लगा, "अहाहा, कैसा रमणीय स्थान है! यदि ईश्वर मुझे धन दे तो मैं यहाँ पर एक स्कूल की स्थापना करूँ और बालकों को उचित शिक्षा दिलाऊँ। आधी मील की दूरी पर एक कन्या पाठशाला भी स्थापित करूँ और चतुर्दिक एक चहारदीवारी भी उठवा दूं। स्थापित पाठशाला में

मैं धर्म के झगड़ों की बू भी नहीं घुसने दूँगा। संस्कृत और अरबी की शिक्षा को तो मैं सब से पहिले ही शिक्षा दे दूंगा। जिसको धर्म की शिक्षा के झगड़ों में पड़ना हो और गड़े मुरदे उखाड़ना हो उनको चाहिए कि वे अपना दूसरा रास्ता देखें। मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगा कि फारसी दरवाजे के भीतर लात भी नहीं रखने पायगी। क्योंकि अब इन भाषाओं से बेड़ापार नहीं होने का है। इनके बिना हिन्दू-मुसलमान वा पारसी किसी की भी गाड़ी रुकी नहीं रह सकती। आरम्भ ही से अंग्रेजी भाषा की बाँह पकड़ना अधिक लाभकारी प्रतीत होता है। आरम्भिक और मिडिल की परीक्षाओं का तो मूलोच्छेद कर डालूँगा। भूगोल, इतिहास, गणित, तथा रेखा गणित सब की शिक्षा अंग्रेजी ही में दूंगा। दो बोर्डिंग हाउस (छात्रालय) की स्थापना करूँगा। एक में विद्यार्थी और दूसरे में शिक्षकों के रहने की व्यवस्था करूँगा। बालकों के लिए एक दाई रक्खूँगा, जो माता की तरह सब बालकों को पालेगी। बड़ों के निवास की देख रेख का काम एक अँग्रेज निरीक्षक के हाथ में दे दूंगा। शारीरिक शक्ति के वृद्धयर्थ एक विशेष प्रयोग शाला और अखाड़ा खोलूँगा।"

स्त्री प्रवासिनी ने ताना मारते हुए कहा, "क्यों नहीं, अब भी माथे पड़ी नहीं सूझेगी। क्या हिन्दू लोग अपने लड़कों को वहाँ भेजेंगे? उनको तो अपने घर के झगड़े, और उनके लड़कों को जरी के कपड़े पहिने गुड़वा गुड़िया के विवाह आदि से ही कहाँ फुरसत कि वे अपने लड़कों को आप की पाठशाला में भेजें?

"शेख चिल्ली के विचारों में गोते खाते हुए माणिकचन्द ने कहा। "झखमार कर वे स्वयं भेजेंगे। मास्टर भी मैं अँग्रेज ही रखूंगा, जिसमें उन लोगों का उच्चारण भी शुद्ध हो। अल्प-शिक्षितों को तो मैं मुफ्त में भी अपने यहाँ न रक्खूंगा।"

प्रथम प्रवासी—"फिर तनख्वाह देते समय तो आकाश पाताल सूझने लगेगा न ?" पंजाबी-"नही साहेब, मुँह माँगी तनख्वाह दूंगा। लड़के स्वभाव ही से चंचल होते हैं हमारे विश्व-विद्यालय तो लड़कों को रद्दी कर डालते हैं, मैं वैसा नहीं होने दूंगा। कालिज में मैं चार विभाग करूँगा। एक में केवल विद्या और सभ्यता की शिक्षा दी जायगी, दूसरे में क़ायदे-क़ानून की, तीसरे में दवा दारू की और चौथे में विज्ञान यन्त्र शास्त्र, रसायन, व्यापार-धंधा और देश सेवा आदि की शिक्षाओं का प्रबन्ध रहेगा। साथ ही साथ हुनर-कला का भी एक शिक्षालय खोला जायगा। रात में दस बजे सब को सो जाना होगा, उसके बाद कोई पढ़ने नहीं पाएगा। क्रिकेट, फुट-बाल, टेनिस और पोलो आदि खूब खेलाये जाएँगे जिससे हाथ-पैर लट्ठ ऐसे हों। घोड़े की सवारी सिखाने के लिए एक अच्छा सवार भी रखूँगा।"

थोड़ी देर विश्रान्ति लेकर माणिक ने फिर अपना विषय उठाया, "परीक्षक भी सब अंग्रेज़ ही रहेंगे और वे भी वयो-वृद्ध। प्रश्न भी थोड़े ही पूछे जाएँगे, और जितना लड़के ने पढ़ा होगा उतने ही की कसौटी होगी। इधर उधर के प्रश्न पूछ कर लड़कों को चक्कर में नहीं डाला जायगा। जर्मन और जापान वालों के सिद्धान्त पर परीक्षा ली जायगी। विद्यार्थी और परीक्षकों में परस्पर मित्र-व्यवहार रहेगा। कुम्हार की तरह चाक से काम रखने वाले मास्टर और गधे की तरह किताब ढोने वाले विद्यार्थी इन दोनों का अवतार निरर्थक है। पठन पाठन से विमुख व्यक्ति व्यर्थ अपना जीवन ख़राब करते हैं।"

उस नव यौवनाने हँसते २ कहा, "अब आप बोलते बोलते

थक गये होंगे इस लिए मेहरबानी करके यह चाह पी लीजिये, कुछ ताज़े फल खा लीजिए और दो एक बिस्कुट भो उड़ाइए।" भूखे पेट आप सब दौलत इसी तरह उड़ा देंगे तो फिर आपको दर्द होगा। लीजिऐ इसके साथ यह मक्खन भी स्वाहा कर जाइऐ।"

पंजाबी यात्रीने इधर उधर देख कर दो एफ लुकमें उड़ा लिए इस पर मल्लाहों ने यह अनुमान किया कि यह साहब को छू कर खाता है, इससे यह आदमी मुसलमान होगा। इसी आधार पर मल्लाहों ने अब माणिक को मियाँ साहब के नाम से पुकारना शुरू किया। माणिकने उन लोगों की भूल सुधारना उचित नहीं समझा। वह मियाँ साहब ही बना रहा। आख़िरकार नाव नसीमबाग़ पर आ लगी, पर रात हो जाने के कारण मुसाफिरोंने डोंगी ही में विश्राम किया। रातभर ऐसी नींद आई जैसे 'बैल बेच कर सोए थे'

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि माणिक की तबियत कुछ ठिकाने आने की आशा से डाक्टर ने उसे जलवायु बदलने की अनुमति दी। इसी दरमियान में एदलजी का भी अपनी पुत्री के साथ काश्मीर-प्रवास करने का विचार हुआ। जर के आग्रह से माणिक को भी उन्होंने अपने साथ ले लिया था। नहीं तो माणिक का ऐसा भाग्य और सामर्थ्य कहाँ कि बात की बातमें वह काश्मीरका सफर कर सकें। यह ठीक ही हुआ कि उसके भाग्य से उसको ऐसा अच्छा और सुशील मालिक तथा ऐसी दयालु सेठ की पुत्री मिली थी।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

द्वेषाग्नि

संसार में जितनी पीली और चमकती हुई वस्तुएँ हैं सब सोना ही नहीं है, श्वेत वस्तु रूपा नहीं है, और मनुष्याकार सब व्यक्ति मनुष्य ही नहीं हैं, कितने कवियों का यह खास अभिप्राय अक्षरशः सत्य है। यदि हम ध्यान से देखें तो एक एक पैर पर इसका अनुभव इस संसार में होता है। कवि शिरोमणि और संसार के पूर्ण अनुभवी श्री भर्तृहरि का "येतु घ्नान्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।" यह महावाक्य हमको एक एक क्षण पर, पद पद पर याद आता है। इस समय हमें भी वैसे दो महापुरुषों—विघ्नसंतोषी सज्जनों—के साथ परिचय करना है। इसलिए उनको भी देखें।

यात्रा में जर ने अपने साथ दूसरे दो पारसी युवकों को भी ले लिया था। ये दोनों उसके दूर के सम्बंधी और इस समय एदलजी के नौकर थे। एक का नाम अरदेशर विलायती था और दूसरे का नाम पेस्तनजी पस्ताकिया था। अरदेशर की उम्र लगभग २५ वर्ष की थी। दिखाव में वह एक पूरा यूरोपियन मालूम पड़ता था। इसी से इसका 'विलायती' नाम पड़ा था। यह बम्बई विश्वविद्यालय का एक ग्रेजुएट था। पेस्तनजी बिचारा मेट्रिक ही पास था। एफ ए० में बार बार माथा मारने पर भी पास न हुआ। अवस्था भी तीस तक पहुंच चुकी थी, पर अब भी इतना शऊर नहीं आया था कि "आठछूंडे" कितना हुआ जल्दी बता सके। दोनों अपरिचित स्वभाव के थे। इनमें आपस में खूब बनती थी। पर दूसरों के साथ तो

इनके सदा बारहवें चन्द्रमा रहते। जब से माणिक एदलजी के यहां रहा और इसने अपने मालिक तथा देवी समान मालिक की बेटी की कृपा प्राप्त की, तब से यह उनकी आंखों में खूब खटकने लगा। परन्तु भले एदलजी के सामने उनका कोई चारा न लगता। जबसे काश्मीर की सैर में डाक्टर बाछा ने माणिक को अपने साथ नाव में बैठाया और अपनी गाड़ी में साथ घूमने ले जाना और अरदेशर तथा पेस्तन को नौकरों की नाव या गाडी में बैठने का हुक्म दिया तब से तो इनकी क्रोधाग्नि और द्वेषाग्नि और भी भभक उठी। उनकी मानसिक कुढ़न की कोई दवा न थी। जिस समय माणिक अपने स्कूल सम्बन्धी विचार व्यक्त कर रहा था, उस समय इन दोनों में दूसरी नाव पर इस प्रकार बातचीत हो रही थी।

अरदेशर–"देखते हो न पेसी, इस बुड्ढे की अक्ल पर पत्थर पड़ गये हैं। न मालूम सब जरथोस्ती कर गए हों अब यह इस अहमक हिन्दू पर अधिकाधिक प्रेम दिखाता है। इस लड़की के भी कौतुक मुझे कुछ अच्छे नहीं मालूम पड़ते। शैतान की औलाद इस माणिक ने न जाने कैसा जादू बाप-बेटी पर कर दिया है कि वे इसकी मुट्ठी में हो गए हैं, यहाँ तक कि वह सेठ की गाड़ी में और सेठ के घर में मालिक बनकर बैठे और हम लोग नौकरों की तरह रहें। धिक्कार है! क्या नौकरी की आबरू खोने के लिये? अब हम लोगों की इज्जत ही क्या रही? सच कहना पेसी।"

पेस्तन, "एदू! मुझे तुमसे कहीं अधिक इस बात का ख्याल है, पर किससे कहूं और किससे नहीं। किसी भी प्रकार से इस शैतान का पैर अपने घर में से निकले, ऐसी कोई चाल चलनी चाहिये।"

पेस्तन एदल जी की दूकान का पुराना अनुभवी आदमी था। अरदेशर भी बी० ए० पास था। इन दोनों को सौ सौ रुपये माहवारी मिलते थे। परन्तु बिचारे माणिक को एम० ए० पास होते हुए भी कुल बीस रुपए मिलते थे। इनको उस से द्वेष का कोई विशेष कारण तो था ही नहीं, परन्तु अपनी दुर्जनता दिखाने के लिये, एदलजी और जर के माणिक पर अधिक प्रेम दिखानेपर ये उससे द्वेष करते। दुर्जनोंकी महिमा गाते हुए एक कवि ने कहा है, "मन में करुणा न होनी, कारण बिना दूसरों के साथ विग्रह करना, परधन और पर नारी की इच्छा करनी, अपने इष्ट मित्र वा बन्धुओं की वृद्धि को देख न सकना, आदि गुण दुर्जनों में नैसर्गिक रीति से वास करते हैं।" इस वाक्य में कितनी सत्यता है यह अरदेशर और पेस्तन जी के उदाहरण से पाठकों को प्रत्यक्ष हो जायगा। एदल जी, बैरामजी जर और डाक्टर वाछा के दिलों में जितनी उदारता नज़र आती है उतनीही अनुदारता और असहिष्णुता अरदेशर और पेस्तनजी के मन में समाई हुई है। पाठकों के लिये यह कोई नई बात नहीं है। पारसियों में जितनी उदार, दानी और परमार्थियों की विपुलता है, उतनी ही मिथ्याभिमानी, अपने आगे किसी को कुछ न समझने वाली, द्वेषी, और कृपणों की न्यूनता नहीं है। गाँव में गौशाला होनी ही चाहिये। पर खेद इतना ही है कि इस वर्ग के लोग पारसियों के अङ्गरेजी पढ़े लिखे नवयुवकों में अधिक पाये जाते हैं। अङ्गरेज आपले को नीचा मानते हैं और उसके विरुद्ध पुकारते हैं। वे दूसरों को भी नीचा मानने में जरा भी आनाकानी नहीं करते। उनकी स्थिति ठीक ऐसी ही है जैसी लड़की को कहे और बहू को कान हो।"

अरदेशर और पेस्तन ने माणिक की बुराई करने में कोई बात उठा न रक्खी, पर जब तक ईश्वर, पद्लजी और जर की उस पर कृपा दृष्टि थी तब तक उनका कुछ भी किया न हो सका।

सोलहवां प्रकरण

जापान और उसका इतिहास

अब हम जापान की तरफ मुड रहे हैं, अतः उस देश के इतिहास का यहाँ कुछ दिग्दर्शन कराना आवश्यक होगा। यद्यपि हमारी वार्ता का जापान के इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि उसकी कुछ विवेचना करने की तीव्र इच्छा को मैं रोक नहीं सकता, आशा है कि विज्ञ पाठकगण मुझे इस साहस के लिये क्षमा करेंगे। इतने पर भी जिन पाठकों को इतिहास से बिल्कुल नफरत हो वे थोड़े पन्ने उलट डालें और जहाँ से वार्ता का सम्बन्ध मिलता है वहीं से बाँचना शुरू करें।

जापान एक द्वीपपुञ्ज है, यहाँ के पर्वत विशेषतर ज्वालामुखी हैं। इसी कारण यहाँ बहुधा भूकम्प आदि का जोर रहता है। ईसवी सन के २८६ वर्ष पूर्व एक ऐसा भारी भूकम्प आया था कि यहाँ एक स्थान पर भूमि ऊपर को उठ आई थी, जो आज कल फूजी पर्वत के नाम से विख्यात है। इसकी ऊँचाई १३००० फीट से भी अधिक है। दूसरे स्थान पर पृथ्वी के नीचे धँस जाने से एक तालाब बन गया था, जिसको अभी भी लोग 'बीवा तालाब' के नाम से पुकारते हैं। इस तालाब की लम्बाई ६०

मील और चौड़ाई २० मील है । इस देश में छोटी छोटी वेग से बहने वाली नदियाँ अनेक हैं। यहाँ जङ्गल भी बहुत हैं।

जापान में सोना, चाँदी, तांबा, लोहा, कोयला तथा पत्थरों की असंख्य खाने हैं। इस कलाकौशल और यंत्र-विद्या के ज़माने में जापान ने कोयले और लोहे की खानों की बदौलत ही इतनी उन्नति कर पाई है। कुछ काल पूर्व, जापानवाले स्टीमरों को विलायतवालों से ख़रीदते थे और उनको बड़े आश्चर्य की दृष्टि से देखते थे। एक स्टीमर के आते ही कितने साहसी जापानियों ने कूद कर अपने हाथों ही उसे चलाने का प्रयत्न किया था। जब वह चलने लगा तो उसको खड़ा करना कठिन हो गया था। अन्त में बायलर की अग्नि खतम हो जाने पर वह आप ही आप खड़ा हो गया। एक वह समय था और एक समय आज का है कि जो चाहे सो पोर्ट आर्थर पर खड़ा हो कर जापानी स्टीमरों के समूह को देखे। उसमें एक छोटे से छोटा लकड़ी का टुकड़ा भी जापानी भूमि का ही निकलेगा। उसका चलाने वाला या उसमें काम करने वाला प्रत्येक आदमी आप को जापानी ही मिलेगा। अन्य संसार जापान को स्टीमरों को देख कर आश्चर्यित होते हैं।

इस समय जापान की जन संख्या ५२२०१००० से भी अधिक है। मनुष्य-गणना करने की रीति जापान में बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। इतिहास देखने से यह पता लगता है कि ईसवी सन् से ८६ वर्ष पूर्व, कर लगाने के लिये मनुष्य-गणना की गई थी। जापान देश के लोग भी बहुत वर्षों तक अभागे भारतवर्ष की ही तरह अन्य देशों के लोगों को राक्षस समान समझते थे। यहाँ तक कि उनसे भेंट करने में भी बहुत सकुचाते थे। वे स्वयं परदेश नहीं जाते थे और पर-

देशियों को भी अपने यहाँ नहीं आने देते थे। जापान की भूमि के उपजाऊ होने के कारण उनकी प्रत्येक आवश्यकता वहीं पूरी हो जाती थी। सब से पहिले मार्कोपोलो नाम के एक यूरोपियन ने सन् १२९५ में जापान का थोड़ा वृत्तान्त लिखकर प्रकाशित किया था।

सोलहवीं शताब्दी के मध्य में व्यापार और साहस में प्रसिद्ध, पुर्तगाल वालों ने जापान से व्यापारिक नाता जोड़ा। उनकी देखा देखी सुफेन (स्पेन) के लोग आए और फिर डच लोगों ने भी अपना हाथ बढ़ाया। एक शताब्दी के बाद डच लोगों ने हालैण्ड के बादशाह के पास पत्र भेजा कि एक बड़ी सेना भेज कर जापान के बादशाह को गद्दी पर से उतार देना चाहिए जापानियों को इसका पता लग गया और सन् १६२९ में चीन और डच वालों के अतिरिक्त अन्य सब परदेशी जापान छोड़ने के लिये वाधित किए गए। इस में डच वालों को बहुत नीचा देखना पड़ा। नागासाकी नाम के एक छोटे टापू में वे कैद कर दिए गए और उनकी देख रेख के लिये जापानी सिपाहियों का सख्त पहरा बैठाया गया। डच प्रतिनिधि को वर्ष में एक बार जापान के बादशाह के सम्मुख उपस्थित होना पड़ता था। उस समय में जापान का बादशाह स्त्रियों की तरह सदा परदे में रहता था। उस डच प्रतिनिधि को जापान के राजा की मर्यादा कायम रखने को लिये उनको साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम कर के घुटने के बल बाहर आना पड़ता था। जापानियों ने दो सौ वर्ष तक इस प्रकार अपने देश का द्वार विदेशियों के गमनागमन के लिये बन्द रखा। अन्त में सन १८५३ की आठ-वीं जुलाई को अमेरिका के प्रेसिडेंट का पत्र लेकर कामोडोर पेरी नाम का एक सरदार जापान के बादशाह के पास आया।

अमेरिका वाले यह चाहते थे कि उनके जो जहाज़ जापान की तरफ़ जायँ, उनसे जापान वाले मित्रभाव रखें और चीन से अमेरिका जाने वाले जहाज़ जापान में कोयला पाएँ। इसी के लिये उन्होंने कामोडोर पेरी को जापान भेजा था। पेरी को जब यह पता लगा कि राजा और अन्य देश के दूतों का पत्र-व्यवहार नागासाकी के सरदार के द्वारा ही हो सकता है, तब वह एक सर्दार को पत्र दे कर चला गया और जाते समय यह कह गया था कि इस पत्र का उत्तर लेने मैं एक वर्ष के बाद आऊंगा। जापान के राजा ने जब यह बात सुनी तो वह बहुत चिन्तातुर हुआ। उसने सबों को यह आज्ञा दी कि सब सूर्यदेव (अमतरेसु) से प्रार्थना करें कि वे विदेशियों को अपने से दूर ही रखें! दूसरे वर्ष पेरी जहाज़ लेकर आया और उसने जापान में थोड़ी दूर तक रेल और तार का प्रचार किया। यह देख कर जापानी जितने आश्चर्यित हुए उतने ही प्रसन्न भी हुए। फलतः अमेरिका वालों के लिये उन्होंने दो बन्दर खोल दिए। यह देख कर यूरोप के दूसरे राजाओं ने भी अपने दूत भेजने शुरू किए। सन् १८६८ में अंग्रेज़ों ने लार्ड एल्गीन को जापान भेजा। जापानी सरकार ने इन लोगों के लिये भी कई बन्दर खोल दिए और उनके एक प्रतिनिधि को जापान में रहने की आज्ञा भी दे दी।

पेरी जब पहिले पहिल जापान में आया था, उस समय वहाँ के राजा तथा वहाँ की प्रजा सब विदेशियों को अपने देश में आने देने के और उनको अधिकार देने के सर्वथा विरुद्ध थे। उन लोगों का यह कहना था कि हमारा देश तो देवताओं का निवास-स्थान है, यहाँ म्लेच्छों का क्या काम है? खैर: प्रत्येक देश में किसी नियत संख्या में दूर दर्शी लोग तो होते ही हैं, इसी प्रकार जापान भी उनसे खाली न था—यद्यपि उनकी संख्या

बहुत कम थी, तथापि समय के अनुसार उनके उपदेश विशेष लाभकारी सिद्ध हुए। इन थोड़े से बुद्धिमानों ने यह अनुमान कर लिया था कि इन नवागन्तुक परदेशियों का आगमन लाभकारी होगा। नवयुवकों ने भी उनके कथनानुसार उसी समय से विदेश यात्रा आरंभ कर दी। इस से जापान में भयंकर कोलाहल मच गया। जो 'लकीर के फकीर' थे वे विदेशियों के आगमन और जापानी नवयुवकों के विदेश-गमन से बहुत खिन्न हो गये थे। उनकी खिन्नता की मात्रा यहाँ तक बढ़ गई थी कि उन्होंने प्रायः पचास विदेशियों को अपनी क्रोधाग्नि में बलि चढ़ा दिया और यूरोपियन प्रतिनिधियों के कितने घर गोला बारूद से उड़ा दिये। जो जो जापानी विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त कर के आते थे उनको वे घृणा और धिक्कार की दृष्टि से देखते थे। जो जापानी पहिले विदेश से शिक्षा प्राप्त कर के आए थे, उन्होंने जापान के दिन फेर दिये—ऐसा कहा जाय तो कुछ अतिशयोक्ति नहीं होगी। गो कि डाक्टर और बारिष्टर होना पाप नहीं है, पर न जाने क्यों अपने देशी भाई हाथ धो कर इसके पीछे पड़ गए हैं। इस से हमारे देश की उन्नति कभी नहीं हो सकती जापानियों ने जिस प्रकार की शिक्षा प्राप्त की है उसी प्रकार की शिक्षा से लाभ हो सकता है।

जापानी अभी तक कामोडोर पेरी के नाम का मानपूर्वक उच्चारण करते हैं। चरू की खाड़ी के पास के एक गाँव में पेरी का स्मारक बनाया गया है और जापानी लोग पेरी को ही अपनी उन्नति का हेतु मान उसकी इज्जत करते हैं।

जापानियों के पुराण के अनुसार जापान का बादशाह भारतवर्ष के प्राचीन राजाओं की तरह सूर्यवंश में उत्पन्न हुआ है। परन्तु वे जिस प्रकार अंग्रेज़-चन्द्र को स्त्रीलिंग

मानते हैं, सूर्य को देव न मानकर देवी की तरह पूजते हैं उनके मत के अनुसार पहिले सात देवता स्वर्ग से आकर पृथ्वी पर बसे थे। ये ही अन्य सब देवताओं के जनक कहे जाते हैं। वर्तमान राजा भी उसी वंश का है। इन लोगों के हिसाब से प्रथम राजा जिंमू सवी ईसवी के ६६० वर्ष पूर्व सिंहासनारूढ़ हुआ था। उसी समय से इनके संवत्सर का आरम्भ हुआ है। इस समय ईसवी सन् १९२२ चलता है और उनके संवत्सर की संख्या २५८१ है। तब से आज तक जापान के सिंहासन पर १११ राजा और ११ रानियां बैठी। इन राजाओं और रानियों में कितनों ने १४१ से १४३ वर्ष तक की आयु भोगी है। यह जापानियों की दंत कथाओं के आधार पर कहा जाता है।

वर्तमान जापानी लोगों का मूल निवास-स्थान यह नहीं है। यहां के मूल निवासी आइनों जाति के लोग थे। वे सर्वथा जंगली ही थे। ई० सन् से पूर्व २६० से २१६ तक आइनों जाति वालों पर दक्षिण दिशा से लगातार चढ़ाइयाँ होती रहीं। इन चढ़ाई करने वालों में चीनी, मलायन, मयपूयन और कुछ कोरियन थे। अन्त में इन सबों की मिल कर एक जाति बन गई जो अब जापानी के नाम से पुकारी जाती है। जापान शब्द भी चीनी भाषा का है। उसका अर्थ 'उगता हुआ सूर्य' (the rising sun) होता है। वहाँ के लोग अपने देश को "दाइनियन्न" अथवा 'निपन्न' तथा 'निहन' भी कहते हैं।

अनेक लोगों का यह अभिप्राय है कि जापान की सभ्यता नई है। उन्होंने यह सभ्यता अंग्रेजों से प्राप्त की है। यदि सच पूछा जाय तो जापानी लोग प्राचीनकाल ही से सभ्य चले आते हैं-ये कुछ नवीन सभ्य नहीं हैं।

सत्रहवां प्रकरण

जापान तथा उसका इतिहास (अनुसंधान)

जापान के बादशाह मिकाडो कहे जाते हैं। इस शब्द का अर्थ 'बड़ा फाटक' है। जापान के बादशाही प्राचीन काल ही से सादे वस्त्र धारण करते आये हैं। उनका भोजन भी सादा ही होता है ईसवी सन् ११६० से जापान में दो प्रकार के राजा राज करने लगे। दूसरे प्रकार का राजा 'शोगन' के नाम से लोगों में प्रसिद्ध था। यह (दो राजा होने की प्रथा) सन् १८६७ तक रही। राजा को वे लोग देव समझते थे। रानी और प्रधान के अतिरिक्त किसी को भी उनका दर्शन नहीं हो सकता था। यदि किसी को किसी विशेष कारण से उनसे मिलने की आज्ञा मिलती, तो राजा स्वयं खर और पत्ते की गद्दी पर पर्दे में बैठ कर बात चीत करता था राजा भूमि पर पैर नहीं रखता था। उसके उतारे हुये कपड़े जला दिए जाते थे। जिस थाली में राजा एक बार भोजन कर लेता था वह दूसरी बार काम में नहीं आती थी। राजा का सत्य-पद तो 'मिकाडो' का ही था। तथापि दूसरे राजा के होने का यह कारण है कि दसवीं शताब्दी के अन्त में पूर्व दिशा के जंगली लोग टोली बांध कर धावा मारने लगे। इन लोगों को दबाने के लिये बड़े बड़े सरदार नियुक्त किए गए थे। वे 'टाइरो' और 'मिनमोटा' के नामों से प्रसिद्ध थे। ये सरदार बड़ी बड़ी पदवियां प्राप्त करने के लिये आपस में चढ़ाव ऊपरी करने लगे। दसवीं शताब्दी के अन्त में इस विग्रह ने बड़ा ही भयंकर रूप धारण किया। राजा

जब यह देखता कि एक पक्ष ने भारी विद्रोह करना शुरु किया है, तब वह दूसरे पक्षवालों को इनसे लोहा लेने को भेजता। इससे उभय-पक्ष में शत्रुता बढ़ती ही गई, यहाँ तक कि बारहवीं शताब्दी के मध्य में टाइरा दल के सेनापति कियोमोरी ने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके विपक्षियों के सभी सरदारों की हत्या कर डाली। मिना मोटा दल के बड़े सरदार के दो शिशु बालकों को छोड़ इसने एक एक को चुन चुन कर स्वर्ग का द्वार दिखा दिया। कौन जानता था कि ये दो छोटे बालक बड़े होकर अपने पूर्वजों के बैर का बदला चुकाएँगे? कियोमोरी का प्रभाव बढ़ता गया। सन् ११८० में प्रधान पद प्राप्त करने के बाद इसने अपनी पुत्री का विवाह उस समय के राजा के साथ कर दिया। उसको एक पुत्र हुआ। अब वह अपने नाती को गद्दी देने के लिये राजा पर दबाव डालने लगा। इस प्रकार अपने सम्बन्धियों को ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुँचा कर सन् ११८१ में वह परलोक सिधारा। कियोमोरी के अवसान के बाद उसके शत्रु के दोनों बालकों ने, जिनको इसने बच्चे समझ कर छोड़ दिया था, एक बड़ी सेना इकट्ठी की। सन् ११८५ में जल और थल पर एक भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें कियोमोरी दल का एक बड़ा भाग खेत रहा। अब फिर मिनमोटो दल वालों का सिक्का जमा। इसी प्रकार सन् १८१३ में जब आइनों जाति के लोगों ने विरोध किया था, उस समय एक नवीन पद क़ायम करके एक जागीरदार की नियुक्ति की गयी थी। यह पद मिनमोटो दल के अग्रसर को प्राप्त हुआ और वह शोगन के नाम से विख्यात हुआ। शोगन अपने को राजा मानने लगे। दोनों दलों को राज़ी रखने के लिये और परस्पर

के वैरभाव को निर्मूल करने के लिये अमीरों को वर्ष में छः महीने राजधानी नगर में और छः महीने बाल बच्चों को वहीं छोड़ कर बाहर रहने की आज्ञा दी गई थी।

सन् १८५६ में यूरोपियनों को राज्य में प्रवेश करने की आज्ञा देने वाले ये शोगन ही थे। मिकाडो के साथी इस कार्य के विरुद्ध थे। उन लोगों ने देश भर में यह डंका फेर दिया कि मिकाडो की जय और म्लेच्छों की क्षय हो जिस शोभन ने विदेशियों को अपने देश में घुसने की आज्ञा दी थी, उस की मृत्यु के बाद उसी का पुत्र पदारूढ़ हुआ। इस समय इसकी अवस्था केवल बारह वर्ष की थी। अतएव राज्य का भार उसके एक प्रधान पर था। परन्तु इस शोगन की युवावस्था ही में मृत्यु हो गई। इसके बाद मिकाडो का भी देहान्त हुआ और उसका पुत्र गद्दी पर बैठा। शोगन के पद पर ई० सन् १८६७ में एक दूसरा व्यक्ति नियुक्त किया गया। बस, जापानियों के भविष्य के निर्णय होने का यही समय था। नई रोशनी के युवकों को यूरोप की राज्य-प्रणाली बहुत पसन्द आ गयी थी। उनके मन में जापान को यूरोप की क्या, संसार भर में सर्व श्रेष्ठ, सभ्य जाति की बराबरी करने की लालसायें बढ़ रही थीं। एक देशभक्त जागीरदार ने शोभन को एक पत्र लिख भेजा कि, हे महाराज, आप को अपना पद मिकाडो को अर्पित कर देना चाहिए। इस प्रकार आप एक ऐसा बीज बोयेंगे, जिससे जापानी लोग अन्य देशों के सभ्य और सुशिक्षित लोगों की बराबरी करने में सत्वर ही शक्तिमान् होंगे, अर्थात् जो अधिकार उनको प्राप्त हैं वे ही अपने लोगों को भी प्राप्त हो जायंगे। शोगन ने इस पत्र का उत्तर बहुत विचार करके दिया "यद्यपि इस पद पर मेरा पैत्रिक

अधिकार है, परन्तु राज्य की वर्तमान् दुर्दशा देखकर, मैं बड़े आनन्द से मिकाडो को अपना अधिकार दे देने को तैयार हूँ।"

आपने ऊपर पढ़ा है कि मिकाडो किसी दिन भी अपने महल से बाहर नहीं निकलता था। परन्तु स० १८६८ में जब शोगन अपना अधिकार दे देने को तैयार हुआ, तब राजमन्त्री ने राजा से पर्दे के बाहर निकलने की बिनती की; कारण कि मिकाडो का प्रधान उच्च शिक्षा प्राप्त और उन्नत समाज का सभ्य था। उसने बड़ी नम्रता से राजा से प्रार्थना की कि, सात पीढ़ियों से हमारे बादशाह पर्दे में रहते आए हैं और उन्होंने कभी भी पृथ्वी पर पैर नहीं रखा है। बाहर क्या होता है उसकी सच्ची ख़बर श्रीमान् के कान तक नहीं पहुंच सकती, इसलिए आज से आप 'लकीर की फकीरी' को छोड़ प्राचीन मर्यादा का त्याग कीजिए और प्रजा को अपना दर्शन दीजिये। राजा को भी यह बात पसंद आ गई। वह परदे के बाहर निकल आया और कायटो को अपनी राजधानी बनाया। राजधानी की स्थापना होने के बाद उस स्थान का नाम टोकियो रखा गया। इस समय बादशाह की उमर केवल अठारह वर्ष की थी। देश देशान्तर के राजाओं को भी यह सूचना दे दी गई कि शोगन ने अपना पद त्याग कर दिया है और अब से सब अधिकार मिकाडो को है। अब से वही गद्दी पर हैं इस पत्र पर राजा मटसुहितो का हस्ताक्षर था, यह प्रथम ही अवसर था कि प्रजा ने राजा का ठीक ठीक नाम जाना।

जापान में भी प्राचीन समय के कितने देशोंकी तरह जागीरदार अपनी अपनी जागीरों के एक छुटे ही राजा अथवा ठाकुर गिने जाते थे और अपनी जागीरों में स्वतन्त्रता से काम कर सकते थे। विचारशील युवक जापानियों को यह प्रथा

देशोन्नति के मार्ग में कण्टक रूप प्रतीत हुई। अतएव वे इस प्रथा को निर्मूल करने की पूर्ण चेष्टा करने लगे। जागीरदारों ने भी बिना किसी प्रकार की आनाकानी किए उनका मत स्वीकार कर लिया और अन्त में उन्होंने यह भी निश्चय किया कि सब जागीरदारों को अपने को राजा की प्रजा समझनी चाहिए। किसानों को भी आज्ञा दी गई कि वे मिकाडो को अपना जागीरदार मानें। इस प्रकार छोटी छोटी टोलियाँ टूट गयीं और सब मिलकर एक महान दल तैयार हुआ। सन् १८७१ में सब जागीरदार और सब अमीर-उमरा टोकियो में एकत्र हुए और सबोंने राजा के आगे अपना अपना सिर झुकाया। प्रधान मन्त्री ने इस नवीन व्यवस्था की सूचना देश-भर में फैला दी। यह घटना जापान के इतिहास में 'बलिदान पर्व' जैसी है। देखिये शोगन राजासे लेकर सब छोटे बड़ों ने कैसी शूरता से अपने देशकी उन्नति के लिये अपने अधिकार की बलि चढ़ा दी। नई रोशनी वालों की बढ़ती होती जाती थी। इस हालत में भी पुराने ख्याल के जापानी प्रगति को देशोन्नति में भयप्रद समझते थे। यहाँ तक कि एक बार उन्होंने बलवा तक कर दिया था। तीन दिनों तक बड़ी घमासान लड़ाई हुई। अन्त में निर्विघ्न मिकाडो के बलवान राज्य की स्थापना हुई ही।

सन् १८७१ में जापान की सामान्य जातियों को भी देशके समान हक मिले। पोस्ट-विभाग खुला, तारका प्रचार हुआ, सिक्के ढालने के लिये टकसालों की स्थापना हुई और १८७३ ई० में जापानयोंने अपने यहाँ रेल भी चला दी। अमेरिका तथा यूरोप के देशों में दूत भेजे गये। देश में राजा ने यह मुनादी फिरवा दी कि कोई भी आदमी नंगे बदन चौक बाजार

से होकर न निकले। सीतला से बचने के लिये टसी रखने की रिवाज निकाली गई। फौज़ के अफ़सर तथा राज कार यारियों को यह आज्ञा दी गई कि वे ढीले-ढाले कपड़े पहिनना छोड़ें और पश्चिमियों की तरह कपड़ा पहिना करें। आज्ञानुसार उन लोगोंने घरमें पुरानी चाल के और कामकाज़ पर अंग्रेज़ी कपड़े पहिनना शुरू किया। सिपाहियों की बर्दियां भी अंग्रेज़ी ढंग की बनाई गयीं।

राज्य की लगाम राजाने अपने हाथ में ले ली। अपनी सहायता के लिए राजाने तीन राज-मन्त्री नियुक्त किये और एक कांउन्सिल स्थापित की। सन् १८७५ ई० में सब प्रान्त के गवर्नर टोकियो में एकत्र हुए और सार्वजनिक हितकी चर्चा छिड़ी तीन वर्षके बाद भिन्न भिन्न प्रान्तों में अलग अलग सभाएं स्थापित की गयीं और सब गवर्नर अपने अपने प्रान्त के टैक्स और मालगुजारी आदि विषयों पर आप ही विचार करने लगे। जो लोग लिख पढ़ सकते थे वेही सभा के सभासदों के चुनाव के समय अपना मत दे सकते थे। साथ ही यह शर्त भी थी कि मतदाता कमसे कम १५) रुपये कर देता हो। प्रत्येक मतदाता को एक काग़ज़ के टुकड़े पर अपना नाम तथा जिसके लिये मत दिया गया है उसका नाम लिख, मुकर्रर किए हुए बक्स में उसे छोड़ना पड़ता था। प्रान्तिक राज सभाओं के स्थापित करनेका यह उद्देश्य था कि जनता क्रमशः राजसभा (पार्लमेंन्ट) द्वारा शासित करने के योग्य हो जाए। पार्लमेन्ट की स्थापना करने की प्रतिज्ञा मिकाडोने सन् १८६८ में ही की थी। मिकाडोने जब देखा कि लोग प्रतिनिधि-सभा-द्वारा शासन करने योग्य होते जाते हैं, तब उसने सन् १८८१ में यह सूचना निकाली कि सन् १८९० में मुख्य राजसभा (पार्लमेन्ट)

की स्थापना की जायगी इस पार्लमेन्ट में प्रजा की ओर से प्रतिनिधि भेजे जा सकते हैं और इंग्लैंड की तरह इस सभा के दो विभाग होंगे। दोनों विभागों की पृथकता के लिये राजाने धनी और विद्वानों को लार्ड आदि की पदवी प्रदान करना शुरू की। सन् १८८५ में मन्त्री आदि का पुराना पद उड़ा दिया गया और केबिनेट अर्थात् राज मन्त्रियोंके एक काउन्सिलकी स्थापना की गई। व्यर्थ के ८००० अधिकारी पद रद्द कर खर्च कम कर दिया गया। नवीन पद पर भी वेही नियुक्त हो सकते थे जो विद्या, ज्ञान और बुद्धि बल के कारण प्रख्यात हो चुके थे। सन् १८८५ के फ़रवरी मासमें न्यायालय स्थापित किए गए और न्यायाधीश तथा अन्य अधिकारियों की नियुक्ति की गई। इसके पूर्व वहाँ न्यायालय न थे। और न नियमानुसार न्याय ही होता था। एक फ्रांसीसी से नियम बनवा कर प्रयोग में लाए गए। जब यूरोपियन वहाँ आकर रहने लगे तब वे जापानी न्यायाधीशों के समक्ष खड़े रहने में विरोध रखने लगे। शिक्षित जापानियों ने इसकी भी व्यवस्था कर दी। अनेक यूरोपियन न्यायाधीश नियुक्त किए गए। इसी वर्ष दूसरे सम्प्रदाय वालों को पीड़ा देने की, जनता को चिट्ठियों के पढ़ने की, खोलने और लिखने की रोक आदि सब अनाचार दूर कर दिए गए। यह सब फेरफार इतनी शीघ्रता से हुआ कि लोग इस परिवर्तन को 'भूकम्प' के नाम से पुकारते हैं।

अठारहवां प्रकरण

जापान मे पार्लामेन्ट

जापान में सन् १८६० में पार्लामेण्ट की भी स्थापना हो गई। इसके दो विभाग हैं–एक तो उन लोगों की जो पीढ़ियों से प्रतिष्ठित और विख्यात हैं। ये जीवन पर्यन्त के सभासद होते हैं।

सभा के सभासद तीन प्रकार के होते हैं, एक राजघराने के, दूसरे वे जो विद्या, बुद्धि और ऐश्वर्य के प्रताप से राजा द्वारा नियुक्त किये जाते हैं, और तीसरे वे जो जागीरदारों की तरफ से नियुक्त होते हैं। इन सभासदों की अवस्था तीस वर्ष से कम की न होनी चाहिये। ईसाई सभासद(क्रिश्चियन) भी इसमें सम्मिलित हैं।

आरम्भ में इस नई शाशन-प्रणाली से लोगों ने उकता कर एक बार उपद्रव मचाया था। एक वर्ष तक तो लोगों ने राजा के सब प्रस्तावों का विरोध किया। सन् १८६१ में राजा ने पार्लामेण्ट बन्द करने की घोषणा की दूसरी बार जब सभासदों का निर्वाचन होने लगा तब फिर लोगों ने उपद्रव मचाने की चेष्टा की। परन्तु इसके बाद कोई उपद्रव नहीं हुआ है। सब काय शान्ति पूर्वक हो रहा है।

व्यापार, उद्योग, तथा जल, पुलिस, सेना, शिक्षा आदि विभागोंका प्रबन्ध अनुकरणीय और प्रशंसनीय है। इस विषय पर यदि अलग लेख लिखा जाय तो एक बड़ी पुस्तक तैयार हो सकती है।

जिस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जापानियों के

साथ अङ्गरेजों का सम्बन्ध हुआ, उसी प्रकार उससे भी एक शताब्दी पूर्व भारतवर्ष से भी उनका संयोग हुआ था। अब यह प्रश्न उठता है कि जापानी लोग उन्नति के शिखर पर पहुंच गए और क्यों भारतवासी जहाँ के तहाँ हो सड़ रहे हैं ? मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार इसके दो कारण हैं। एक तरफ सोनार दोषी है तो दूसरी ओर सोने का भी दोष है। कुछ तो गौरांगों की भारतवर्ष को जहाँ का तहाँ रहने देने की नीति और कुछ भारतवर्ष की "लकीर की फकीरी" है। जापान स्वतन्त्र और भारत परतन्त्र है। जापान के कन्धे पर विदेशियों का जूआ स्वप्न में भी नहीं पड़ा, और भारतवर्ष के हजारों वर्ष से गुलामगिरी का भार ढोते ढोते घट्टे पड़ गये हैं। जापानियों को यदि सामना करना पड़ा तो अपने ही देशबन्धुओं का। भारत को सन्ताप पहुंचाने में उसकी सन्तति का भी कुछ कम भाग नहीं है, तिस पर विदेशी लुटेरों की चाल, राजा और व्यापारियों की दुर्नीति ये लोग विदेश से जो कुछ सीख कर आते हैं उसका खुले तौर से प्रयोग कर सकते हैं किन्तु यदि भारतवासी गोला बारूद बनाने की कोशिश करें तो उस को आम तौर से सजा दी जाय। जापानी स्वदेश की वस्तुओं से जहाज बनाता है, तो सर्कार उसकी सहायता करती है, यदि भारत ऐसा करे तो सरकार उस पर कर बैठा दे। केवल काले गोरे रङ्ग होने के ही कारण इतना उलट फेर हुआ है। अपनी व्यथा किससे कहें ? जापानी विदेश से शिक्षा प्राप्त करके आएं तो उनको ऊँचे ऊँचे पद मिलते हैं, भारतवासी यदि शिक्षित हो जाँय तो उनको (रङ्ग के कारण) अर्द्धचन्द्राकार मिलता है। जापान के पदाधिकारी स्वदेशी (जापानी) ही होते हैं परन्तु भारतवर्ष के अधिकारी विदेशी होते हैं। जापान

में स्वदेश की दशा सुधारने के लिये सभा हो तो पुलिस उसमें भाग लेती और मदद करती है, भारत में यदि ऐसी सभा की जाय तो पुलिस हाथ पैर जकड़ देती है। जापान में राजद्रोही देशद्रोह कहाता है, भारत में देश द्रोह भले करे, पर राजद्रोहही के नाम ही बड़ा घर तैयार है। जापान की व्यवस्था तो देश के अनुकूल है पर भारतकी व्यवस्था राजा के अनुकूल है। इस प्रकार की अनेक कच्चाइयाँ तो सेनार की हैं, अब सांजे की खराबी देखिए।

जापानी यदि विलायत हो आए तो देशबन्धु उनकी दावत करते हैं और अच्छे अच्छे पदार्थ उनको खिलाते हैं और भारतीय यदि विलायत हो आये तो लोग उनसे अदावत करते हैं यहाँ तक कि यदि वह पंगत में बैठ कर भोजन करता हो तो लोग वहीं से उसको अर्द्ध चन्द्राकार प्रदान करेंगे। जापानी परदेश से हुनरकला सीख कर अपने देशी बन्धुओं को सिखाता है, और भारतीय परदेश से जो कुछ सीख आता है उसके जरिये वह, अपने देश से भीख मँगवाता है। जापानी अपने देशोद्धार के लिये परदेश जाते हैं और भारतवासी मौज और शोक के लिये परदेश जाते हैं। जापानी परदेश से नम्रता सीख आते हैं, और भारतवासी अपनी बड़ाई कराना सीख आते हैं। जापानी परदेश में स्वदेश को नहीं भूलते, और भारतवासी विलायत में स्वदेश की कुछ भी परवाह नहीं करते जापानी परदेश से लाने में तत्पर रहते हैं, जब कि भारतवासी परदेश में दाता बनते हैं। जापानी अपने पूर्वजों पर श्रद्धा रखते हैं किन्तु भारतवासी अपने बाप दादों को गधों से भी बदतर समझते हैं जापानी अपने धर्म के कट्टर हैं, जिस किसी के साथ बैठ कर खाने में अड़चन नहीं समझते। भारतीयों का

धर्म कच्चे सूत के तार की तरह है । खाते खाते यदि दूसरी बिरादरी वाला छू ले तो वह तुरन्त टूट जाता है । जापान का राजा परदा प्रणाली को त्याग बाहर निकल आया, पर भारत वासी की स्त्री परदा त्याग दे तो उसका पति उसकी नाक ही उड़ा दे । शोगन ने देशोन्नति की वेदी पर राजपद को भी मिकाडो के हवाले कर दिया, पर भारतवासी जाति की सरदारी के ऐसे तुच्छ अधिकार के लिये जान तक लेने-देने को तैयार हो जाते हैं । जापानी देशबन्धुओं से मान पाना श्रेयस्कर समझते हैं, और भारतवासी राजा ही से मान पाने के लिये स्वाहा होते जाते हैं । जहाँ जापानी देश के लिये जान हथेली पर लिये घूमते हैं, वहाँ भारतवासी देश को रसातल पहुंचाने के लिये ही सदा कमर कसे खड़े रहते हैं । जापानी जहाँ जायंगे अपने देश-धर्म को नहीं छोड़ेंगे किन्तु भारतवासी त्रिकाल में भी देश और धर्म का ख्याल नहीं करते ।

इन सब बातों को एक तरफ रख, अब जापानी धर्म पर एक दृष्टि डालनी चाहिये क्योंकि अपनी वार्ता से उसका भी कुछ सम्बन्ध है । सभी जापानी बौद्ध धर्म के मानने वाले नहीं हैं । बहुतों का यह मत है कि बौद्ध धर्म ही जापानियों की उन्नति का बाइस है । पर बात यह नहीं है, जापानियों का बौद्ध से भी प्राचीन धर्म शिण्टो है । इस धर्म की कोई पुस्तक वा शास्त्र नहीं है । इस धर्म की मुख्य बात राजा की पूजा है क्योंकि वे सूर्यवंश में उत्पन्न हुए हैं जापानी सभ्यता का मूल चीन है, और चीनियों का प्राचीन धर्म पितृ श्राद्ध है । इस धर्म पर बौद्ध धर्म कुछ भी प्रभाव न जमा सका यहां तक कि जिन्होंने ईसाई मत स्वीकार कर लिया है वे भी श्राद्ध क्रिया से नहीं चूकते । जापान पर कनफ्युशियस, बौद्ध और ईसाई तीनों धर्म की पुट

चढ़ी है, पर पितृ-श्राद्ध की प्रथा पर कुछ भी अवात नहीं पहुंचा है। सुशिक्षित जापानी अपने पूर्वजों के स्मारक के आगे नित्य शिर झुकाते हैं। प्रत्येक घर में पूजा के दो स्थान होते हैं। एक 'कामीदान' और दूसरा 'बुतसुदान' कहलाता है। 'कामी दान को सूर्य देवी (अमतरेसु) का पवित्र स्थान कहते हैं। इसकी पूजा का कारण यह कहा जाता है कि जापान के सम्राट् इसी से उत्पन्न हुए हैं। दूसरे स्थान पर, जिसको 'बुतसुदान' कहते हैं, पित्रों के नाम, उनकी अवस्था और मरण-तिथि लिखी रहती है। इस स्थान की सेवा नित्य तो होती ही है, पर महीने में एक दिन और वर्ष में तीन दिन १३ जूलाई से १६ तक विशेष रूप से होती है। इस धर्म के तीन मन्दिर हैं। एक आइसी में 'दाइकिंग' नामका, दूसरा राज महल में 'काशी कोडोकोरो' नाम का और तीसरा 'कामादाना' जो प्रत्येक घर में होता है। प्रत्येक जापानी 'दाइझिंग' और 'काशी कोडोकोरो' की यात्रा जीवन में एक वार करना अपना धर्म समझता है। राजमहल में तीन डेरे हैं:—एक में एक आरसी रहती है जो सूर्यदेवी का स्थानक (प्रतिनिधि) माना जाता है, दूसरे में राजा के पूर्वज और तीसरे में भिन्न भिन्न देवताओं की पूजा होती है। जापान में भी सहस्त्र भुजावाली देवी है, जिसके मुख भी अनन्त हैं। 'इसको 'कवानन अर्थात् दया की देवी कहते हैं।

बौद्ध धर्म जापान में इस प्रकार प्रचलित हुआ कि सन् ६५० ई० में कोरिया के राजा ने मिकाडो को एक बुद्ध की मूर्ति तथा बौद्ध धर्म की अनेक पुस्तकें भेंट कीं। प्रधानों ने अन्य धर्म की मूर्ति और ग्रन्थ रखनेका विरोध किया इससे मूर्ति एक दरबारी को दे दी गयी। उसने एक बौद्ध मन्दिर की स्थापना

की। कितने दिनों के बाद देश में बड़ी भारी महामारी फैली। लोगों ने इसका कारण यह निश्चय किया कि बौद्ध धर्म की स्थापना से ईश्वर क्रुद्ध हुआ है। अतः मन्दिर गिरा दिया गया। इससे देश में इतनी खलबली मच गई कि अन्त में फिर से मन्दिर बनवाना पड़ा। कोरिया से बौद्ध उपदेशक तथा साधु आने लगे और बौद्ध धर्म का इतनी शीघ्रता से प्रचार हुआ कि कई शताब्दियों तक जापान का मुख्यधर्म बौद्धधर्म ही रहा। तथापि शिण्टो धर्म निर्मूल नहीं हुआ था। शिण्टो-देवताओं के साथ में बुद्धदेव भी पूजे जाने लगे। हवा फिर बदली। सैकड़ों वर्ष के बाद फिर शिण्टो धर्म का ज़माना आया। बौद्ध धर्म का पाया उखड़ गया और शिण्टो धर्म की धाक जमी। कनफ्युशियस मत को भी जिसने थोड़ा बहुत अपना चक्र जमा लिया था, नारियल-सुपारी मिली। टोकियो में का कनफ्युशियस-मन्दिर इस समय नुमाइश की तरह काम में आता है।

हमारे मुल्क में जिस प्रकार परमेश्वर के गोती पादरी लोग मुक्ति प्रदान करने आये, उसी प्रकार सन् १५४९ में उनके चरणारविन्द जापान में भी पधारे थे। ईसा के नाम से मुक्ति और दूसरों के नाम से बन्धन इस उपदेश से जिस प्रकार अपने यहाँ के चमार साहब बन जाते हैं, अथवा गोरी चकोरी के पीछे धर्म का शिकार जिस प्रकार खेला जाता है उसी प्रकार जापान में भी फ्रान्सिस जेवियर ने अपना रंग फैलाया। लगभग छः लाख इसके फेर में आ गये। अब लोग चकराये कि क्या यह राक्षस देश भर को हड़प कर जायगा ? इस पर राजा ने यह घोषणा निकाली कि कोई भी विदेशी धर्म प्रचारक यहाँ उपदेश न दे, यदि ऐसा करते हुए वह पकड़ा जायगा तो परलोक भेज दिया जायगा, हज़ारों ईसाई जीते जी घास में

लपेट कर ज्वालामुखी के मुख में स्वाहा कर दिए गये। राजा की आज्ञा थी "कोई भी ईसाई जापान में आने का साहस न करे; यदि ईसाइयों का भगवान भी जो स्पेन का बादशाह है, इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा तो उसका भी सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा।" चार हज़ार पादरी भिन्न भिन्न प्रान्तों से पकड़ कर कारावास में रखे गये। सन् १८७० ई० से १८७३ तक यह धर पकड़ खूब हुई थोड़े दिनों के उपरान्त लोगों में विरोध भाव दूर हो गया और ये सब कैदी मुक्त कर दिये गये। फिर हवा का रुख ऐसा बदला कि एक दम भ्रातृभाव ने सबको धर दबाया, यहाँ तक कि सन् १८६० ई० में पार्लमेन्ट के तीन सौ सदस्यों में से, जिन्होंने जापानी नागरिकता स्वीकार कर ली थी, तेरह ईसाई भी थे। उन तेरह सदस्यों में से एक तो सभापति तक हो चुका था।

उन्नीसवाँ प्रकरण

अस्पताल।

आज जापान की एक नदी के किनारे एक तख्ते से बंधा हुआ किसी विदेशी का एक शव मिला है। उसको देखने के लिये बहुत सी जनता एकत्र हुई है। थोड़ी ही देर में एक डोली आयी। उसी में उस शव को रख बड़े अस्पताल में भेज दिया गया। सहायक सर्जन ने अपने बड़े अधिकारी को खबर की। उसने जवाब दिया, "कपड़े उतार कर पेट का पानी निकालो, मैं अभी आ पहुंचता हूं।" यह कार्रवाई हो ही रही थी कि वह आ पहुंचा। उसने बहुत छान बीन की, नाड़ी देखी पर कुछ पता न चला।

हृदय भी धड़कता नहीं था। प्राण हैं या निकल गए यह भी निश्चित नहीं होता था। बिजली की पेटी मंगा कर उससे गरमी दी गयी, मुंह में दवा और ब्रान्डी दी गयी। इस प्रकार बहुत देर तक देख भाल कर, अपने आदमियों को उसकी देख रेख करने की आज्ञा कर के, डाक्टर चला गया। दूसरे दिन नागरिक रोगियों से छुट्टी पा वह फिर उस मृतः प्राय शरीर के पास गया। उसकी हालत देख वह फिर उपचार करने लगा। कई बार उसको यह शंका हुई कि यह अभी जीवित है। परराष्ट्र विभाग के सभी एलचियों को उसने टेलीफोन से ख़बर दी कि कृपा कर के आवें और बतावें कि यह किस देश का आदमी है। तीसरे पहर सब जुटे। अंग्रेज़ ने उसका रंग रूप देख कर यह निश्चय किया कि यह अंग्रेज नहीं है; जर्मन ने कहा कि यदि यह जर्मन होता तो इसका सिर इस प्रकार का न होता तुर्की ने यह कहा, यह ईरानी हो सकता है क्योंकि हमारे यहां ईरानी सरकारी-पदाधिकारी हैं, अमेरिका वाले ने कहा यह यहूदी भी हो सकता है, फ्रांसीसी ने यह अनुमान किया कि यह काश्मीरी हो सकता है। सारांश यह कि कोई भी छाती ठोंक कर ठीक ठीक न बता सका। उसके शरीर पर से उतारे गए कोट पतलून से भी कुछ पता न लगा। अन्त में सब उसके सचेत होने पर यह विषय छोड़ अपने अपने घर गए।

चौथे दिन उसकी नाड़ी ठीक ठीक चलने लगी, श्वाँस भी क्रम से चलने लगा। डाक्टर का मन प्रसन्न हुआ कि परिश्रम वृथा नहीं गई। दो दिन और बीतने पर उसने आँखें भी खोलीं और टुकुर टुकुर देखने भी लगा। कांजी और साबुदाना भी थोड़ा सा पीया। डाक्टर को इसका परिचय प्राप्त करने की बड़ी खलबली पड़ी थी। इतने पर भी रोगी की जीभ नहीं हिलती

थी–बोलने की चेष्टा करता पर वह बोल नहीं सकता था। हाथ में इतनी शक्ति कहां कि वह लिख सके? डाक्टर ने विचार किया कि इस विषय की चर्चा करने से शायद उसकी टूटी फूटी आवाज़ निकले। अतएव उसने बराबर प्रश्न पूछने आरंभ किए। विदेशी कान से सुन सकता था इस से वह हाँ या नहीं का जवाब सिर हिला कर देता था, कभी कभी वह ऐसी शकल बनाता कि उस से साफ़ ज़ाहिर होता था कि यह इन बातों से ऊब गया है। सुधरे हुए जापानी को तो अंग्रेज़ी का ज्ञान था ही। बस वह सब बातें उसी भाषा में पूछता। विदेशी भी अंग्रेजी समझता था, पर वह लाचार इतनेही से था कि उसकी जीभ हिलती डुलती न थी, डाक्टर ने उसको मातृभूमि पूछने के उद्देश्य से सब मुल्कों के नाम लिये। बहुत देरी पर इण्डिया के नाम पर उसने 'हाँ' कर सिर हिलाया। इसके बाद डाक्टर ने हिन्दुस्तान का मानचित्र मंगाया और विदेशी का हाथ पकड़ कर उस पर फेरना शुरू किया। बम्बई पर विदेशी ने हाथ रोका और पलक के इशारे से भी अपने को वहीं का रहने वाला बताया। डाक्टर ने उसी दम ब्रिटिश एलची को टेलीफोन द्वारा बुलाया और उसका आदमी उसके हवाले किया। ब्रिटिश एलची ने नियमानुसार डोली मँगवायी और उसको ब्रिटिश लेगेशन में भेज दिया। सरकारी खर्च से उसकी दवादारू होने लगी। दूसरे दिन जापानी समाचार पत्रों में यह ख़बर छप गयी कि किसी डूबे हुए जहाज का एक ब्रिटिश सरकार का प्रजा का आदमी लाइफ़बोट के एक तख्ते के साथ यहाँ किनारे लगा है, इसका शरीर सुधरता जाता है, पर ज़बान बन्द है। बम्बई का रहने वाला है, जात बिरादरी का पता नहीं लगा है रूटर के एजेन्ट ने यह समाचार तार द्वारा हिन्दुस्तान में

भी भेज दिया था। यहाँ भी कई समाचार पत्रों में यह सम्वाद छपा था।

अब एक नये अध्याय की ओर चलिए। इस सम्बाद को एक जापानी स्त्री ने पढ़ा जो इंगलैण्ड जाकर अंग्रेज़ी और फ्रेंच भाषाएं सीख आई थी और जिसको हिन्दुस्तान देखने की भी बड़ी उत्सुकता थी। उसको किसी हिन्दुस्तानी की अर्द्धांगिनी होने की बड़ी लालसा थी, क्योंकि उसने बौद्ध धर्म के लिये तनमन और धन सब कुछ अर्पण कर दिया था। उसकी यही इच्छा थी कि महात्मा गौतम बुद्ध की जन्मभूमि में ही अपना जीवन व्यतीत करूँ। और उसी भूमि में उत्पन्न हुए किसी की दासी बनकर रहूं। इन विचारों ने उसके मनमें ऐसी गहरी जड़ पकड़ ली थी कि जापान उसको नरक समान दीखता था। जापान में भी लैला-मजनूं का एक जोड़ा हो चुका है। घर घर उनके प्रेम की चर्चा और तारीफ़ होती है। उस जोड़े का नाम गोप्पा जी और कोमराक्की था।

दैव-योग से इस स्त्री का नाम भी कोमराक्की था। अतएव वह अपने से पूर्व वाली से किसी क़दर भी प्रेमरस में उन्नीस होना नहीं चाहती थी। ठीक है, अंग्रेज़ी क़ायदे कानून से सभी अपने अपने मनके मालिक हैं। जब कोई भूला भटका भारतवासी जापान में पहुंचता तो यह उससे मिलती और अपने मनके विचार उससे कहती। पर अभी तक किसी भारत वासी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की थी ज्यों ही इसको एक हिन्दुस्तानी के जापान में आने की ख़बर लगी कि यह ब्रिटिश एलची से आज्ञापत्र लेकर उस रोगी के पास पहुंची। वह शान्त भाव से एक कोचपर सोया हुआ अपने देशका स्वप्न देख रहा था। कोमराक्की उसको देखते ही प्रफुल्लित हो गयी।

उस नवयुवक का रंग गोरा आँख नाक सुडौल, और मुंह गोल था। उसने तो मन ही मन उसके साथ विवाह करने का पक्का विचार कर लिया हृदय से वह उसकी होकर घर आई। घर में भी वह असाधारण सुखी थी। मां, बाप, भाई, बहिन कोई भी न था। लाखों के नकदी सिक्के बैंकमें जमा थे। जर-ज़मीन और घर आदि का किराया भी भरपूर आता था। यदि कोई कमी थी तो वह केवल एक सुन्दर सुशिक्षित पति की ही। आज का देखा हुआ जवान उसकी आँखों में गड़ गया था। वह घर में घूमती हुई यह विचार करती थी कि सब माल मिलकियत बेंचकर नकदी कर लूंगी और सब रकम हिन्दुस्तान ले जाकर वहीं घर-बार बनवाऊंगी, बुद्धदेव की जन्मभूमि पर फूल चढ़ाऊंगी बौद्धधर्म के उपदेश और व्याख्यान दूंगी, अपने पति को भी बौद्धमतानुयायी बनाऊंगी और उसे किसी की नौकरी न करने दूंगी।

यह नवयौवना विदुषी थी। थोड़े ही समय से जापान विश्वविद्यालय में पाली और संस्कृत की शिक्षा आरम्भ हुई थी। इसने पाली का उत्तम और संस्कृत का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इस मधुरभाषिणी की मानसिक शक्ति क्या थी मानो फोनोग्राफ!! जो कुछ सुना या देखा वह पत्थर की तरह इसके दिमाग में बैठ गया। दूसरे जो कार्य वर्षोंमें सम्पादन करें। उसको यह महीनों ही में पूरा करती। जिस बात के पीछे यह पड़ती उसका अन्त किए बिना चैन न लेती। ऐसी तो यह परिश्रमी थी। भिन्न भिन्न भाषाओं को सीखने की उसको बहुत इच्छा थी। और बहुत करके उसकी यह इच्छा फलीभूत भी हुई थी। वह अच्छे अच्छे समाजों में व्याख्यान देती थी। समाचारपत्र और पत्रिकाओंमें लेख भी भेजती थी। उसका

मुख्य उद्देश्य इन लेखों और व्याख्यानों में भी "दबे हुए बौद्ध धर्मका जीर्णोद्धार कर संसार भर में उसका प्रचार करना" हीं था। उसे हिन्द को बौद्धमतावलम्बी बनाने की तो धुन सवार हो गई थी। उसके विचारों को देखकर लोगों ने उसको 'चरके वाली का उपनाम दिया था।

परदेशी की स्थिति दिनोंदिन सुधरती जाती है। कोमराल्को ने भी उसको अपने दाँतों के नीचे दबाया है। देखें दो चार दिन में उसकी क्या हालत होती है।

बीसवां प्रकरण

जाति की पचायत

हिन्दुस्तान के दुर्भाग्य का प्रथम लक्षण जाति है ऐसा कहते ज़रा भी अनुचित नहीं मालूम होता। इसमें आपस के विरोध तथा दलबन्दी की सीमा ही नहीं होती। पंचों को ग़रीबों को कुचल डालने में ज़रा भी दया और पैसो वालों के पाप पर परदा डालते ईश्वर का कुछ भी भय नहीं होता। दूसरों के छिद्र प्रकाशित करने में तो इन्हें बड़ा ही आनन्द आता है। ये अपनी बेर मुंह में थप्पड़ खाकर भी लज्जित नहीं होते। ऊँची नीची सभी जातियों में यही खराबी है। अमीर, सरदार और मुफ्तख़ोर ये ही लोग इसमें आगे बढ़कर काम करते हैं। इनको फ़ुरसत मिली कि आपस में माथा फोड़ने की तदबीर सोचने लगे। लुच्चों के तो ये सहायक होते हैं। ऐसे व्यापारियों के पुत्र भी जात बिरादरी में

धन-कुवेर हो अपनी खिचड़ी अलग ही पकाते हैं। "नहीं ऐसा तो नहीं होना चाहिये, इसने तो उसके साथ बैठकर पानी पिया है, यह तो जाति से अलग किया जाना चाहिये" आदि झगड़े नित्य लगाये रहते हैं। ऐसे ऐसे मूर्खानन्द जो चाहें सो करें और जाति के माथे नहायें कोई पूछने वाला नहीं। इनके लिये किसी ने कहा है किः—

किञ्चित न्याय न जानत हैं, झगरा सुनि के मन में सुख पावें,
चोर की ओर करे हठ सों, शठ शाह के हाथ न गोला धरावें,
आपनो अग कलक भयो, निकलक के अग कलक चढ़ावें,
नर्क परे तिनके परसे, परपंच करे अरु पच कहावें ॥ १ ॥

प्रातः काल आठ बजे दीवानचन्द पटवारी जी के पास आकर साष्टांग प्रणाम कर बैठा। महाराज भी पूजापाठ से निवृत्त होकर बात करने बैठे। अभी तक कोई भी भावुक भक्त आया न था एकान्त था। गांजे की पुड़िया खोल उसमें से चार पांच कली धोने के लिए उनको देते हुए, धर्म्मात्मा महाराज बोले,"क्या विचार है दीवानचन्द। पृथ्वी अब रसा-तल को जाना ही चाहती है। देखिए, कहां सूय कुलापन्न क्षत्री का पुत्र, और कहाँ पारसी के हाथ का भोजन। शिव! शिव-! शिव!" दीवानचन्द—"इस अंग्रेजी राज्य में दुनियां डूब जायगी, महाराज,! इस टोप वाले ने तो एकामयी कर डाला, अब धरती भार कैसे सहेगी?"

महाराज ने झिमक मिर्च लगा के कहा "जब बेहोश पड़ा था, खैर, तब की कोई नहीं पूछेगा। पर होश में आने पर भी उसने तो 'नहीं', नहीं कहा।"

दीवानचन्द,—"अरे भाई साहेब, चेतन और अचेतन कैसा? कोठा तो आखिर भ्रष्ट हुआ ही न? भगवान तो बैठा

हुआ सब देखता है। आजकल के लड़कों ने सब आचार-विचार एक कोने में रख दिया है और आजकल के पढ़े लिखों ने तो भ्रष्टाचार कर डाला है।"

तुलाराम,—"वाह वाह, आचार-विचार तो मेरे गुरु जी पालते थे, किसी दिन भी मुसलमान भिस्ती ने मशक का पानी गैया को नहीं छोड़ा है। कोसों दूर स्वयं जाकर उस को पानी पिला लाते। धोए बिना लकड़ी उन्होंने कभी चूल्हे में नहीं लगाई। दूध तक को छाने बिना कभी उन्होंने नहीं पिया है। एक दिन इनके दारू का पात्र एक फ़कीर से छू गया, उसी दम उन्होंने बाज़ारमें जाकर उसको बदलवा लिया।"

दीवानचन्द ने डरते डरते पूछा "क्यों महाराज, साधू लोग दारु पीयें तो पाप में न पड़ें ?"

तुलाराम,—"अरे मूर्ख-शिरोमणि! जोगी जनों को पाप कैसा? जानते नहीं हो 'समरथ को नहि दोष गुसांई' क्योंकि 'न्याय नियम सब रंक को, समरथ को सब माफ़।'

"सत्य कहते हैं, बाबा जी!" कहते हुए गँवार दीवान चन्द ने चिलम सुलगा कर हाथ में दी। महाराज ने दम लगाया और दीवानचन्द को चिलम दी।

तुलाराम ने गधे को इस प्रकार पाठ पढ़ाया, "एक दिन किसी यूरोपियन ने महाराज को दारू ख़रीदते देख पूछा कि 'वेल तुम साधु होकर दारू कैसे पीता है? महाराज ने वहीं दारू की बोतल दे मारी और उसका दूध कर के दिखा दिया।"

दीवानचन्द आश्चर्यसे,"किरिया बड़ी चीज है, देखिए अपने रिखी ही को। सतजुग में वे मांस खाते ही न थे और जहां उस पर हाथ फेरा कि वह सजीवन हो जाता था। तो क्या इनकी देखा देखी अपने भी वैसा करें? नहीं ऐसा अपने नहीं कर सकते।"

चिलम रखते हुए तुलाराम ने कहा "न भूतो न भवि-ष्यति। चलो फिर हम लोग इस लड़के के पिता से इसकी बीमारी का हाल कहें।"

बिगड़े हुए दीवानचन्द ने कहा "जरूर, और उससे इसके धर्म भरसता (धर्म भ्रष्टता) की बात भी कहें। यदि कल सवेरे आकर कहीं यह पंतग (पंगत) में बैठे तो अपने भी पाप के भागी होएं।"

तुलाराम,—"ठीक है।"

खिलाड़ी तुलाराम ने स्वयं मार्गिक की बात किसी से न कही थी। वह यह मज़े में जानता था कि सलाई लगाकर अलग हो जाने से गोविन्द से पांच-पचीस खाने को मिल ही जायगा फिर 'वर मरो या कन्या मरो' उसके बाप का क्या जाता है? दीवानचन्द मूर्ख था, पर बिरादरी में वह गोविन्द की बढ़ती देख नहीं सकता था, यह बात तुलाराम से छिपी नहीं थी। तुलाराम उसको होली का नारियल बनाने की चाल चल रहा था। पोशाक से सज धज कर आगे आगे महाराज जी और पीछे पीछे दीवानचन्द जी मटकते हुए गोविन्द के घर की तरफ़ बढ़े। गोविन्द बिचारा हुक्का भरे हुए रुक्मिणी की बीमारी से चिन्ताकुल हो विचार सागर में ग़ोते लगा रहा था। इतने ही में दोनों यमदूत वहाँ आ पहुँचे।

गोविन्द ने उठकर स्वागत करते हुए कहा, "आइए महा-राज! आइए, प्यासे के पास कूआँ आया है।" 'आज क्या है कि यह ब्राह्मण का बच्चा यहाँ आया है, और तो कभी नहीं आया था' यह मन ही मन विचारता और आश्चर्य करता हुआ वह बोला, "कहिए महाराज, आज इधर कैसे भूल पड़े।"

आसन पर बैठते हुए भूदेव बोले "गोविन्दराम, मैं भाई

दीवानचन्द के साथ लाहौर गया था। बाज़ार में भाई साहेब ने हम से कहा कि हमारा माणिक यहीं कहीं रहता है, चलो उससे मिल लें, क्योंकि घर पर जाकर उसका समाचार कहना होगा।"

"ठीक ही है, भाई साहब हम तीसरी या चौथी पीढ़ी में मामा-फूफा के भाई होते हैं, हमारे लड़के की चिन्ता इनको क्यों न हो ? इसमें आश्चर्य ही क्या है ?" यह कहते हुए गोविन्द ने अफीम की डिब्बी निकाली और कुसुम्बा बनाने की तैयारी की।

भूदेव ने डिब्बी में से एक सुपारी के टुकड़े बराबर अफीम उठाते हुए कहा, "अरे इसी तरह थोड़ी थोड़ी दे दीजिए, कुसुम्बे का खटराग कहाँ कीजिएगा।" इसके बाद दीवान चन्द ने भी अफ़ीम की एक डली खाई और फिर बात आगे बढ़ी, "लड़का बहुत बीमार मालूम पड़ता है। ईश्वर उसका भला करे।"

गोविन्द ने व्यग्र होकर पूछा, "तब मैं आज ही जाकर लाहौर से उसको ले आऊँ ?"

तुलाराम—नहीं, अब तो अच्छा होता जाता है। यहाँ वैसे डाकृर कहाँ मिलें, तिस पर यह अंग्रेज़ी पढ़ा लिखा। भाई अपनी देशी औषध इसको कहाँ पसन्द आवे ? पर लड़के ने तो कुल को—

गोविन्द—क्या कहा महाराज क्या कहा ? रुक क्यों गए ?

दीवान चन्द—आपको दुःख होगा, मुझसे न पूछिए।"

गोविन्द (घबड़ा कर)—"पर हुआ क्या ? भाई देवा, तू तो मेरा सम्बन्धी है। तू दो बातें कड़ी भी कहेगा तो क्या मुझे बुरा लगेगा ?"

दुष्ट दीवान चन्द ने उत्तर दिया "बुरा क्यों लगेगा ! लीजिये, मैं सच कहता हूँ कि आपका लड़का बह गया है—"

फिर उसने गोबिन्द से सब हक़ीक़त खूब नमक-मिर्च लगा कर कहा। गोबिन्द का चेहरा तो एकदम उतर गया। वह बिरादरी के बखेड़ों से पूरी तरह वाकिफ़ था। दो चार सौ पर पानी फिरेगा, नाक कटेगी और शत्रु गाल बजावेंगे, इन्हीं सब विचारों से वह विचारा घबड़ा कर हाथ पसार कर क्षमा माँगने लगा। प्रपंच-पटु पटवारी ने उसको चुप रहने के लिये आँखों से इशारा किया और दीवान चन्द को साथ ले वहाँ से राही हुआ। उसके चले जाने के बाद गोबिन्द ने एक सीधा, पाँच रुपये नकद, एक माशा चरश, दो आने का गाँजा, सब मिला कर करीब दस रुपये का माल पटवारी जी के पास भेट स्वरूप भेजा और दूसरे पहर स्वयं उनके घर गया। उन्होंने यह उपाय बताया कि यदि दीवान चन्द का मुंह किसी प्रकार बन्द कर दिया जाय तो अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। बिचारा गोबिन्द उसके घर दौड़ा गया। पुत्र मरणशैया पर पड़ा है, उसको छोड़ कर जाँत-पाँत के नाम रोने को वह विचारा गोबिन्द दीवान चन्द के दरवाज़े पर धक्का खाने गया।

गोबिन्द ने उस गवाँर की डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, "देव भैया। आप मेरे सगे हैं इस समय आपके हाथ में मेरे कुल की लाज है। माणिक जैसा मेरा लड़का है, वैसा ही वह आपका भी है। लड़का यदि नालायकी करे तो क्या माता-पिता को भी उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये ? उसकी तरफ देख कर आप इस बात को दबा दीजिए।"

दीवान चन्द—देखो गोबा! क्या तुमने मेरी जमा मारी है ? तुम तो हमारे ही हो। परन्तु यह जात-पाँत की बात है; गंगा

को अपवित्र करला, तो इस शरीर से न हुआ न हो सकता है।

गोविन्द—"तो, तब मैं इसकी तरफ से अभी प्रायश्चित कर आता हूँ। मेरी नाक काटने से गङ्गा में कौन सी वृद्धि हो जायगी ?"

दीवान चन्द ने गोविन्द के नरम पड़ने से और भी ताव से कहा, "तो क्या मैं तुम्हारे लड़के के लिये बिरादरी में झूठ बोलूं ?

"देखो भाई, भाई साहब, अभी आप से कौन पूछने आया है ? यदि आप इस बात को जहाँ की तहाँ रहने दें तो कैसा अच्छा हो। मेरे लड़के की तरफ़ ख्याल करो मैं अपनी पगड़ी तुम्हारे पैरों पर धरता हूँ। दवा में भी क्या कोई छूत होती है ?" यह कहते हुए गोबिन्द ने उस पापी की गोद में अपनी पगड़ी रख दी।

"आप अपने घर जाइए, सब अच्छा ही होगा।" यह उत्तर दे गोबिन्द को दीवान चन्द ने बिदा किया। पर कुत्ते के पेट में खीर कैसे पचे ? दो ही घड़ी में तो घर घर स्त्रियों में इस विषय की चों चों होने लगी।

"क्यों सुना कि नहीं, गोविन्द के लड़के माणिक ने तो पारसिन के साथ बैठ कर खाया है।"

"अरे अंग्रेजी पढ़कर वह बह गया। देखना, अब वह किसी मेम को ले आएगा। जात का भय अब किसको है ?"

बात फैलते फैलते चारों ओर फैल गई। गोबिन्द ने तुलाराम के पैरों पर अपना सिर रखा। उन्होंने "या देवी सर्व भूतेषु मुद्रारूपेण संस्थिता" का संपुठ पाठ पढ़ना शुरू किया। अन्त में पच्चीस रुपये पर मामला तय हुआ कि बिरादरी में ऋषिराज देखा को झूठा साबित करेंगे।

दूसरे दिन गाँव में न्योता घूमा। सब चाँदी के टुकड़े ले

लेकर एकत्र हुए। तुलाराम के लिये बीचोबीच गद्दा बिछा था। बाल, वृद्ध और युवा सभी तमाशा देखने को जुटे थे। गोबिन्द को बुलौवा गया। उसने आकर सबसे राम राम की और एक कोने में बैठ गया।

थोड़ी देर तक तो "आप पूछिये, आप पूछिये" की तकरार हुई, फिर एक चतुर बोला, "गोबिन्द। यह पंच गङ्गा आप से पूछती है कि आपके पुत्र ने एक पारसिन के हाथ का खाना खाया है कि नहीं? इसके दो गवाह हैं—एक देवाराम दूसरे गुरु महाराज। आप को इस विषय में क्या कहना है?"

गोबिन्द को तो तुलाराम का बल था। वह तुलाराम ही के भरोसे खड़ा था। उसने उसके श्वान-मुख में टुकड़ा रखा था। वह हिम्मत से खड़ा होकर इस प्रकार उत्तर देने लगा, "जात माँ बाप है, मारे तो भी यही, और तारे तो भी यही। देवाभाई भी हमारे नाना के पक्ष के हैं। यदि जात हमको मारेगी तो इनको भी धक्का लगेगा। क्या बिरादरी से भी बढ़कर कोई है— गङ्गा का भी कोई पति है?"

वह चतुर मूर्ख जो आगे बढ़ बढ़ कर बोलता था, पूछने लगा, "तो अगरे अगरे बिपराणाम्? कहिए धर्मावतार आपने क्या देखा था?"

तुलाराम ने खूब चेहरा बना कह कहा, "देखो भाई सत्य बोलना मनुष्य का परम धर्म है, तिस पर हमारे ऐसे के लिये तो पूछना ही नहीं। कहा भी है:—

'सतिया सत्य न छोड़िये, सत छोड़े पत जाय'

जब हम और देवाभाई लाहौर गए थे, तब इन्होंने हम से कहा कि माणिक भी यहीं कहीं रहता है, चलो हम लोग उससे मिलते चलें। बहुत पूछ-ताछ करने पर घर मिला। मैं नीचे

दूकान पर एक सेवक के पास बैठ गया और देवाभाई ऊपर गए। ऊपर से आकर इन्होंने कहा कि घर अन्दर से बन्द है। मैंने किवाड़ खूब पीटे पर वे खुले ही नहीं। इसके बाद हम दोनों गाड़ी पर सवार—"

इतने में देव धैर्य छोड़ बीच ही में कूद पड़ा, "अरे भाइयो यह ब्राह्मण हलाहल झूठ बोलता है। हम दोनों जने—"

तुलाराम ने आँखें लाल कर के घुड़कते हुए कहा, "देवता, ब्राह्मण के बालक को खूब सोच समझ कर झूठा कहना। गाली बरदाश्त होगी पर अपमान नहीं सहा जायगा।"

दीवान चन्दने गरम होकर पूछा, "तो क्या मैं भरी सभा में झूठ बोल रहा हूं।"

तुलारामने पृथ्वी पर हाथ पटक कर कहा, 'सरासर,"

"धिक्कार है तुझ ब्राह्मण के चोले को। अरे—"

तुलाराम गर्जता हुआ बोला, "अरे दुष्ट पापी" तेरी पापी जीभमें कोड़े पड़ेंगे। तूने जो मुझे इतने क्षत्रियों के बीचमें धिक्कारा है उसके दण्ड में, ले यह एक तमाचा ही काफी है।" इतना कह शान में आ कर एक सच्चा तमाचा जड़ ही तो दिया।

"अरे, इस ब्राह्मणने हाथ छोड़ा है। अच्छा, इसका मजा अभी चखाता हूं—" दीवान चन्द तमाचा खाने से आगबबूला हो गया और पास में बैठे हुए एक आदमी के हाथ से लकड़ी छीन ली और तुलाराम की खोपडी पर एक हाथ सच्चा जमाया। भेड़िया धसान की तरह सब लोग भागने लगे। दीवान चन्द और तुलाराम में गुत्थम गुत्था हो गई। आठ दस आदमी दोनों को छुड़ाने लगे। आखिर दोनों छूटे। गोविन्द और दूसरे दो एक तुलाराम के घाव पर मरहम-पट्टी करने लगे और बाकी लोग दीवानचन्द पर कुवाग्वृष्टि करने लगे।

एक बोल उठा, "तेरा सत्यानाश हो, ब्राह्मण को इस तरह मारा जाता है ? बिचारा खून से शराबोर हो गया है।"

तुलाराम-अरे, जा बेटा, मोतिया, थाने पर जाकर फैयज महम्मद खाँ जमादार को बुला ला।

लोगोंने बीचमें पड़ कर कहा, "हाँ हाँ साहब जाने दीजिए इसको अपने किए का फल भुगतने दीजिए। अरे नीच देव, तेरा मुँह काला हो अब तो ज़रा शान्त हो, नहीं तो अपने काल को बग़ल ही में समझ।"

अब तो दीवानचन्द के होश-हवाश उड़ गए, क्योंकि जल में रह कर मगर से बैर हुआ। अब कुशल कहां से होगी। थोड़ी देर में उसके गंजी और भँगेड़ी चेलों का एक अच्छा मजमा इकट्ठा हो गया। अब तो दीवानचन्द की धोती और भी ढीली हो गई। अन्त में दीवानचन्दने पच्चीस रूपये देने के वचन देकर अपना पिंड छुड़ाया। महाराज ने भी सोचा कि आगे बढ़ने से कुछ लाभ होने की आशा तो है ही नहीं। चलो, आई लक्ष्मी को कौन वापस करे।

माणिक की बात हवा बादल की तरह उड़ गई। गांव भर में दीवानचन्द झूठा ठहरा। पंच लोग भी अपने अपने घर चले गए। जात-बिरादारी के झगड़ों में अधिकतर ऐसा ही परिणाम होता है। रुपये या लकड़ी के ज़ोर से कितने झगड़े दबा दिये जाते हैं। न्याय का तो स्पर्श मात्र नहीं होता। ज़बर्दस्त का सेर सवा सेर का होता है और गरीब का तीन ही पावका इसी का दूसरा नाम है जातकी इन्साफी या पंचायत।

इक्कीसवाँ प्रकरण

माणिक की धर्म-पत्नी

'उठो बूढ़ा सांस लो, चरखा छोड़ो जांत लो,' यही बात गोविन्द के विषय में चरितार्थ होती थी। इधर वह एक पीड़ा से मुक्त हो कर घर आया कि भाग्य की प्रबलता से दूसरी पीड़ा उसके लिये तैयार थी। माणिकचन्द के लाहौर जाने के बाद उसकी स्त्री अपने नैहर जा रही थी। रुक्मिणी अब चन्द रोज़ की ही मेहमान थी, इसलिये उनके पिताने गोविन्द के यहाँ आदमी भेजा था कि वह आकर रुक्मिणी को अपने घर ले जाय। क्योंकि उत्तरीय भारतवर्ष में लोगों की यह धारणा है कि पुत्री अपनी ससुराल में ही मरने से सद्गति प्राप्त करती है। दुःखी गोविन्द ज्यों-त्यों दो एक कवर खा कर घोड़ी पर सवार हो कर समधी के गांव-सगरई-की तरफ़ रवाना हुआ। अमोटा से सगरई कोई दस कोसकी दूरी पर है। दोपहर का चला हुआ वह ठीक संध्याके समय वहाँ पहुंचा। रात में खा पी कर समधी के साथ उसने रुक्मिणी-सम्बन्धी बात चीत की; पर तमाम रात उसको निद्रा देवीने दर्शन नहीं दिया। माणिक के जो समाचार पटवारी जी से मिले थे वे अलग ही कलेजा चीर रहे थे। इधर माणिक का पत्र-व्यवहार भी बन्द था। रुक्मिणी को घर लाने पर माणिक आवेगा कि नहीं यह चिन्ता उसको और भी जला रही थी। ऐसी अनेक चिन्ताओं से उस का कलेजा चलनी हो रहा था।

दूसरे दिन सबेरे नित्य कर्म से छुट्टी पा गोविन्द अपनी पतोहू को देखने गया। देशाचार के मुताबिक पतोहू का घूँघट

निकला था । खाट के पास जा शोकातुर हृदय से इसने पूछा, "रुक्मिणी, बेटा, तेरी कैसी तबीयत है ?"

पतोहू श्वसुर से बोल नहीं सकती, इस कारण या अशक्ति से रुक्मिणीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । गोविन्दने फिर पूछा, पर उत्तर न मिला । उसने दूसरी कोठरी में जाकर अपने समधी तुलसीराम से कहा कि एक डोली का प्रबन्ध कर दीजिए तो शीघ्र मैं इसको अपने घर ले जाऊँ ।

तुलसी रामने अन्दर जाकर अपनी पत्नी से सलाह ली । उस बिचारी ने चौंधार आँसू बरसाते हुए कहा, "अब मैं क्या करूं ? मैंने तो अपनी हृष्ट पुष्ट बेटी इनके हाथ सौंपी थी, पर परमेश्वर जाने इस कर्कशा समधिन ने किस जन्म का बैर चुकाया है । हे परमेश्वर ! मैं फिर लड़की का लोक और पर-लोक सुधारने के लिये इसको ससुराल भेजती हूं । पर जैसा इसने मेरी लड़की के साथ किया है वैसा ही तू इसकी लड़की के साथ कर ।"

तुलसीरामने भरे हुए गले से कहा "अपने भाग्य में यही है, इसमें कोई क्या करेगा ।" गोबिन्दराम तो लाख रुपये का आदमी है, पर समधिन बड़ी कुभार्या निकली । यह भी नसीब हीका खेल है । ईश्वर सब का भला करे ।"

डोली मंगाई गई । उसमें माता ने रुक्मिणी का अस्थिपिंजर उठाकर रखा । डोली उठी और अमोटा की तरफ चली । पीछे पीछे घोड़ी पर गोविन्दराम भी चले । तुलसीराम उनके दो पुत्र और स्त्री तथा अड़ोसी-पड़ोसी सब रोने लगे । रुक्मिणी की माता की स्थिति बहुत दयाजनक हो गई थी । रोते रोते उसने आवेश में आ अपना माथा दरवाजे पर दे मारा । उस के सिर में से खून की धारा बह निकली । माता का हृदय फट-

गया था. उसने तो ऐसा सोच लिया था कि अब पुत्री बचने की नहीं । अड़ोस पड़ोस की स्त्रियों ने उसको पकड़ रखा था और वह, "अरे रूखी बेटी मुझे लेती जा, अरे बेटी, इस करम फूटी माता की ओर घूम कर देखती जा" आदि शब्द उचारती था और धड़ाधड़ छाती कूटती जाती थी । अभी तो जा ही रही थी, पर माता-पिता ने उसको आज ही से मरी जान लिया था । एक दिन वह था कि बाजेगाजे के साथ हंसी-खुशी से लड़की ससुराल बिदा की गई थी, पर आज उसी लड़की को इस प्रकार मरने के लिये ससुराल भेजते समय उसके माता-पिता के हृदय में कैसी असह्य वेदना होती होगी, सो तो वैसे ही कोई दुखी माता-पिता जान सकते हैं ।

तीसरे पहर करीब चार बजे गोविन्द अपने घर आ पहुँचे । पहिले प्रेमदेवी उसके बाद उससे भी चार चासनी चढ़ी हुई उसकी पुत्री कुप्पा सा मुंह चढ़ाए हुए डोली के पास आई । पर ज्योंही उन्होंने रुक्मिणी के मृतप्राय शरीर को डोलीसे बाहर निकाला त्योंही उनकी अक्ल ठिकाने आई । रुक्मिणी को खाट बिछा कर सुलाने और उसकी सेवा-सुश्रूषा का प्रबन्ध करने के लिये कह, घर में से पाँच रूपये ले गोविन्द बाहर गया । एक परजात के आदमी को, जो उसके खेत में काम करता था, माणिक का ठीक ठीक पता बता विदा किया कि चाहे जैसी हालत में वह हो उसको यहां ले आओ ।

दो दिन अड़ोस-पड़ोस के लोगों के आने जानेसे रुक्मिणी की सेवा अच्छी तरह हुई । प्रेमदेवी को भी यह मालूम हो गया था कि बहू अब बचेगी नहीं । अब उसके गुण सामने नाचने लगे । अपने पाप के प्रायश्चित्त रूप में अब वह खूब सेवा-सुश्रूषा करने लगी । दूसरे दिन सन्ध्या को गोविन्द का

भेजा हुआ आदमी वापस आया। उससे इस प्रकार बातचीत हुई—

गोविन्द ने बड़ी आतुरता से पूछा, "मगन क्या खबर लाया?"

"बाबूजी, आपके बताए पते पर गया। पर भैयाजी तो और कहीं चले गए हैं। शहर भर में भटका पर आदमजी नाम का पारसी तो कोई भी नहीं मिला।"

यह उत्तर सुनकर गोविन्द का हृदय जल कर खाक हो गया। पर करे क्या? प्रिय पाठक, मगन जैसे मूर्ख शिरोमणी अपने देश में ही नहीं हैं, काबुल में भी गधे होते हैं। यूरोप जैसे सभ्य व शिरोमणि देश में भी अनेक साक्षर मूर्ख देखने में आते हैं जो करीमभाई इब्राहीम और डेविड सासुन को पारसी जाति का बना कर लोगों में हास्यास्पद होते हैं।

तीसरे दिन सबेरे से रुक्मिणी के शरीर में कुछ तेजी आनी शुरू हुई। थोड़ी देर के बाद वह बातचीत भी करने लगी। आसपास के लोगों को कुछ आशा बंधी। परन्तु सच में तो वह अन्तिम तेज था। उसके दिन पूरे हो चुके थे।

रुक्मिणी ने धीमे स्वर से अपने सिरहाने बैठी हुई ननँद से पूछा, "बहिन, आपके भाई का कोई समाचार आया?"

"नहीं भाई के तो अभी कुछ भी समाचार नहीं आए।"

ज्यों-त्यों करके रुक्मिणी बोली, "बड़ी बहिन, आपके भाई आते तो अच्छा होता। मैंने उनके बहुत अपराध किए हैं, यदि उनसे अन्तिम भेंट हो जाती तो सब अपराध क्षमा करा लेती। इस अन्तिम समय की भेंट मेरे लिए बहुत श्रेयस्कर होगी। अपने पिता जी से कहकर उनको बुलवाइयेगा नहीं।"

"भाभी बाबू जी ने भाई को बुलाने को आदमी भेजा था,

पर भाई का कहीं पता नहीं लगा, इससे आदमी वापस आया है। न मालूम भाई कहां गये हैं, उनका कुछ भी पता नहीं है। सुना था कि वे बीमार हैं इस लिये कहीं हवा पानी बदलने जाने वाले हैं।" अपनी जिन्दगी में पहिली ही बार आज ननँद ने सीधे तौर से भाभी कह कर रुक्मिणी को बुलाया था। इन शब्दों ने रुक्मिणी के हृदय पर कैसा प्रभाव डाला सो तो वही जाने पर उस भली-भोली पतिही को परमेश्वर मानने वाली स्त्री ने इन शब्दों को सुन कर एक आनन्द का श्वाँस खींचा।

रुक्मिणी ने धीमे स्वर से रुकते रुकते टूटे फूटे शब्दों में कहा, बड़ी वहिन, इस अन्त समय में यदि आपके भाई के पवित्र चरण कमलों का स्पर्श होता तो मैं अपने को बहुत भाग्यशाली मानती। खैर, जैसी प्रभुकी इच्छा! जब आपके भाई आयें तब आप मेरी ओर से उनसे कहना कि मैंने यदि उनको किसी समय दुःख दिया हो, हलके शब्द कहे हों, उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया हो या कभी उनको मानसिक व्यथा पहुंचाई हो तो वे इन सबके लिये मुझे माफ करेंगे। बड़ी वहिन! मुझसे उनकी कुछ भी सेवा नहीं बन पड़ी। स्त्री का पति की सेवा करना ही परम धर्म है। पति ही उसका सच्चा परमेश्वर है। मैं तो पापिन हूं, अपराधिन हूं। मुझसे आपके सर्वगुणसम्पन्न भाई की कुछ भी सेवा न हुई। हरे! मेरी कैसी गति होगी? परमेश्वर मुझे किस प्रकार क्षमा करेगा? आपके घर की भी मुझसे कुछ सेवा नहीं हुई, मुफ्त में ही मैंने आपका अन्न खाकर बिगाड़ा। बड़ी बहिन आप मुझे क्षमा करना। सासजी को बुलाइये वे भी मुझे माफ करें। वे मेरी माता तुल्य हैं। मुझ गरीब लड़की की ओर देख कर वे अवश्य माफ करेंगी। मैंने कभी कभी आपको जवाब दिया होगा—न कहने की बात मैंने कह डाली होगी—सो सब

आप माफ करें। अपने भाई को आप बरदाश्त कीजियेगा। ओ, ओ, अरे, अब मुझसे बोला नहीं जाता-" इतना कहते कहते उसकी आँखें कुछ कुछ पथराने लगीं। क्षण भर तक अवाक रही उसके मनमें तो माणिक की रटन चल रही थी। उसके दर्शन के लिये वह आतुर हो रही थी, आजकल की सुधरी हुई औरतों की तरह वह न थी, जो एक से तो बात करती हैं, दूसरे का ध्यान और तीसरे से नज़र लड़ाती हैं। क्षण भर के बाद फिर वह बोली, "शशुरजी से कहना कि मेरे अवगुणों पर ध्यान न दें। वे तो मेरे धर्म के पिता हैं। जैसा उन्होंने किया है वैसा और कोई भी नहीं कर कसता। अरे! मुं-ह-सं-अ-ब-अ-वा-ज-न-हीं-नि-क-ल-ती। अरे, अरे, आ-प-के-भाई-आ-प? य-ह-रहे। य-हाँ-ख-ड़े-हैं। स्वा-मि-ना-थ-मु-झे-क्ष-मा-की-जि-ए अरे, अरे,—"

इतना कहते कहते रुक्मिणी ने आंखें उलट दीं। दो तीन हिचकियाँ खाईं कि बुढ़ियोंने रोना-धोना शुरू किया। एकने चट उठ कर गोबर और मिट्टी से जमीन लीपा, और चार-पांच ने मिल कर उसको जीती ही घसीट कर चैाक में डाल दिया। यह निन्द्य आचार हिन्दुओंमें घर घर देखा जाता है इनका ऐसा विश्वास है कि खाट पर मरने से आदमी भूत होता है। इसी कारण जीते जी उसको घसीट कर चैाक में सुलाते हैं। न मालूम कब से यह निर्दई चाल चली है। कंठगत प्राण होने के समय रोगी को उठाने-बैठाने से अनायास नीचा ऊँचा होने से उसको कितनी तकलीफ होती होगी! यह प्रथा सर्वथा अनुचित, अयोग्य और इस लिए एकदम बन्द कर देने के लायक है। जिसके यहाँ जो रिवाज चलता आया है उसको वह बुरा नहीं लगता, क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है। परन्तु

दूर से देखने वालोंको यह दृश्य कैसा और कितना बुरा या भला लगता है, यह पाठकों से कुछ छिपा नहीं है।

थोड़ी देर में प्राण-पखेरू उड़ गये पिंजरा खाली पड़ा है। स्त्रियों ने चिल्लाना और छाती कूटना शुरू कर दिया। चारो तरफ़ से 'हाय, हाय' के ही शब्द सुन पड़ने और हृदय बेध कर आरपार होने लगे। थोड़ी ही देर में यह खबर चारो तरफ फैल गई। जात का रिवाज के मुताबिक जात की, जान-पहिचान और परजात की स्त्रियाँ सब एकत्र होने लगीं। जो आतीं सो मृतक की याद कर के छाती कूटतीं। थक जातीं तब नीचे मुंह छिपा कर रोने बैठतीं कि इतने ही में सामने से घूंघट निकाल कर एक आगे आगे रोती आती और पाँच सात उसके पीछे आतीं, तब फिर वे बैठी हुई औरतें उठतीं और कूद कूद कर छाती को पीट कर उसे तोड़ने के व्यर्थ के काम में लग जातीं। स्त्रियाँ एक एक को देख कर दुना राग तानतीं। नवागन्तुक दुःखिया को धैर्य तो दिलाता नहीं, उलटे मरे को याद कर के स्वयं रोने लग जाता है। यह भी एक चलन है। क्या दूसरी जात में और दूसरे धर्म वालों के हृदय में प्रेम नहीं है? उनके हृदय में क्या शोक उत्पन्न नहीं होता? यह तो हिन्दुओं ही में चलन है। गोकुल गाँव की पैड़ा ही न्यारी।

अब पुरुष भी आने लगे। सगे-सम्बन्धी सब 'अरे बहिन' 'अरे भाभी' 'अरे काकी' इत्यादि शब्द उच्चारते थे। दूसरे सब केवल ओ ओ' का राग अलापते थे। रोना न आवे तो भी 'हूं हूं हूं' का झूठा सुर मिलाना ही पड़ता था। इतना भी न करे तो लोग कहते कि यह पत्थर के कलेजे का निर्मोही आदमी है। पुरुषों में से चार जने काँड़ी कफन लेने गए, हज्जामने अग्नि सुलगाई कुत्तों के लिये लड्डू आए, गाय को घास

खिलाई गई, और गांव के पाठशाला में छुट्टी दिला दी गई, क्योंकि ये बातें पुण्य की गिनी जाती हैं। मास्टर के यहाँ पढ़ते हुए लड़कों को छुट्टी दिला कर उनको उपद्रव करने का मौका देना पुण्य का कार्य गिना जाता है। उसी प्रकार गाँव के मास्टर भी ऐसे अवसरों की प्रतीक्षा किये बैठे रहते हैं जहाँ चार आने जेब के हवाले हुए कि उन्होंने लड़कों को पाठशाला के बाहर हाँक दिया। बस इतना करने से चित्रगुप्त की बही में पुण्य जमा हो गया।

सामान आया रथी तैयार हुई। आठ दस आदमी स्त्रियों के आगे आकर खड़े हुए, जिसमें रथी लाते या ले जाते समय वे आवेश में आकर उसको तोड़ न डालें। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। इतनी व्यवस्था रहने पर भी जब रथी बाहर निकली तब प्रेमदेवी झटके से उसके पीछे दौड़ी और बाल बिखराती हुई चिल्लाने लगी, "अरे बहू, खड़ी रहो, लड़का आकर पूछेगा तो काला मुँह लेकर क्या जवाब दूँगी ? हायरे, हायरे !!

इस दृश्य से पत्थर भी पसीज सकता है, परन्तु यह कितना व्यर्थ और निरर्थक है सो आसानी से जाना जा सकता है। धीरे धीरे ये सब बातें अब रिवाज हो गई हैं। यदि कोई सच्चे शोक से मृतक के पीछे दौड़ता है तो कितने केवल ऊपरी दिखाव के लिए ऐसा करते हैं। स्त्रियों की रुलाई और कुटाई की कला भी दर्शनीय होती है। मुहल्ले के फाटक तक दौड़ते दौड़ते पुरुष गए। स्त्रियां भी रोती कलपती हुई घर की ओर फिरीं। कपड़ों का गट्ठर बांध, सिर पर लाद वे नदी की ओर चलीं।

प्रायः सभी हिन्दू जातियों में यह एक नियम है कि ऐसे मौके पर घर पीछे कम से कम एक आदमी अवश्य आवे।

काम चाहे अमीर का हो या गरीब का। पर आजकल ऐसे धन-पात्र अनेक कुपात्र दृष्टिगोचर होते हैं जो तुच्छ धनके अभिमान से और कितने शेखी में ऐसे मौके पर सम्मिलित नहीं होते—मानो उन नराधमों को मरना ही नहीं है। कितने तो इतने लुच्चे और संकुचित हृदय के होते हैं कि शव को छूने तथा उठाने से जी चुराते हैं। जानें शव उनके पापी शरीर को अपने साथ चिता पर ले जाएगा। ऐसे लोग पीछे पीछे गप्प मारते हुए मौज से धीरे धीरे आते हैं। हे ईश्वर, तू ऐसों को ऐसे निर्जन स्थान में मार कि उनके शव को मनुष्य का गंध भी न लगे। सब बला चार ही पांच के सिर आ पड़ती है।

धनी लोग अपने धन के मद में गरीब-गुरबा की मौत में जाने के लिए सौ सौ बहाने निकालते हैं। उनके लेखे गरीब की मृत्यु क्या है, मानो कोई कुत्ता बिल्ली मर गया हो। उस की वे जरा भी परवाह नहीं करते। यदि आसपास के सगे—सम्बन्धी के यहां काम पड़ा तो उन्होंने अपना नौकर भेज दिया जिसमें उनकी बात बनी रहे। ऐसे मदान्ध अमीरों के यहां जब ऐसा मौका आवे तो जाति वालों को उनको उचित शिक्षा देनी चाहिए। देखा तो नहीं, पर हां सुना है कि एक सरदार थे जो अपने धन के मद में किसी के घर नहीं जाते थे, और बहुत जरूरत पड़ने पर वे अपना पुराना जूता, प्रतिनिधिस्वरूप अपने जाति वाले के घर जिसके यहां काम आता भेज देते थे। जाति-बन्धु विचारे 'जबरदस्त का ठेंगा सिर पर' समझ चुप रहते। कुछ दिनों बाद उस सरदार की लड़की का व्याह आया। बारात भी बाहर से बड़ी धूम धाम से आई। सरदार साहब ने अपनी बिरादरी भर में अपने आदमी से न्योता भेज दिया। इसके उत्तर में सब बिरादरी वालों ने अपने अपने

नौकरों के साथ अपना एक एक पुराना जूता सरदार के घर भिजवा दिया। इधर सरदार साहब के दरवाजे पर बिरादरी वालों की तरफ से दनादन जूते आ रहे हैं। वहां जूतों की एक बड़ी टाल लग गई और बिरादरी वालों का नाम भी नहीं। सरदार बहादुर के समधी ने पूछा कि यह क्या बात है कि अभी तक एक भी बिरादरी वाले नहीं आए, और दरवाजे पर पड़ापड़ जूते बरस रहे हैं? इस पर सरदार बहादुर बड़े लज्जित हुए और स्वयं पगड़ी बांधकर प्रत्येक जातिबन्धु के घर गए और सभी से बड़ी आरजू मिन्नत से क्षमा मांगी तथा अपने यहां पधारने की नम्रतापूर्वक विनती की। मदान्ध और उद्दण्ड जाति वाले जब तक इसी प्रकार ठिकाने नहीं लाए जायँगे तब तक जाति की प्रथा ठीक नहीं चल सकती।

गोविन्दराम के यहाँ भी धनके अभिमानी और द्वेषाग्नि में भस्म होने वाले दो ही चार सज्जन पधारे थे। साधारण पुरुष रुक्मिणी की रथी को चटपट उठाकर स्मशान पर ले गए।

स्मशान पर अग्नि-संस्कार के बाद 'कपाल क्रिया' के नाम से होने वाली क्रिया भी अत्यन्त निन्द्य है। उत्तर आर्यावर्त में यह क्रिया बड़ी क्रूरता से की जाती है।

चार साढ़े चार बजे तक रही-सही रुक्मिणी अग्निदेव का शिकार हो गई। लोग रोते कलपते गोविन्द के घर तक आए और पानी के कुल्ले कर अपने अपने घर चले गये। गरीब गोविन्द के मनमें इस समय जो दुःख होता था उसको लिखने की शक्ति हमारी लेखनी में नहीं है। यद्यपि वह शिक्षित नहीं था, परन्तु वह समझता था कि रुक्मिणी सहनशील, नम्र और शान्त प्रकृति की थी। उसने सास ननँद के अनेक कष्ट झेले

थे । एक शब्द भी फ़रियाद के रूपमें उसने बाहर नहीं निकाला था । मानों उसकी कुलीनता उसके सिर पर सवार हो कर यह घोषणा करती रही कि:—

"ख़ाक हो जलके मगर उफ़ दिले नाशाद न कर;
दम भी छुट करके निकल जाय तो फ़रियाद न कर ।"

प्रेमदेवी भी अब बहुत पश्चात्ताप करती थीं । ठीक है, मनुष्य के गुण उसके मरने के पीछे ही जाने जाते हैं । इधर माणिक का भी कुछ पता न था । यह कष्ट उसकी माता के हृदय में साधारण नहीं कहा जा सकता है अब वह अपनी पड़ोसिनों और पुत्री के आगे रात दिन रुक्मिणी के गुणों की चर्चा किया करती थी । पर अब वह किस काम की ?

"आगे की पीछे भई, किया न उससे हेत;
अब पछताके क्या करो, चिड़िया चुग गयी खेत ।

बाईसवाँ प्रकरण

नसीम बाग़ और शिक्षण-क्रम

हमारे तीनों मुसाफ़िर सबेरे आठ बजे नसीम बाग देखने के लिये नाव पर सवार होकर रवाना हुए । उन्होंने कुछ समय तो बाग़ की बारहदरी में बिताया । माणिक के मन में फिर नवीन विश्वविद्यालय--नवीन कालेज--नवीन प्रणाली का प्रारम्भिक शिक्षण-क्रम स्थापित करने की छटपटी पड़ी थी । उसने चाय पीते पीते अपने मन के उद्गार निकाले । "अहा हा कैसा अच्छा हो यदि एक बड़ा विश्वविद्यालय स्थापित करूं !"

अंग्रेज़ी पोशाक वाले मुसाफिर ने पूछा, "तो क्या इस ज़मीन की रजिष्ट्री करा लूं?"

माणिक ने एक ठण्डी सांस लेकर कहा, "अरे साहेब, मेरे पास तो ज़हर खाने को भी एक दमड़ी नहीं है। मैं क्या कर सकता हूँ? हाँ, यदि ताता की इम्पीरियल सोसाइटी चाहे तो इसे खरीद सकती है। यह स्थान वास्तव में सरस्वती-मन्दिर—विद्यालय के लिये अत्युत्कृष्ट है। जब मैसूर के महाराज ने भूमि-प्रदान की है तो क्या वजह है कि काश्मीर के महाराज न करें? पर नहीं नहीं, इनको तो नहीं देना चाहिए; क्योंकि इनके राज्याभिषेक की क्रिया लार्ड कष्मारघाण ने की है। यहाँ के अच्छे अच्छे पद और अधिकार तो गौरांगों को ही देने की गुप्त व्यवस्था हो चुकी है। अब यहाँ बिचारे, अनाथ काले आदमियों को कौन पूछेगा?"

डा० वाछा ने माणिक से कहा, "मिस्टर इम्तिहान चन्द्र, आप के विचार तो बड़े बाँके हैं। पर समझता हूं कि थोड़े दिनों में आप पागल हो जायंगे। कालेज, यूनिवर्सिटी और स्कूल को नाक पर रख कर आप वायु का सेवन कीजिए तो अत्युत्तम हो। पर आप कैसा कालेज स्थापित करेंगे और विद्यार्थियों को कैसी शिक्षा देंगे?"

"साहब, आप चाहे जितनी मेरी हंसी उड़ाइए; पर देश की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से मुझे अत्यन्त संताप होता है। स्कूल में पढ़, हाई स्कूल से हो कालेज में माथा मार कर निकलने वालों में आप खोजेंगे तो मेरे ऐसे बहुत से बासी मुरदे आप को नज़र आवेंगे—जो 'आज मरे कि कल मरे' की स्थिति में पृथ्वी पर भटकते हैं। यहाँ की सरकार परदेशी ठहरी। उसको अच्छे अच्छे विद्यार्थी उत्पन्न करने की इच्छा काहे को होगी?

अपने मसरफ़ भर सिखाया कि बस। वह शिक्षा भी इतनी कठिन कि शरीर की नस नस ढीली पड़ जाती हैं। किसी न किसी तरह उन्होंने शिक्षा भी पात की तो आगे प्रोत्साहित करने वाला कोई नहीं। गोरी चमड़ी वाला यदि मूर्ख भी हो तो भी उसको हज़ार पाँच सौ की नौकरी तो चुटकी बजाते मिल जाती हैं, और काली चमड़ीवाला यदि पंडित भी हो, योग्य हो और गोरी चमड़ी से टक्कर लेने में सफल भी हो तब भी उसका भाव कोई नहीं पूछता। काले काले नाम ही लेते गोरों को जूड़ी आती है। ऐसी स्थिति में बताइये देश का उत्थान कैसे हो ?"

जरथानू—"अरे आप अपने ही कालेज की बातें कीजिए, अपनी ही युनिवर्सिटी को देखिए, दूर क्यों जाते हैं ?"

माणिक—"मेरे तो सब हवाई क़िले हैं। मैं यदि कालेज की स्थापना करूं तो वह वास्तव में राष्ट्रीय कालेज ही होगा। वहाँ से शिक्षा पाये विद्यार्थी नई नई कलायें, नए नए उपयोग यंत्र-शास्त्र रसायन-विद्या, पदार्थ-विज्ञान, अध्यात्म और वनस्पति-खनिज, खगोल भूगोल आदि शास्त्रों सभी में यदि नहीं तो कम से कम एक एक में दो सो में तथा हज़ार में एक निकलेंगे। सच्ची प्रवीणता प्राप्त कर सच्चा नाम करें और दुनियां को चकित कर सकेंगे। मेरा कालेज ऐसा होगा। हाल के शिक्षण क्रम में तो कामश्चटका के जंगल, फ्रांस की नदियां, इंग्लैन्ड के गांव, आदि सिखाया जाता है। कानपूर, कलकत्ता, कराँची, दिल्ली, आगरा, और लाहोर में कौन कौन पदार्थ बनते हैं और किस भाँति बनते हैं, उनका कुछ भी ज्ञान नहीं, कराया जाता अवनति पर सोच नहीं। अकबर

के जीवन--चरित्र के तारतम्य को जानते नहीं, शाली वाहन और विक्रम के समय की खबर तक नहीं, परन्तु शेफिल्ड में क्या बनता है;मेनचेस्टर कैसे व्यापार करता है,लीप फीग के कारखाने कैसे चलते हैं, फिलाडेलफ़िया में कौन कौन सौदागर हैं, कोलम्बस ने कैसे यात्रा की; आल्फ्रेड और शालमैन कैसे बादशाह थे, इग्लैन्ड की उन्नति कैसे हुई, वहाँ का राजतन्त्र कैसा है आदि बातों से विद्यार्थी का दिमाग ठसाठस भर दिया जाता है। इस प्रकार की विद्या सीखने से विद्यार्थी के भविष्य जीवन में किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती। आम तौर से अंग्रेज सरकार इग्लैंड के रद्दी--सड़ी अध्यापकों को लाकर यहाँ की कालेजों में भर देती है। बिचारा विद्यार्थी यदि कुछ तेज़ और बुद्धिमान् हुआ, तो कुछ समझा और पास भी हो गया नहीं तो माथा मारते मारते आधी से अधिक ज़िन्दगी उसी में गँवा देता है। मैं तो अपने कालेज में हिन्द के निपुण प्रोफेसरों को रखूंगा। हाल में जैसे केवल साहित्य की ही शिक्षा दी जाती है, मैं वैसा नहीं करूंगा। मैं भिन्न भिन्न कालेजों की स्थापना करूंगा, जिससे प्रत्येक कालेज में से निपुण लोग निकलें। प्रजा को जिस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है उसी की योजना करूंगा। डाक्टर साहब आपने जर्मनी के यूनिवर्सिटी की रचना के सम्बन्ध में अवश्य सुना होगा। वहाँ की यूनिवर्सिटी में इस प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती। वहां हरेक बी० ए० और एम० ए० की दुम लगा भीख नहीं मांगता फिरता। वहां की सरकार पाठशालाओं को सहायता देती है पर उस पर हुक्म नहीं चला सकती। यदि सरकार ऐसा करे तो प्रजा एक के दो कर डाले। वहां पाठशाला के शिक्षक निश्चित संख्या के विद्या-

र्थियों से अधिक को नहीं पढ़ाते। यहाँ तो पाठशाला में जितनी भेड़ भरी जा सकें उतनी भर ली जाती हैं। बिचारा शिक्षक क्या करे। मरे कि बीमार पड़े? वह कितने विद्यार्थियों पर ध्यान दे सकता है? १०० विद्यार्थियों का क्लास, और सभी को अलिफ, बे से ले कर गुलिस्ताँ तक पढ़ाना। जर्मन पाठशाला के शिक्षकों को वेतन भी भरपूर मिलता है पर इस देश के शिक्षक तो भिखारी से भी बदतर हैं। वहाँ प्रजा को जिस प्रकार के शिक्षा की आवश्यकता है, वह उसी प्रकार का प्रबन्ध कर लेती है। विशेष ध्यान वैसी शिक्षा के प्रचार पर दिया जाता है जिससे प्रजा कलाकौशलवाली और बलवती हो। जापान में भी ऐसा ही शिक्षणक्रम है, और इसी कारण से आज जापान पचास वर्षों ही में उन्नति के शिखर के निकट होता जाता है। आप यह मत समझ लीजिएगा कि हिन्दुस्तान की प्रजा के दिमाग़ में भूसा भरा है। जो काम बड़े बड़े रसायनवेत्ता अंग्रेज तक नहीं कर सके उस काम को करने की शक्ति आर्यपुत्रों में है। समाचार पत्रों में मैंने पढ़ा था कि बम्बई में महारानी विक्टोरिया की मूर्ति के मुख पर किसी बदमाश ने बदमाशी से स्याही लगा दी थी। जब बड़े बड़े अंग्रेज और जर्मन रासायनिक उस स्याही को नहीं मिटा सके, तब उसको एक आर्यपुत्र ने मिटा दिया। मिस्टर गज्जर का नाम तो आपने सुना ही होगा, डाक्टर! वह एक निपुण रासायनिक है। उसने इतने महत्व का काम किया है। पर उसको इसके बदले में क्या मिला? यदि कोई अंग्रेज बच्चा होता तो वह कभी का सी० आई० ई० या सी एस० आई० ई हो गया होता और लम्बी चौड़ी तनख्वाह की नौकरी भी कभी की मिल गयी होती। इतना ही नहीं अखं-

बार वालों ने उसे इतना बढ़ाया होता कि पूछने की बात नहीं। पर ये तो एक काले, हिन्द के निवासी और उस पर हिन्दू, भला इनकी कदर कौन करे ? हाँ एकाद अँग्रेज अखबार वालों ने कुछ वाह वाही की थी और वहीं से इति श्री थी। बोस जैसे अन्वेषक को नए नए खोज करने के लिये एक बड़ी रासायनी प्रयोगशाला की आवश्यकता थी, पर अंग्रेज सरकार ने उसमें कहाँ तक सहायता दी है, यह किसी से छिपा नहीं है। इंग्लैण्ड फ्रान्स, जर्मनी, जापान, अमेरिका आदि की बात ही न्यारी है। वहां की प्रजा और वहां के राजा ऐसे अन्वेषकों की सर्व प्रकारको मदद करने को तैयार रहते हैं। पाश्चुर को शिक्षा विभाग स्थापित करने की आज्ञा, उतनी सहायता, भरपूर वेतन और भत्ता आदि सब तैयार था, क्योंकि वह साहब, गोराङ्ग थे। काले का सब कुछ काला। उसका नसीब भी काला। लार्ड कर्जन ने बातें तो बड़ी लम्बी चोड़ी की थीं, परन्तु ताता का इन्स्टिट्यूट अभी तक क्या कर सका है? 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस।' मेरे पास यदि पैसा हो तो मैं एक ऐसी यूनिवर्सिटी की स्थापना करूँ कि एक बार संसार भी उसको देख कर दङ्ग हो जाय, कि हिन्द में भी ऐसे रत्न पड़े हैं। पर, डाक्टर साहब! मैं ग़रीब आसामी हूं, क्या कर सकता हूं ? इम्तिहान पास करके विचार करना तो सीखा, पर एम० ए० होकर बीस रुपये की नौकरी! केवल अलिफ, बे, करने वाले मुझ से कहीं अधिक कमा लेते हैं। जब मैं उनकी ओर देखता हूं तो मेरे मन में यही विचार उत्पन्न होते हैं कि एम० ए० बना के क्यों मेरी मिट्टी ख़राब की ? 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।'

डाक्टर वाछा ने पूछा, "मि० इम्तिहान, आप के काळेज में भी तो परीक्षा का झगड़ा लगा ही रहेगा न ! जिसके कारण

विद्यार्थी सूख कर कांटे से हो जाते हैं। यदि यह हलत इसमें भी रहे तो, तोबा।"

"नहीं डाक्टर साहब! इस प्रकार की परीक्षा इस कालेज में नहीं ली जायगी। राष्ट्रीय कालेज और राष्ट्रीय यूनिवर्सिटी में परीक्षा लेने की प्रणाली बिलकुल भिन्न प्रकार की होगी। इसमें उनके ज्ञान की कसौटी होगी। इधर उधर के प्रश्न पूछ कर उनको चक्करमें नहीं डाला जायगा। जब तक इस देशमें उच्च प्रकार की शिक्षा देने वाले कालेज और विश्वविद्यालय स्थापित नहीं होंगे, तब तक देश का उदय त्रिकाल में भी नहीं हो सकता। हिन्दू प्रजा का सन्ध्याकाल आ गया है, शीघ्र ही अब रात आयेगी और विद्यार्थीगण लिख पढ़ धड़ाधड़ काल के ग्रास बनते जायंगे अथवा मौत के दिन गिनते रहेंगे।

स्त्री मुसाफिर ने खिजलाकर कहा "अरे भया न? भाड़ में पड़े कालेज स्कूल यूनिवर्सिटी सब कुछ बन गया। किसी को भी पोस्ट आफिस बनाने को फिक्र है? कितने दिनोंसे चिट्ठी पत्री या अखबार कुछ भी नहीं आता। इसपर तो किसी का भी ध्यान नहीं जायगा। आस पास में भी किसी अंग्रेज़ का बंगला नहीं है कि वहाँ से अखबार पढ़ने को मँगाती। अब चलिए नाव में बैठकर आगे चलें।

सब नाव पर सवार हुए। नाव नसीम बागकी तरफ बढ़ी। ज्यों ज्यों वह बाग़ पास आता गया, त्यों-त्यों सुगंधित समीर की लहरें अधिकाधिक आने लगीं। अन्त में नसीम बाग़ आही गया। इसको उद्यान नहीं पर अलकापुरी का नाम देना उचित है, क्योंकि इस की अनुपम शोभा उससे कम नहीं थी। यह बाग चौदह भिन्न भिन्न भागों में विभक्त कर दिया गया है। प्रत्येक भाग के महान जलयन्त्र नभ मण्डल के समाचार लाते

हुए प्रतीत होते थे। सुन्दर पुष्प वाटिकाओं का मनोहर दृश्य और अद्भुत प्राकृतिक भाव देख कर दर्शक क्षणभर के लिये आश्चर्यमें गोते लगाने लगता है। यह स्वाभाविकही है। आस पास स्वच्छ पानी के झरने बहते थे। पानी की शीतलता बर्फ़ को भी मात करती थी। पानी पाचक भी ऐसा कि भोजन के बाद पीओ तो फिर भूखे के भूखे। और पत्थर भी खाया हो तो वह भी हज़म। पंजाबीने जो इधर उधर देखा तो मुसलमान, पारसी और यूरोपियन से उसको दुगुने-तिगुने हिन्दू ही हिन्दू नजर आए। इससे उसने घबड़ा कर कहा कि, "यहाँ तो मुझे खाने को मिल चुका। यहां हिन्दू अधिक हैं। इनमें से यदि कोई जान पहिचान का निकल आया तो खाने पीने का प्रश्न सबके पहिले उठेगा।"

अंग्रेजी पोशाक वाले मुसाफ़िर ने कड़े हो कर कहा, "तो क्या मैं तुमको पूरी कचौरी, मोहन भोग आदि खाने दूंगा? अभी तो आप कुछ ठिकाने आए हैं क्या फिर खाट सेने का इरादा है?

पंजाबी ने घबड़ाते २ पूछा, "फिर इसका रास्ता क्या है?"

अंग्रेज़ी दिखाव वाले ने लापरवाही से कहा, "उपाय किस बात का?

"डोन्ट केयर, (निश्चिन्त रहो) किसी की परवाह मत करो, अपना काम चुपचाप किए जाव। तुम्हारे मेल के जहाँ दस-बीस हुए कि सब अपने आप तुम्हारे से हो जाएंगे। 'हैव मारल करेज' (हिम्मत करो)। यदि इतना भी तुम्हारा किया नहीं होता पढ़ा लिखा किस वास्ते? हटाओ यह सब मूर्खता की बातें। क्या इसी बिसारत पर यूनिवर्सिटी और कालेज खोलोगे? कुछ साहस करो, साहस।"

पंजाबी ने अधिकाधिक घबड़ाते हुए कहा, "अरे साहब यह खान पान की बात है। हम लोगों में वैसा होना बड़ा दुर्लभ है। मैं आप लोगों का छुआ पानी पीता हूँ, यदि इतना ही जो मेरी जाति वालों को मालूम होजाय तो अशुद्ध अक्षर की तरह से मेरा नाम बिरादरी में से कट जाय।"

अंग्रेजी पोशाक वाले ने कहा, "इसका क्या मतलब ? वाट नान्सेन्स ! क्या हमलोग भंगी चमार हैं ?"

पंजाबी ने नम्रता से कहा, "नहीं, नहीं, साहेब; यह तो अपना अपना रिवाज है। आप तो जानते ही हैं कि मैं स्वयं इन सब बातों को नहीं पसन्द करता, पर क्या करें संसार में बैठे हैं।"

स्त्री मुसाफिर ने एक नई युक्ति लड़ाते हुए कहा, "अरे भाई, तब मेरा कहा क्यों नहीं मानते ? पतलून और जाकिट पर एक लांग कोट पहिन कर ऊपर से साफा बाँध लीजिए। फिर यदि कोई जान पहिचान का होगा तो भी वह चक्कर में आजाएगा। वार्तालाप भी अंग्रेजी ही में किया करो। हम लोग भी आप को माणिकजी कह कह पुकारेंगे। चलो, खट खट दूर हुई।"

जर की बताई हुई यह युक्ति सब को पसन्द आई। डाक्टर बाछा ने अपने ट्रंक में से एक कोट निकाल कर माणिक को दिया। माणिक ने जब उस को पहिना तो ऐसा मालूम पड़ने लगा कि उसने एक लिहाफ ऊपर से ओढ़ ली है। कहां बाछा का हृष्ट पुष्ट शरीर और कहां अपने एम० ए० दास का विद्या की चक्की में दला हुआ अंग। जर ने झट अपना ट्रंक खोला और उसमें से एक कैंची और एक हाथ की मशीन निकाली।

"मालूम पड़ता है कि आप लोग यहीं घंटों बितावेंगे।

हम तो चलते हैं "। यह कह डाक्टर वाछा ने एक नौकर के हाथ में हैंड केमेरा और दूसरे के हाथ में थोड़ा सा सामान दिया और स्वयं नसीम बाग के दो एक दृश्य लेने को नाव पर से उतर पड़े। जर ने नाप लेकर कोट को कतरा और कच्चा कर के माणिक को पहिना देखा। छाती पर से अभी भी वह कुछ ढीला ढाला था। फिर उसने उस को कतर बेंवत के कच्चा खड़ा किया।

माणिक ने दीनता से शर्माते हुए कहा, "दुर्भाग्य का मारा मैं यहां भी आप को दुख देने के लिए साथ आया हूं। ाप के अइन उपकारों का—"

जर ने कोट तैयार करते हुए कहा, "चुप रहिए चुप-इन्सान इन्सान के काम आवे इसमें उपकार और एहसान कैसा ?"

इस बार कोट बिल्कुल ठीक हुआ। जर ने प्रसन्न हो कर उस को मशीन पर चढ़ाया। आधे घंटे में उसने बड़े बड़े कारीगर को कोने में बैठाने वाली कारीगरी से उस कोट को तैयार कर माणिक को पहिना दिया और वाछा के ट्रंक में से पगड़ी निकाल उसके सिर पर रखो। पगडी पहिनते माणिक बहुत लज्जित हुआ। सद्भाग्य से माणिक का सिर बड़ा होने के कारण वह पगड़ी उस को ऐसी ठीक ठोक हुई मानों वह उसी के नाप की बनी हो।

माणिक ने शर्माते हुए कहा, "सुनो, जरबानू, इस पगड़ी के स्थान पर आप मुझे कोई इंग्लिश केप या हैट पहिनने दीजिए।"

जर—(कोप से) ओहो—फिर आप हिन्दुओं की तरह लकीर पीटने लगे।

माणिक ने रुकते २ कहा "पर यह मुझे शोभा नहीं देता।"

"शोभा नहीं देता ? यह और किस खुदा ने कहा ?" यह कह कर उसने ट्रंक म से दर्पण निकाल कर माणिक के मुह के आगे रख दिया। माणिक अपना मुख देखते ही आश्चर्य में लीन हो गया। मन में विचार करने लगा "यह मैं वही हूं या और कोई ? दाँत और गाल की मित्रता का कब अन्त हुआ ? आँख की झाईं कहाँ लोप हो गई ? चेहरे पर नूर कब आया। कपाल कब से चमकने लगा ? गालों पर लाली और वह माणिक चन्द के गालों पर-आश्चर्य ."

बीमारी से उठने के बाद डाकृर बाछा के उपयुक्त यत्न और काश्मीर की आबोहवा तथा पर्याप्त आराम के कारण, माणिक का शरीर कुछ ठिकाने आया था। परन्तु उसने किसी दिन आरसी में अपना चेहरा देखा नहीं था। उसको काकुल वाकुल निकालने की आदत न थी। आज उसने जब आरसी में अपना चेहरा देखा तो वह फूला न समाया। और माणिक एक खलासी को लेकर जिधर बाछा गए थे उधर गए। थोड़े ही समय में वे बाछा के पास जहाँ वह नसीम बाग का दृश्य खींच रहा था, हंसते हंसते आकर खड़े हुए। बाछा ने खलासी को हुक्म दिया कि सब सामान बड़ी होशियारी स ठीक ठीक उतार कर के हमारे तम्बू में रख दो। मल्लाह सलाम कर के चला गया।

जरने पूछा" मामाजीयहाँअपने लोग कितने दिन ठहरेंगे?"

बाछा ने थोड़े में उत्तर दिया "एकाध हफ्ता।"

" जर हँसती हुई, मामा के कंधे पर हाथ रख कर बोली, "तब तो मामा जी, आप इस माणिक शाह की एक फोटो इस ड्रेस (लिबास) में खींच लीजिए। किसी दिन इनकी स्त्री मुझसे मिलने आवेगी तो मैं उसको चिढ़ाऊंगी।" . .

माणिक ने शरमाते हुए कहा "अरे नहीं, नहीं;"

"ओ, नो, आई विल डू इट" बाछा ने हँसते हँसते जिद्द कर के केमेरे का मुख माणिक की तरफ घुमा दिया। माणिक की इच्छा न होते हुए, उसको अपनी फोटो लाचारी से उतरवानी पड़ी। उसके बाद थोड़ी देर इधर उधर घूम कर तीनों जने अपने पहिले से ठीक किए हुए तम्बू में गए। साढ़े चार बजे सज धज कर तीनों आदमी वहां के एक जानकार के साथ बाग़ की हवा खाने निकले। थोड़ी देर घूमने के बाद शीघ्रगामी जर की दृष्टि दो सुशोभित नावों पर पड़ी। जिसमें यूरोपियन लेडिया और साहब बैठे थे और नवयुवक लड़के धारीदार गंजी फराक पहिले हुए आवेश में आकर डांड़े खे रहे थे। जर ने सब का ध्यान उस ओर आकर्षित किया।

डाक्टर बाछाने सामने देखा और साथ में आए हुए जानकार से पूछा "ये लोग कौन हैं?"

उस जानकारने उन सब का हाल कहना शुरू किया "अमेरिकन पादरी नोल्सन के स्थापित किए हुए स्कूल के ये विद्यार्थी हैं; वे लड़कियाँ कन्या पाठशाला में की विद्यार्थिन हैं। इनको दाई का काम सिखाया जाता है। जो दो बड़ी स्त्रियां हैं वे वहाँ की शिक्षिकाएँ है। कितने पादरी लड़कों को पढ़ाते हैं और गांव में फिर२ कर इसाई मत फैलाते हैं। इन्होंने कितने लड़के और लड़कियों को इसाई मत की दीक्षा दी है। मैं समझता हूं कि नोल्सन का स्वर्गवास हो गया है और उसके स्थान पर हाल में दूसरा कोई पादरी आया है। आज बोट-रेस (नौका-दौड़) है। ये दोनों नाव विद्यार्थियों के लिये स्कूल की ओर से बनवाई गई हैं। जब कभी कोई बड़ा आदमी यहाँ आता है तब यह नौका दौड़ होती है। आज जो इन युवकों को छोड़ा है

सो किसी न किसी यूरोपियन अमलदार के स्वागत ही के लिये। कदाचित् वे अब आते ही होंगे। साधरणतया और दिनों यह बन्द ही रहता है।"

माणिक ने चिन्ता करते हुए कहा, "अरे रे, अपनी सरकार यह अच्छा नहीं करती। गरीबों के लड़कों को बाल्यावस्था ही में वह धर्मभ्रष्ट करती है। और इन धर्म भ्रष्ट करने वालों को वह रुपये पैसे की पूर्ण मदद देती है, और वह भी हमारे ही पैसे में से। शिव, यह कैसा अन्याय ! कैसा महान अनर्थ !! हे प्रभो ! दया करो !!!"

वाछाने पूछा "तो फिर आप लोग जनता के हित के लिये एक फंड कर के धर्म-च्युत बालकों को क्यों नहीं अपने धर्म में मिला लेते ?"

"साहब, हमारे हिन्दू भाई इन बातों में अभी कोसों दूर हैं। धर्म के मुख्य हथियार हमारे गुरू जब वेही गहरी नींद में पड़े हैं तब अन्य संसारियों की क्या बिसारत ? वे लोग तो धर्म के नाम से महाराजों के गुरू देव के पैर में लाखों की ढेर लगा देते हैं। पर महाराज जब इन रुपयों को सार्थकव्यय करें तब न हो। वे तो गाड़ी घोड़ा चढ़ने में, बाग बगीचे घूमने में और मजे उड़ाने में ही अपनी आत्मा का संतोष मानते हैं। फिर उनको क्या गरज़ कि इधर ध्यान दें ?"

इस प्रकार की कितनी बातें कर के वे तम्बू में आए और खा पी कर अपने अपने सोने के स्थान पर चले गए।

तेईसवाँ प्रकरण

दरिया में से निकला हुआ हिन्दुस्तानी

दूसरे दिन प्रातःकाल सात बजे के लगभग जब हमारे तीनों प्रवासी मेज के आगे बैठे हुए चाय पी रहे थे। उसी समय एक डाकिये ने आकर माणिक, जरबानू, और वाछा के नाम के कितने पत्र और अख़बार दिए। डाकिए को इन लोगों का पता बड़ी मुश्किल से लगा था, इस कारण उसने कुछ इनाम पाने के लिये इच्छा प्रगट की। वाछा ने जेब में से कुछ पैसे निकाल कर उसको दिए, जिसको ले, उसने सलाम कर के अपना रास्ता लिया। सब कोई अपने अपने पत्र और अख़बार ले कर अपने अपने कमरे में चले गए। ज़र ने चिट्ठियों को तो अलग रखा और अख़बार लेकर पढ़ने लगी। उसने पहिले रूटर के तारों पर नज़र फेरी। उसमें पहिला ही तार नीचे लिखे अनुसार था:—

"दरिया में से निकला हुआ हिन्दुस्तानी।

जापान के किनारे पर एक हिन्दुस्तानी एक लकड़ी के तख्ते के साथ बह आया है। समुद्र की लहरों के कारण उस की ज़बान बन्द है। उसके दिमाग़ पर भी पानी ने असर किया है। उसके पास एक औज़ार निकला है, इस से अनुमान किया जाता है कि यह कोई डाक्टरी का काम करने वाला होगा। उसकी जात-बिरादरी का कुछ पता अभी नहीं लग सका है। बहुत खोज करने पर यह पता चला है कि वह बम्बई का निवासी है। डाक्टरों का ऐसा अनुमान है कि वह एकाध महीने में

आराम हो जायगा। इस समय वह जापान में रहने वाले ब्रिटिश एलची की देख रेख में है।"

जुर ने इस सम्वाद को बार बार पढ़ा। पढ़ने पर वह कभी आनन्दित और कभी शोकातुर हो जाती थी। कभी उसके हृदय में आशा के अंकुर उत्पन्न होते तो कभी निराशा का अंधकार उसके हृदय को घेर लेता था। अनेक विचारों से उसका मस्तिष्क चक्कर खाने लगा। कुछ देर वह विचार कर चुप बैठ रही। फिर चिट्ठियाँ पढ़ीं और रख दीं। मेज़ पर से उसने आलबम् उठाया, और उसमें से दो फोटो निकाले, फिर उनको तकिये पर रखा और उसके सामने बैठ कर नीचे लिखे अनुसार एकान्त में मन ही मन बड़बड़ाने लगी:—

"अहा हा, दोनों एक ही से हैं! परन्तु एक हमारे दीन का है और दूसरा दूसरे दीन का है। एक तन्दुरुस्ती का नादिर नमूना है तो दूसरा रोगी। दोनों के चेहरे पर गंभीरता, वफ़ादारी, मुहब्बत और चालाँकी एक सी है। एक अदना आदमी इनको सगे भाई कह सकता है। इतनी अधिक समानता दोनों में है कि इन्सान धोखे में आ जाय, यहां तक कि दोनों के नाम भी एक ही हैं। एक पर मेरा ज़िगर कुरबान है और दूसरे को देखने के लिये मेरी आँखें इन्तज़ार कर रही हैं। एक को मैं अपना प्राण दे चुकी हूं और उसी के मिस दूसरे को देख सन्तोष करती हूं। हाय, प्रेम! ए मेरे प्यारे! अख़बार में लिखा हुआ हिन्दुस्तानी तू ही है! प्यारे माणिक तू एक महीना किस प्रकार चुप रह सकेगा? प्यारे, तेरे पास वहाँ कौन होगा? तेरी सेवा-शुश्रूषा कौन करता होगा? हे परमेश्वर, मेरे प्यारे को तू धैर्य और हिम्मत प्रदान कर! हाय, मैं तो उसकी फोटो और उसका सा एक आदमी देख कर

धैर्य धारण किए हूं, पर यहां से हज़ारों कोस की दूरी पर पड़े हुए मेरे प्यारे की क्या दशा होगी ? हे दीन-दयालु, कृपा-सिंधु, दया कर। हाय मैं क्या करूं ? कहाँ जाऊं ? पत्र लिखूं ? क्या वह पहुंचेगा ? ब्रिटिश कौन्सिल के पते से लिखूं ?"

ऐसा विचार कर पलंग पर से उठ, जरबानू पत्र लिखने बैठी। हाथ में कलम ले ज्यों ही वह लिखने जाती थी कि अचानक उसके मनमें दूसरा विचार उत्पन्न हुआ और वह झटपट माणिक के कमरे में आई। वहाँ आकर उसने पूछा, "माणिक चन्द ! जापान तार जा सकता है ? क्या आप को इसकी ख़बर है ?"

माणिकने कुर्सी परसे उठ कर उत्तर दिया, "जी नहीं,"* जरबानू निराश होकर अपने कमरे में लौट आई और पत्र लिखने बैठी। प्रायः पांच मिनिट तक विचार करके उसने "प्यारे माणिक" लिखा, पर वह ठीक न लगने से उसको काट कर उसने "मेरे मसीहा माणिक" लिखा, वह भी ठीक न जँचने से उसको भी काट डाला और "वफ़ादार दिलदार" लिखा। इसकी भी वही गति हुई। तब "जर की जान, जर के अरमान" लिखा। इस समय तक कागज में पांच छःबार काट-कूट हो चुकी थी, इससे उसने दूसरा कागज उठाया और उसको फाड़ डाला। अब जर को यहीं विचार-सागर में ग़ोते लगाते छोड़, अपने पुराने एम० ए० दास उर्फ़ इम्तिहान चन्द के पास चलें तो बेहतर होगा।

माणिकचन्द एक कुर्सी पर बैठा था। एक अंग्रेज़ी पत्र को वह बारबार बाँचता और उसको रख देता, फिर गहरे विचार

---

* जिस समय यह पुस्तक लिखी गई थी उस समय भारत वर्ष से जापान का सम्बन्ध न था। अब तार लग गया है। अनुवादक

में लीन हो जाता था। यह पत्र एदलजी का था और उसमें यह हकीकत लिखी थी:—

"भाई माणिकचन्द,

आशा है कि आप तन्दुरुस्त होंगे। यहां आपके स्थान पर जो आदमी काम करता है वह ठीक है। काम काज चलता है। मेरे पास मेरे जापान के एजेन्ट का एक पत्र आया है। उसमें लिखा है "वहां एक बड़ी कोठी को बड़ा भारी घाटा हुआ है। उसका करोड़ों का माल नीलाम किया जायगा। यदि कोई आकर अपने पसन्द का माल ले जाय तो अच्छा होगा।" मेरा विचार है कि मैं एक आदमी को वहाँ भेजूं। आप पर मेरा जितना विश्वास और प्रेम है उससे आपको लाभ उठाने का मौका देने की मेरी तीव्र इच्छा है।" आपका मासिक वेतन मैं एक सौ रुपये कर देता हूं भाड़ा खुराक वगैरह सब अलग दिया जाएगा। आप स्वयं जाकर अपने पसन्द का माल छाँट लीजिए और मुझे तार दीजिए। मैं यहां से हुंडी भेज दूंगा और आप माल ख़रीद कर रवाने कर देना। अपने अढ़तिए के लिखने से तो मालूम पड़ता है कि हज़ारों की कौन कहे लाखों के नफ़े की सूरत नज़र आती है। समुद्री हवा-पानी से आपका स्वास्थ भी सुधर जायगा। वहाँ आपको अपना अभ्यास बढ़ानेका भी अच्छा मौका मिलेगा। इस समय मैं दूसरे किसी विश्वास पात्र मनुष्य को खोजने कहाँ जाऊँ? यदि आपकी जाने की इच्छा हो तो शीघ्र उत्तर दीजिए। जर राजी खुशी होगी। आप भी बड़े भाई की तरह उसकी देख-रेख करते रहिएगा। मेरे स्थान पर तो वहाँ उसके मामा हैं ही।

तुम्हारा शुभ चिन्तक

एदलजी॥

अंग्रेजी भाषा में लिखे हुए इस पत्र को माणिक पढ़ता जाता था और विचार सागर में गोते खाता जाता था। कभी कुछ बड़बड़ाता तो कभी चुपचाप सोचने लगता। फिर उसने पत्र उठाया और पढ़ कर यही निश्चय किया कि, "चलना तो अवश्य ही चाहिए और हो सके तो आजही, आजही जाने में अधिक शोभा है। ऐसे मालिक फिर खोजने से भी नहीं मिल सकते। इसने मुझे नौकर रखा है कि गोद लिया है? मैं यहाँ नौकरी करता हूं कि सेठाई? बीस रुपये का एक साधारण गुमाश्ता, और वह काश्मीर हवा खाने जाए। घर जाने की छुट्टी माँगी तो बिदाई के साथ जाड़े के कपड़ों के जोड़ के जोड़ मिलें। उसकी पुत्री की ओर से अलग भेंट मिले। बीस के बाद एक दम सौ की तरक्की। यदि मैं एक दमड़ी मासिक पर भी इनकी नौकरी करूं तो भी मैं इनसे उऋण नहीं हो सकता।" इस प्रकार बड़बड़ाते हुए उसने पत्र पढ़ा और अन्त में सोच विचार कर जर के कमरे में गया।

वह परदे के बाहर खड़ा होकर पूछने लगा। "मे आई कम इन, ज़रबानो?"

अन्दर से उत्तर आया, "बाई आलमीन्स;"

माणिक अन्दर गया। जर ने उस काट छाँट किये हुए कागज़ को फाड़ कर फेंक दिया; और माणिक चन्द को सामने की कुर्सी पर बैठने को कहा।

माणिक—"मेरे आने से आप के ज़रूरी कार्य में बाधा तो नहीं हुई?"

जर ने भी सभ्यतापूर्ण उत्तर दिया। "बिलकुल नहीं।"

"तो कृपा कर के इस पत्र को"—जर ने पत्र लेकर उसको जल्दी जल्दी पढ़ा। पढ़ने से उसके मुख-मण्डल पर विचित्र

परिवर्तन होने लगे। दूसरी बार आँखें फाड़ फाड़ कर बड़े ध्यान से उसने पत्र पढ़ा और फिर कुछ देर तक चुप रही। माणिक जर का अभिप्राय जानने के ही लिये आया था, जर को वह चुप चाप बैठे देख बोल उठा, "क्यों ? इतने गहरे विचार-सागर में क्यों पड़ गईं।

जर ने बहुत सोच विचार कर कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या उत्तर दूं ? आपको यदि मैं 'नहीं' कहती हूं तो एक अच्छा मौक़ा आप के हाथ से निकल जाता है; और जो 'हां' कहती हूँ तो आप के लिए चिन्ता होती है।"

माणिक ने अपने मनोभाव प्रकट किए, "मैं तो यही उचित समझता हूं कि मुझे जाना चाहिए। अब मैं स्वस्थ हूँ मेरे शरीर में भी अब शक्ति आने लगी हैं और जापान में मुझे दिन भर मेज पर बैठ के चक्की तो पीसनी नहीं पड़ेगी—यह तो किसी नवाब जादा की हवा खोरी के समान होगा। नीलामी माल देखना तो एक प्रदर्शनी देखने के समान है, और सब रक़म ख़रीदने में भी मुझे कौन से पत्थर ढोने पड़ेंगे ? ईश्वर ने तो मुझे यह एक बहुत अच्छा मौक़ा दिया है। तिसपर भी आपकी जो राय हो सो ही ठीक।"

जर बिचार करती हुई चिहुँक कर बोल उठी "मुझे और कुछ नहीं कहना है।" माणिक ने जो कुछ कहा था उसका आधा भी जर ने नहीं सुना था। "मैं आप के जाने से यहाँ अकेली पड़ जाऊंगी। आप का साथ मुझे बहुत पड़ गया है, खैर आप जाइए, मिस्टर माणिक चन्द्र यहाँ मेरा भी एक—"

माणिक ने साश्चर्य पूछा। "कहते कहते आप रुक क्यों गईं, जरबानो ?"

"आज के अख़बार में यह समाचार आया है" समाचार

पत्र उठा कर जर ने माणिक को दिया और उसने उसको पढ़ा "जब आप वहाँ जाएं तो इस व्यक्ति से मिलकर—पर वह जो वह न हो, तो फिर? नहीं वह तो यही होगा। आप न जायें तो ठीक, खैर, आप जाइए तभी मैं खुश हूंगी।"

माणिक ने जर का अभिप्राय कुछ भी न समझ कर हंसते हुए कहा, "माफ़ कीजिएगा, जरबानो, आप अपने कथन को फिर से कहिए तो ठीक हो या उसका मतलब समझाइए। आप हाँ कहती हैं कि नहीं सो कुछ भी समझ में नहीं आता।"

जर ने फिर सोचते हुए कहा, "लीजिए मैं आपको समझाती हूँ; इस व्यक्ति को अगर आप को लाना पड़े तो आप इसको बड़ी सावधानी से लाइएगा। यह तो मैं मानती हूँ। पर उसी व्यक्ति के लिये मैं आपको भेजूं और वह व्यक्ति दूसरा हुआ तो इतना कष्ट उठाने से भी क्या लाभ?"

माणिक ने आश्चर्य से कहा "आप कदाचित् ठीक कहती होंगी, पर मैं जापान जाने की धुन में भाषा भूल गया हूँ, ऐसा मालूम पड़ता है।"

डाक्टर—"जर! मैं अन्दर आना चाहता हूं।"

जर—"आइए मामाजी" डाक्टर कमरे के अन्दर आए।

डाक्टर ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "भलो, जिस काम के लिये मैं आया हूँ उसी के लिये आप भी आए हैं, क्यों? मैं ठीक कहता हूं न, इम्तिहान चन्द?"

माणिक—"हाँ साहब, आप ठीक कहते हैं।"

"मेरे पत्र में भी माणिकचन्द को पैक करने के लिये लिखा है। पर मेरी तो यह राय है कि ये हजूर अभी थोड़े दिन और यहाँ रहें तो ठीक हो तेरे क्या विचार हैं?"

जर—आप ठीक कहते हैं, मामा जी। पापा को भी ऐसा

ही लिख दीजिए ।

बाछा—मैं क्या लिखूं सो तो नहीं समझ पड़ता ।

जरवानू—लिखिए न कि तबियत बिलकुल ठीक अभी नहीं हुई । वापसी डांक से उत्तर भेजिए कि--पर मामा जी, ये जायँ तो क्या बुरा ? ऐसा अवसर फिर जल्दी शायद हाथ न आवे—क्यों, आप के क्या विचार हैं ?

बाछा—यह सब गोल माल क्या कर डाला ? बेटा जर, आज तेरे चेहरे पर बेहद चिन्ता नज़र आती है ।

" चिन्ता और किस बात की, आज कुछ अधिक पढ़ा है इससे आँखें कुछ चढ़ आई हैं, " जर ने अपने मनोभाव छिपाने का प्रयत्न करते हुए कहा, पर उसका मन तो माणिकचन्द जापान और समुद्र इन तीनों के फेर में चक्कर खा रहा था ।

बाछा–तो मैं लिख देता हूं कि माणिक की तबीयत तो ठीक है पर अभी कमजोरी है । यदि अत्यन्त आवश्यकता हो तो तार वा चिट्ठी द्वारा जैसा सूचित कीजिए वैसा किया जाय, क्यों ठीक है न ?

जर ने उतावलेपन से कहा. "हां हां, यही लिखिए ।"

माणिक—मैं भी तब यही लिख देता हूं कि दे। रोज़ की गाँव जाने की छुट्टी के बाद आप मुझे जहां कहीं भेजेंगे मैं जाने को तैयार हूं । यही ठीक है—सब की यही राय ठहरी । फिर डाक्टर और माणिक अपने अपने कमरे में चले गए ।

सब के चले जाने पर जर मन ही मन कहने लगी, " हे परमेश्वर, क्या मैं माणिक चन्द नहीं बन सकती जिससे मैं स्वयं जापान जाऊँ । अरेरे, पंख कहां से लाऊं । उड़ भी कैसे सकती हूं !" ऐसे विचार करते करते उसने पत्र लिखने का

निश्चय किया। वह टेबुल पर जा बैठी और यह पत्र लिख डाला:—

काश्मीर, ता० १

"मेरे दिलके करार, जिगरके मुख्तियार और प्यारे दिलदार"

इधर महीनों से आप के कोई समाचार न मिलने से दिल बेक़रार रहा। इन्तिज़ार में, नयनों का खप्पड़ बना तुझ दिलदार के दीदार की भीख दर दर माँगती फिरती हूं। जुदाई की आग के शोले जिगर में उठते हैं और जिगर ही में समा भी जाते हैं। अपोलो—सम्बन्धी समाचार पढ़ने के लिये रात दिन अख़बार देखने पर आज यह उसमें पढ़ा कि जापान के किनारे एक आदमी निकला है। मेरा दिल बार बार पुकारता है कि वह आदमी हो न हो मेरा दिलदार ही है। ईश्वर करे मेरी धारणा ठीक उतरे। इस समय मैं मामा जी के साथ काश्मीर की यात्रा में हूं। पर प्यारे, तुम्हारे बिना स्वर्ग भी नरक तुल्य मालूम पड़ता है। यह पत्र पहुंचते ही अपनी राज़ी ख़ुशी के समाचार तुरन्त भेजकर इस जलते हुए ज़िगर को राहत दें। लिखना तो बहुत कुछ चाहती हूं, पर कुछ सूझता नहीं। दिल को निकाल कर कागज में लपेटने का काम कुछ साधारण नहीं है। हे दयासिन्धु! तू मेरे प्यारे को हिन्दूस्तान पहुंचा और केवल उसी के आधार पर जीने वाली से शीघ्र उसकी भेंट करा। शुभम्

तेरे दर्शनोंकी चातक

'अर'

चिट्ठीको लिफाफे में बन्द कर और उसपर ब्रिटिश कौंसिल द्वारा माणिकजी अरदेशर को मिले, यह पता लिख कर टेबुल के खाने में रख दिया। दूसरे दिन सब कोई गुलमर्ग रवाने हुए।

चोबीसवाँ प्रकरण

कोमरास्की और हिन्दुस्तानी जवान

अपने महल के एक कमरे में कोमरास्की बैठी हुई है। यद्यपि उसकी अवस्था २५ वर्ष की है फिर भी वह पन्द्रह सोलह वर्ष के बाला जैसी सुकुमार है। उसका मुख अंडाकार और नाक चिपटी है। उसकी कबूतर सी पतली गर्दन और भौंरे से काले बाल थे। उसके उभड़े हुए गाल और बैठी हुई आँखें ऐसी मालूम पड़ती थीं मानो किसी ने चीन की पुतली बना कर उस की आँखों के गढ़े में कांच की गोली बैठा दी हो। कमरे में एक कोने में चाय की तपेली रखी हुई थी। और एक कोने में एक अँगीठी, जिसको जापानी 'हूब्शा' के नाम से पुकारते हैं, बराबर सुलगा करती थी। छोटी छोटी तिपाइयों पर उत्तमोत्तम कारीगरी के हाथ के बने हुए फूलदान शोभायमान थे। कमरा भी छोटा ही सा कबूतर के दरवाजेके समान था। एक कोने में सुन्दर जिल्द की पुस्तकों का ढेर लगा था। दूसरे कोने में एक लालटेन जैसे कांच के चौखटे में गौतम बुद्ध की स्फटिक की मूर्ति थी। यह मूर्ति पद्मासन से बैठी थी। इस मूर्ति पर ताजे फूल के हार चढ़े हुए थे। कोमरास्की प्रतिदिन इस मूर्ति को स्नान करा, फूल के हार चढ़ा, नमस्कार कर, इसके समक्ष जप करने बैठती। वह घंटों तक पूजा पाठ किया करती। बौद्ध धर्म की पुस्तकें वह नित्य पढ़ती। जापान में बौद्ध धर्म की तेरह शाखाएं हैं। उनमें शिंशु और नचिरनईु नाम की दो शाखाएं अधिक प्रसिद्ध और अन-प्रिय हैं। बौद्ध मत के सिद्धान्तों को लोगों ने पीछे

से बहुत ही मनमाने अर्थ लगाये हैं। प्रत्येक देश में जिस प्रकार धर्म-सम्बन्धी विविध शङ्काएं उत्पन्न हुआ करती हैं, उसी प्रकार जापान में भी होता है। रमिनु नाम के एक व्यक्ति हो गए हैं। सबसे पहिले उन्होंने बौद्ध धर्म में कितने काट-छांट करके एक नवीन सम्प्रदाय चलाया था। कोमरास्की इस नवीन सम्प्रदाय की अनुयायिनी थी। बौद्ध मत में इसको इतनी अधिक श्रद्धा हो गई थी, कि इस अबला ने निश्चय कर लिया था—जैसा ऊपर लिख आये हैं—कि बुद्ध ऐसे महात्मा की जन्म भूमि में उत्पन्न हुए मनुष्य के ही साथ विवाह करूँगी। जैसे भी हो भारत वर्ष में बौद्ध धर्म की उन्नति देखने के लिये उस का चित्त आतुर हो रहा था। जिस दिन वह ब्रिटिश लिगेशन से लौटी थी, उसी दिन से वह यह मान बैठी थी कि भगवान बुद्ध ने जापान के किनारे लगे हुए पुरुष को उसी का पाणि-ग्रहण करने के लिये भेजा है। इस समय वह माचानची और यज़जी नाम के अखबार पढ़ रही थी। यह तो जगत-प्रसिद्ध बात है कि अख़बार वालों को कोई भी सुनगुनी लगी कि उन्होंने राई का पर्वत बना दिया और मनमानी बातें उस पर लिख मारीं। उक्त दोनों अखबारों में सम्पादकाचार्यों ने अटकल के घोड़े दौड़ाने में कुछ भी उठा न रखा था। एक ने लिखा था 'यह हिन्दुस्तानी कोई जासूस है, जिसने जान बूझ कर मौन धारण कर लिया है।' दूसरे स्थान पर लिखा था 'यह कोई ढोंगी मालूम पड़ता है जो लोगों को चकित कर रुपये चीरने आया है।' एक स्थान पर यह लिख मारा था कि 'यह कोई जापानी लेडी का आशिक मालूम पड़ता है, इस प्रकार अस्पताल में पड़े रहने का कारण यह है कि उसकी माशूका वहाँ उसको देखने जाती है। रहम खाती है।' कोमरास्की को ये शब्द बड़े

प्यारे लगे। कहीं यह लिखा था कि "यह कोई भारतवासी योगी है जो जल-मार्ग से जापान देखने आया है।" सारांश यह कि जो जिसके मन में आया वही उसने लिख मारा। कोमसारकी मनही मन, यह सब पढ़ कर हवाई किले बाँधती थी। कभी कभी मात्रा यहाँ तक पहुँच जाती कि, वह अपने को, पागल की तरह उसकी विवाहिता समझ, नाचने लग जाती। हिन्दुस्तान का नकशा और हिन्दुस्तान का भूगोल तो वह सदा अपने पास रखती। उसी में देख देख कर वह भारतवर्ष के नगरों और गांवों के नाम याद करती। किस गांव में किस विषय पर व्याख्यान देना है, इसका भी वह मनही मन निश्चय कर लेती। इस प्रकार कितने ही दिन बीत गए। एक दिन उसने किसी समाचार पत्र में यह सम्वाद पढ़ा 'जापान के प्रसिद्ध व्यापारी लगुची ने अपना टाट उलट दिया है...... .. महीने की......तारीख को उसकी करोड़ों की रकम नीलाम होगी। इसकी खरीद के लिये देश देश के व्यापारियों को सूचना दी गई है। सब देशों के व्यापारी अपने गुमाश्तों को भेज कर नीलामी बोली बोलेंगे, ऐसी दृढ़ आशा है।'

अब तो, इसके पढ़ने के बाद, कोमसारकी के हवाई महल और भी ऊँचे उड़ने लगे। उसने निश्चय कर लिया था कि, आने वाले हिन्दुओं की राह देखूंगी और उन सभों में से एक को पसन्द कर उसको बौद्ध मत में लाकर उसी के साथ भारतवर्ष चली जाऊँगी। पति को भी इतना अपने वश में करूंगी कि वह पूछे बिना पानी भी न पीये। पर सब से भारी पीड़ा तो इस बात की थी कि अभी नीलाम को चार महीने की देर थी इसलिये वह अकस्मात आये हुए हिन्दुस्तानी की भेंट के लिये आवश्यकीय तैयारियां करने में तन, मन और धन से

क्षीण हो गई।

कुछ दिनों के बाद रोगी की ज़बान खुली। वह कुछ कुछ बोलने लगा। ज़बान में बोलने की शक्ति आते ही उसने अपने पुराने कपड़े के विषय में पूछा, "क्या मेरे शरीर पर से कुछ कपड़े मिले थे? वे कहाँ हैं?" कान्सेल की आज्ञा से एक नौकर ने दौड़ कर एक पोटली ला दी। उसको खोल कर उसने कपड़े तिपाई पर रख दिए। मरीज़ ने पागल की तरह खड़े होकर उन कपड़ों को उलट-पलट कर उसमें से एक अधबहियाँ और एक लम्बी डोरी ढूँढ़ निकाली। उसको वह बारबार चूमता और आंखों से लगाता। आस पास के लोग यह कौतुक देख, चकराने लगे। डाक्टर को अब उसकी आरोग्यता की चिन्ता होने लगी।

डाक्टर ने उसको खाट पर बैठाते हुए कहा, "आप बैठ जाइए। यह क्या है, जिसके देखने से आप इतने अधिक हर्षित हुए हैं।

मरीज़ ने हर्ष से कहा, "यह हमारे धर्म की निशानी है, माइ लार्ड। मैं पार्सी हूं। यदि ये चीजें मुझे पीछे न मिल गई होतीं तो कदाचित् मैं इस दुःख से फिर बीमार पड़ जाता।"

ब्रिटिश एलचीने प्रश्न किया, "आपका शुभ नाम क्या है।"

मरीज़—"माणिक जी अरदेशर, मैं आर्मी मेडिकल सर्विस में लेफ्टनेन्ट होकर अपोलो जहाज़ से हाँगकाँग जा रहा था। मार्ग में बीच समुद्र में जहाज़ डूबने के कारण एक तख्ते के सहारे मैं यहाँ आ लगा हूं।"

एलची ने उदास चित्त से प्रश्न किया, "आखिरकार वह अपोलो डूब ही गया क्या?"

माणिक—"यस सर," फिर उसने थकावट से अशक्त हो कर एलची से अन्य प्रश्न दूसरे समय पूछने के लिये बस विनती

की। रूटर की एजन्सी द्वारा यह समाचार चारों तरफ फैल गया। जापानी समाचार पत्र के कालम के कालम इसी समाचार से भरे रहते हैं। लोगों ने अनुमान तो कर ही लिया था पर आशा के कच्चे तार के सहारे शुभ समाचार की आशा देखते थे। किन्तु आशा के वे भी तार अब टूट गये।

कितनी स्त्रियाँ विधवा हुईं, कितने बालक मां बाप से रहित हुए। मा-बाप बहिनें, भाई, मित्र और दूसरे हज़ारों लोग अपोलो के साथ ही शोक-सागर में डूब गए। हज़ारों घरों में कुहराम मच गया और बप्पा दड्डा होने लगा। स्टीमर के मालिक के घर भी शोक छा गया। केवल माणिक जी के घर ही हर्ष और चिन्ता-मिश्रित आशा की जाती थी। शेष सब डूबे हुए लोगों के सगे-सम्बन्धी, हेली मेली जो स्टीमर सम्बन्धी समाचार के लिये चातक हो रहे थे, निराश हो गये। माणिक जी के देखने में तो बहुत लोग लाइफ़ बोट पर उतारे गए थे। पर पीछे से उनका क्या हुआ सो माणिक जी को नहीं मालूम था।

समाचार-पत्र में यह ख़बर बाँचने के बाद, एक दिन कोमरास्की सबेरे ही से नहाने-धोने और बाल संवारने में लग गई। बाल सँवारने में जापानी स्त्रियाँ कितनी निपुण होती हैं, यह किसी से छिपा नहीं है केश सँवारने के बाद उसने दो तीन पोशाक पहिनी और उतारी। अन्त में एक घन्टा बीतने पर उसको एक पोशाक कुछ पसन्द आयी। उसके पहिनने के बाद उसने हीरा-मोती से अपना शरीर लादना शुरू किया। हीरा-मोती के अमूल्य अलंकारों से उसकी शोभा चौगुनी हो गयी। चलते समय उसने अतर अपने रेशमी रूमाल पर छिड़क लिया और ब्रिटिश एलची के यहाँ पहुंची। वहाँ उसने कार्ड भेजा। एलची इसको जानता था। उसने तत्काल

उसको अन्दर आने की आज्ञा दे दी। वह बड़े ठाट बाट से अन्दर आई। एलची ने उसका उचित स्वागत किया। फिर उसके आने का कारण पूछा।

"कोमरास्की ने आन्तरिक उत्कंठा से अपने आने का कारण बताया। "मुझे उस हिन्दुस्तानी से भेंट करनी है। आप यदि उस से मेरी जान पहिचान करा दें, तो बड़ा उपकार हो।

एलची—खुशी से, चलिए; मैं भी उसी से मिलने जाने वाला था।

एलची और कोमरास्की दोनों माणिकजी के यहाँ पहुंचे। माणिकजी आज और दिनों से बहुत अच्छी स्थिति में थे।

एलचीने माणिकजी से कोमरास्की का परिचय देते हुए कहा, "मिस्टर माणिक जी अरदेशार लेफ्टिनेन्ट, मैं आपसे यहाँ की एक उच्चश्रेणी की उमरावजादी से परिचय कराता हूं। यह युवती यहां के विद्वान तथा धनी-मण्डल का एक सुगन्धित पुष्प है। यह अंग्रेजी, लैटिन, फ्रेञ्च, जर्मन, संस्कृत, हिन्दी और पाली भाषाओं को खूब अच्छी तरह जानती हैं। जापानी तो इनकी मातृभाषा ही है, इस भाषा में यदि यह पंडिता हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या? दूसरे यह बहुत अच्छी व्याख्यान दात्री और उत्तम कोटि की लेखिका हैं। जापानी स्त्रियों को इनके कारण बहुत गौरव है। मैं समझता हूं कि आप इनके परिचय से बहुत प्रसन्न होंगे। इनका शुभ नाम मिस कोमरास्की है।" हाथ में हाथ मिला कर, कोमरास्की की तरफ घूम कर एलची ने कहा, "लेफ्टेनेन्ट साहेब का नाम मिस्टर मणिक जी अरदेशर है। इतना कह थोड़ी देर बैठने के बाद, ख़ैर सलाह पूछ कर एलची साहब ने तो अपना रास्ता लिया।

कोमरास्की ने एक कामिनी की तरह सिर नीचा कर के

कहा,—लेफ्टनैन्ट माणिकजी, आपकी मुलाकात से मुझे जो आनन्द हुआ है उसका वर्णन करने के लिये मेरी जिह्वा में शक्ति नहीं है।"

माणिक ने सभ्यता से उत्तर दिया। "वही दशा सेवक की भी है, ऐसे परदेश में, मुझ परदेशी की चिन्ता कर के, हाल पूछने आने वाली सुशिक्षिता अमीरजादी का एक एक कदम मेरी आँखों पर— ।"

कोमरास्की ने बात काट कर पूछा "ख़ैर, अब आपकी तबीयत कैसी है ?

माणिकजी ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया, "आपकी कृपा से अब तो बहुत फुरसत है, तो भी अभी घूम फिर नहीं सकता बहुत बोलने से थक जाता हूं, ईश्वर की इच्छा से थोड़े दिनों में बिलकुल तन्दुरुस्त हो जाऊंगा।"

कोमरास्की एक सभ्य और सुशिक्षिता युवती थी, उसने डूबे हुए जहाज-सम्बन्धी कोई चर्चा छेड़ कर माणिक जी के हृदय को दुखाना उचित नहीं समझा। दूसरे यह प्रथम ही का मिलाप था, इससे उसने साधारण बातचीत की और सब बातें आइन्दा के लिए छोड़ इस प्रकार प्रश्न किया:—

"यहाँ की आबोहवा तो आपको हिन्दुस्तान से विपरीत नहीं मालूम पड़ती होगी ?"

माणिक जी ने धीरे से उत्तर दिया "यहां का हवा पानी हिन्दुस्तान की आबोहवा से भिन्न तो है, पर लाभकारी है। आपका देश एक टापू है, हवा यहाँ बाहुल्य से प्राप्त हो सकती है, पर हमारे देश में यह बात नहीं है।"

कोमरास्की—आप के यहाँ तो बहुत गरमी पड़ती होगी ?

माणिक—जी, हाँ, कितनी जगह तो अफ्रिका को मात

करने वाली गरमी पड़ती है। अलबत्तः हिमालय, काश्मीर, शिमला, मसूरी, आदि स्थानों में ठंढक रहती है। इन स्थानोंमें धनी लोग गरमी के दिनों में हवा खाने जाते हैं। बिचारे गरीब लोग तो उस गरमी में भी पेट का गढ़ा पूरा करने के लिये धूप में झुलसते हैं। मुलतान की तरफ़ तो गजब की गरमी पड़ती है।

कोमरास्की—आपकी ज़िन्दगी सलामत है, इस बात की खबर आपके सगे-सम्बन्धी को मिल गई होगी ?"

माणिक जीने जन्म-भूमिके स्मरणसे दीर्घ श्वाँस लेकर कहा "कल ही मैंने पत्र लिखा है। पन्द्रह दिनों में वह पहुंचेगा हो सकता है कि, अखबार पढ़ने से उनको खबर लगी हा, ब्रिटिश कोन्सल साहबने मेरा पता ठिकाना पूछा था, उन्होंने भी मेरे माता पिता को समाचार भेजे हों तो कोई आश्चर्य नहीं।"

कोमरास्की–यदि आज्ञा हो तो, मैं पूछूँ कि, आपकी जात क्या है ?

माणिक-जी–मैं पारसी हूं। आपको मालूम ही होगा कि ईरान में मुसलमानों का राज्य होने पर, धर्म-सम्बन्धी झगड़ों के कारण, हिन्दुस्तान में उतरे हुए ईरानियों ने भारत वासियों की शरण ली थी। इस समय तो ईश्वर की कृपासे पारसी ब्रिटिश राज्य में एक उन्नत कौम गिनी जाती है।"

कोमरास्की–यदि मैं भूलता नहीं तो, ज़रथुस्त पैगम्बर के सम्प्रदाय वाले आतिश परस्तों में से आप एक होंगे।

माणिक—जी, आप के विचार में कुछ ही फ़रक़ है। मैं ज़रथोस्ती मत का तो हूं, इसमें शक नहीं; पर आतिश परस्त नहीं–बल्कि खुदा-परस्त हूं। हम लोग अग्नि, सूर्य, चन्द्र और

पानी को एक दृष्टि से देखते हैं। पर उनको हम लोग ईश्वर कर के नहीं पूजते बल्कि ईश्वर से पैदा भए हुए उसके प्रतिनिधि-स्वरूप पूजते हैं। हम लोगों को आतिश परस्त कहने वाले मुल्ला और पादरी साहब बड़ी भारी भूल करते हैं। पारसी का एक एक बच्चा अपने को खुदापरस्त जानता और मानता है, जब दूसरे मज़हब के मुल्ला हम को आतिशपरस्त ही सिद्ध करने में जिन्दगी गँवाते हैं।"

कोमरास्की ने अटकते अटकते पूछा, "खैर, क्या किसी जात का आदमी पारसी हो सकता है ?

माणिक जी ने मुँह बनाकर उत्तर दिया "कभी नहीं।".

कोमराल्की—ऐसा क्यों ? जो धर्म सच्चा है, उसमें दूसरे के आने से हानि ही क्या ?"

माणिक,—मेरे विचार से इसमें कोई ऐसा नुकसान तो नहीं है; पर यह एक रिवाज़ पड़ गयी है कि जहां तक बने जरथोस्ती धर्मेतर को जरथोस्ती न बनाया जाए। रिवाज के आगे दलील टिक नहीं सकती। प्राचीन काल में लोग अपने मज़हब के, अपने देश के और अपने धर्म ग्रन्थ के बाहर के लोगों को दूसरे, यहां तक कि दुश्मन, समझते थे। मुसलमान अपने को छोड़ और सबों को काफ़िर कहते हैं; हिन्दू दूसरों को म्लेच्छ और पारसी दरवन कहते हैं। हाल में बम्बई में धर्म के झगड़ों का बाज़ार गर्म था, पर महीनों से जल के फेर में पड़ने से, मुझे पता नहीं की अन्तिम फल क्या हुआ।"

कोमरास्की ने व्यग्रता से पूछा। आपके ध्यान में और भी कोई ऐसी जाति है जो विधर्मियों को अपने धर्म में नहीं लेती ?

माणिक—हां, हां, हिन्दू अपनी जात में दूसरों को नहीं लेते, उसी प्रकार यहूदी भी। मेरा एक मित्र एक यहूदिन पर

बहुत ही बेतरह फ़िदा हो गया था; उसने बहुत चाहा कि वह यहूदी हो जाय, पर यहूदियों ने ऐसा नहीं होने दिया।

कोमराल्की—पर आजकल के सुधारकों ने तो सब को एक कर डालने की—जात बिरादरी के बन्धन तोड़ डालने की बहुत चेष्टा करनी शुरू की है। मैं तो इस बातको बहुत पसन्द करती हूं।

माणिक—सबसे पहिले यह विचार गौतमबुद्ध के मन में आया था। सच पूछिये तो वैसा ही होना भी चाहिए। प्राणी मात्र एक हैं। हां, कोई चार आंखों वाला या दो पंख वाला हो तो वह परजात कहा जा सकता है, यह प्रश्न दूसरा है। बुद्ध जी ने जात—बिरादरी, देश-परदेश सब के झगड़े ताक पर रख कर अपने धर्म में सब जात के लोगों को सम्मिलित होने की खुली इजाज़त दे दी थी।

बुद्ध के नाम से प्रसन्न होकर कोमराल्की ने कहा "यों तो मुहम्मद और जीसस ने भी दूसरे धर्म वालों के लिये अपने धर्म के दरवाज़े खोल दिए हैं।"

माणिक—ठीक है, पर वे बुद्ध से पाँच सौ वर्ष बाद हुए हैं। यह तो इतिहास ही पुकारता है। स्वयं इसी ने बुद्ध के चेलों से कितना ज्ञान सीखा है, और मुहम्मद शाह ने तो जीसस के भी बाद अपना मत चलाया था। इस हिसाब से, सच पूछिये तो इन्सान की हमदर्दी का जानने वाला पहिला महात्मा बुद्ध ही था।

कोमराल्की—तब आप बुद्ध को एक सच्चा महात्मा और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्त को माननेवाला अवश्य मानेंगे?

माणिक,—अवश्य, स्वयं मेरी बुद्ध पर बहुत श्रद्धा है। यद्यपि यूरोपियन पादरियों ने उनको बहुत बुरा बनाया है और नास्तिक तथा जड़वादी कहा है; पर हाल की यूरोप

की खोज(गवेषण) के अनुसार लोग उनको एक महात्मा मानने लगे हैं। हमारे जरथोस्त साहब ने भी 'जन्द अवस्था' में उनकी खूब चर्चा की है।"

कोमरास्की ने हर्ष से फूल कर पूछा, "मिस्टर माणिक जी ! क्या आप जानते हैं कि जापान का एक बड़ा हिस्सा उस महात्मा को मानता है, जिसने इस संसार में भ्रातृ-भाव की नींव डाली थी ? खैर, आप के विचार में बुद्ध के शुभ सिद्धान्तों में कौन कौन अच्छे हैं ?"

माणिक,—यदि बुद्ध ने ईश्वर का अस्तित्व माना होता और स्वर्ग नरक को कायम रखा होता तो मैं उन्हें संसार भर के सब महात्माओं में श्रेष्ठ समझता। इस अवस्था में तो मैं उनको एक सच्चा आदमी मानता हूं। जिस बात को वह नहीं समझते थे उसको उन्होंने केवल दिखावे के लिये स्वीकार नहीं कर लिया है। यह तो अपनी अपनी बुद्धि की बात है। आत्मा और परमात्मा की बात उनके ध्यान में नहीं आई होगी। उनके विचार उनके साथ। पर उन्होंने दूसरी बहुत सी बातों को सिद्ध किया है। दास-प्रथा को मिटाने वाला, प्राणी मात्र पर दया करने वाला और ऐक्य ही को परम धर्म के तौर पर प्रचार करने वाला प्रथम नर वही था।

अब कोमरास्की को मालूम पड़ा कि बहुत बोलने से माणिक जी थक गए हैं। इससे दूसरी बार मिलने का निश्चय कर, उनकी आज्ञा लेकर, सभ्यतानुसार हाथ मिला कर, वह वहाँ से चलती बनी। बहुत थक जाने के कारण, माणिक जी ने उस जापानी लेडी के चले जाने के बाद शान्ति से निद्रा लेने के लिये बिछौने की शरण ली।

पचीसवाँ प्रकरण

मोरगन—सम्वाददाता

ठीक सन्ध्या समय "कलकत्ता स्टेट्समैन" का सम्वाद-दाता माणिक जी से मिलने आया। इसके पहिले अनेक सम्वाददाता अपोलो सम्बन्धी खुलासा हाल जानने की इच्छा से धक्के खा चुके थे। माणिक जी उस हृदय भेदक घटना के स्मरणमात्र से बहुत व्याकुल हो जाता था, इससे बीमारी का बहाना करके बातें उड़ा देता था। पर 'स्टेट्समैन' से भारत-वर्ष का घनिष्ठ सवन्ध होने से लाचार होकर माणिक जी को उसके साथ बातचीत करनी पड़ी। दूसरे अपने सगे-सम्बन्धी और इष्टमित्रों का भी विचार उनके मनमें चक्कर काट रहा था—वे लोग भी पढ़कर समाचार पा लगे, इस कारण से भी उन्होंने सम्वाददाता के साथ बात करनी शुरू की। वह भी संक्षिप्त लिपि में सब वृत्तान्त लिखता गया।

"मैं हौंगकौंग के लिये अपोलो में सवार हुआ। मेरी पल्टन भी इसी में थी। जहाज में कितने देशी तथा अंग्रेज़ यात्री भी थे। माल असबाब भी भरपूर था। ज़हाज़ बराबर चला जाता था और किसी को स्वप्न में भी इस बात का ध्यान न था कि ईश्वर की ऐसी कोप दृष्टि होगी। स्याम की खाड़ी से होकर जहाज़ जब चीन के समुद्र में दाखिल हुआ तब तूफ़ान के रंग ढंग मालूम पड़ने लगे। कप्तान बहुत घब-राया। थोड़ी देर बाद उसने हम लोगों को चेतावनी दी कि बड़े ज़ोर शोर से तूफ़ान आने वाला है और इसी बीचमें एक भारी दरियाई तूफ़ान का हमलोगों को सामना करना पड़ेगा।

देखते देखते समुद्र ने भयंकर रूप धारण कर लिया। एक एक लहर ऐसी ज़बरदस्त आती कि जहाज़ उसके आगे खिलौना मालूम पड़ता। कभी वह ,जहाज़ को आसमान में पहुंचाती, तो कभी नीचे पानी में दबाती। मल्लाह लोग अपने जीवन को हथेली पर रखकर इधर उधर ख़ूब दौड़ धूप करते थे। उन्होंने तूफ़ान का सामना करने के लिये कोई भी बात उठा न रखी थी। पर जब पवन देव और समुद्र दोनों स्थान के बाहर हुए तब किसकी मजाल है जो सामने टिक सके ? हज़ारों गट्ठर और सैकड़ों सन्दूकें उठा उठा कर समुद्र की भेंट की गईं और लाखों का माल चुपचाप समुद्र को घूस के रूप में दिया गया; पर सब व्यर्थ। मालूम पड़ता था कि समुद्र ने जहाज़ ही पर अपनी दृष्टि लगाई है, वह और किसी से सन्तुष्ट नहीं होने का, वह उसी को हड़प करके शान्त होगा। कप्तान ने दुर्बीन लगा चारों तरफ़ देखा कि बचने का कहीं रास्ता नहीं है। दुर्घटना का चिह्न भी(डेंजर सिगनल)उसने चढ़ा दिया था। दुर्बीन से कप्तान को एक जर्मन और एक फ्रेंच जहाज़ सहायतार्थ आते हुए देख पड़े। "उन लोगों ने अपनी चाल खूब बढ़ा दी है, अब आही पहुंचते हैं" आदि कह कर कप्तान यात्रियों को धीरज दिलाता था। अपने कर्मचारियों को उसने कई आज्ञाएँ दीं। सबों ने तनमन से परिश्रम किया। पर ईश्वर की इच्छा के आगे किस की चल सकती है ? लहर का एक ही आघात जहाज़ को उलट देने में समर्थ था। पर दूसरी ओर से दूसरी लहर आकर उसको उभाड़ देती। लाइफ बोट छोड़ गये। यात्री उन्हीं पर परमेश्वर के नाम पर उतारे गए कप्तान, इञ्जिनियर और एक वृद्ध मल्लाह जहाज़ पर रहे। कोई लाइफ़ बोट इधर तो कोई उधर

आने लगे। हमलोगों के देखते देखते उस सुन्दर जहाज को समुद्र निगल गया। इसके बाद दो दिन तक हमलोग अन्न जल बिना भटकते रहे। हम लोग बीस आदमी थे। गोच्यू के टापू के पास फिर हमलोगों के दुर्भाग्य से पवन देवने दर्शन दिए। एक ही झकोरे में एक चट्टान से टकराकर डोंगी बोल गई और जीवनदाता ईश्वर ने मुझे बचाकर यहाँ ला फेंका। यही थोड़े में वृत्तान्त है। मिस्टर मोरगन! यदि मैं सब वृत्तान्त कहने लगूंगा तो थकावट तथा घटना के स्मरण से पुनः बीमार पड़ जाऊँगा, अतएव आप इस समय मुझे क्षमा कीजिए। दूसरी बार भेंट होनेपर मैं आपको सब ब्यौरेवार सुनाऊँगा।"

मोरगन—इन सब संकटों में भला आपको कोई याद भी आता था, उस समय आपका हृदय क्या कहता था?

प्रेम के आवेश में आकर माणिक जी ने, जाते हुए मोरगन को रोककर, अपने मन का हाल कहा। "बस इतनी ही कि यदि मरूँगा तो भी इज्ज़त-आबरू से शाहनशाह की सेवा में अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए। एक ईश्वर ही का सहारा था, और वही याद आता था। मैं तो यह सोचताथा कि यदि दीनानाथ को मेरी रक्षा करनी मंजूर होगी तो यह कोई बड़ी बात नहीं है; नहीं इस समय तो काल के गाल में पड़ा ही हूं। पर उस दीन-बन्धु ने केवल किसी व्यक्ति के भाग्य से मेरी ओर दृष्टि फेरी। हे सर्वान्तर्यामी! न जाने इस समय उसका क्या हाल होगा? वह किस प्रकार अपने दिन काटती होगी? जिस दया-सिन्धु ने उसके पुण्य से मेरी रक्षा की है वही परमेश्वर उसको धैर्य दे। क्या कहूं मिस्टर मोरगन, लाइफ़ बोट पर चढ़ते समय मैंने केवल एक ही तसवीर, एक ही प्यारी फोटो अपने जिगर के साथ रख ली थी। पर अफ़सोस, समुद्र की

लहरों ने उस फोटो का भी अस्तित्व न कायम रखा। यद्यपि समुद्र की लहरें मेरे ध्यान में से उस प्यारी सूरत को मिटाने में कभी भी समर्थ नहीं हो सकतीं; पर हाय ! अफसोस !! मेरी एक मात्र धीरज देने वाली वह फोटो, मेरा दिल जीत लेने वाली वह तसवीर !

मोरगन ने दया से आर्द्रचित्त होकर कहा। "मिस्टर माणिक जी, आपका चित्त अत्यन्त व्याकुल नजर आता है मैं आपकी और कोई सेवा तो क्या कर सकता हूं, पर हाँ, यदि आप अपने प्रेमपात्र का पता बतावें तो आप के जीवन तथा आरोग्यता के समाचार मैं आपकी माशूका के पास तार द्वारा पहुंचा दूं। कल जो जहाज़ रवाना होगा, वह हाँग काँग के बन्दर से होता हुआ जायगा। वहाँ से यदि तार दिया जायगा तो चार दिन में आपकी माशूका को मिल जायगा।* यदि आपको किसी प्रकार की अड़चन न हो तो आप मुझे उसका नाम और पता बताइए।"

माणिक जी ने गद्गद् स्वर से उत्तर दिया, "मिस्टर मोरगन, इसके लिये मैं आपका यावज्जीवन ऋणी रहूंगा। उसका नाम मिस जरबानो एदलजी सौदागर, केअर-आफ़, एदल जी सौदागर, लाहौर, इण्डिया है मिस्टर मोरगन, आपको भी किसी का इश्क लगा है कि नहीं ? आपने भी प्रेम-पाश में फंसकर ठोकरें खाई हैं कि नहीं ?"

मोरगन ने हंसते हंसते कहा, "मुझसे पूछते हैं ? लेफ्टनैन्ट माणिक जी ! भला कौन ऐसा यूरोपियन का बच्चा होगा

---

* जिस समय कथा लिखी गई थी, उस समय भारतवर्ष से जापान का तार का सम्बन्ध न था अब जापान के बराबर तार आते जाते हैं।

जो जवानी में लैला-मजनू होने से बचा? अब तो मक्खन और पाव रोटी के साथ इश्क करते हैं। कहा भी है किः—

"भूल गए राग रंग भूल गई छकड़ी;
तीन बात याद रही, नून तेल लकड़ी?"

इसके बाद, इधर उधर की थोड़ी बहुत सी बातें करके मोरगन चला गया। उसने ऐसी व्यवस्था की कि हैंग कौंग से 'स्टेट्समैन'के आफ़िस का तार दिया जाए और 'स्टेट्समैन वाला जर को तार दे। यही हुआ भी।

मिस कोमरास्की माणिक जी से मिल आने के बाद पगली सी हो गई थी। वह मन ही मन विचार करती कि, "अहा कैसा सुन्दर युवक है, कैसा विद्वान् है, वर्ताव भी कैसा अच्छा है? पारसी धर्मको छोड़ क्या यह बौद्ध मत स्वीकार करेगा?" यह प्रश्न बराबर चिन्ता के पवन के समान उसके मनमें उठता। उस बिचारी को यह ख़बर कहाँ कि उसने तो अपना दिल दूसरे के हाथ बेच दिया है।

माणिक जी के हृदय पर तो किसी दूसरी ही प्रेम-मूर्त्ति का साम्राज्य था उसका हृदय मन्दिर कोमरास्की से कहीं अधिक सुन्दर मूर्ति को स्थान दे चुका था। माणिक जी के नयनों में काजल या सुरमा आँजने तक की अब जगह नहीं बची थी। कोमरास्की की उन नयनों में कहां गुज़र? किसी कवि ने ठीक ही कहा हैः—

"जिन नैनन में पी बसे, दूजो कौन समाय;
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिर जाए।"

छब्बीसवां प्रकरण

मंगल तार

आजकल हमारे तीनों यात्रियों का काफला गुलमर्ग में पड़ा है। माणिकचन्द उर्फ इम्तिहानचन्द पहिले से अब बहुत अच्छी स्थिति में हैं। चेहरे पर नूर आगया है, गाल भी सहज फूल आये हैं, आँखें गढ़े के बाहर निकल आई हैं। भुजा और पिंडुलियों में भी थोड़ा बहुत माँस भर गया है, एकाध महीना यदि और काश्मीर के जल वायु का सेवन करें तो माणिकचंद दूसरे ही माणिकचन्द हो जाएँ। पर मालिक के हुक्म के आगे उसकी क्या चले ? निरुपाय, गए बिना उसकी छुट्टी न थी। अब वह दो ही चार घन्टे का गुलमुर्ग का मेहमान था। उसके लिये तो काश्मीर और जापान दोनों एक ही से थे। बल्कि जापान जाने का उसके मन में अधिक हर्ष था। यहां तक कि वह स्वप्न में भी बड़बड़ाता कि, एकबार जापान अवश्य देखना चाहिए।" उसका स्वप्न अब सच्चा होना चाहता है। दूसरे के सिर जापान जाने का प्रसंग अनायास ही आ पड़ा। परन्तु जर से होने वाली जुदाई उसका कलेजा चीरती। जर ने उस पर थोड़े उपकार नहीं किए थे। पहिले तो उसको नौकर रखने की सिफारिश करनेवाली—उसको रोटी देनेवाली—जर ही थी। फिर उसके आफिस के काम में उसको सहायता देनेवाली स्वर्ण मुद्राओं का पुरस्कार देनेवाली, घर जाने के लिये छुट्टी दिलाने वाली, बीमारी में पैसे रुपये तथा दावा दारू का ख्याल रखने वाली, दवा पिलाने वाली, पथ्य देने वाली, आबोहवा बदलने के लिये यहां लाने वाली, प्रत्येक विषय में उसकी अन्तः

करण से चिन्ता करने वाली, सच्चे मित्र का काम देने वाली, जर बिना दूसरा कौन था? पालतू जानवर भी मालिक से अलग होते समय शोक प्रदर्शित करता है। यह माणिक तो आखिर मनुष्य ही था, विद्वान था, सभ्य था, और बुद्धिमान था। इस समय जर के सब उपकार एकत्र होकर उसके मार्ग में आ खड़े थे। वह अपने कमरे में पड़ा पड़ा विचार करता था कि, " जर के उपकारों से मैं किस प्रकार उऋण हो सकता हूं?"

जर माणिक के साथ जो इतना उत्तम वर्ताव करती थी, उसका कारण तो पाठकोँ से कुछ छिपा ही नहीं है। जर माणिक से अपने प्रेम पात्र की प्रति मूर्ति की तरह बड़ी सावधानी से वतती थी। माणिक की दीनता, नम्रता और विद्वत्ता पर वह तरस खाती थी। दया और प्रेम, दोनों के मिश्रण से जर, माणिक के साथ ऐसी अच्छी रीति से बर्ताव करती कि दूर से देखने वाले अविवेकी पुरुषों को उसकी पवित्रता में कदाचित् शंका उत्पन्न हो सकती थी। पर इस का सच्चा रहस्य तो आप जानतेही हैं। जर अपने कमरेमें बैठी हुई नित्य के नियमानुसार डाक की राह देख रही थी। इतने में बाहर से माणिक ने पूछा, " क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ?"

जर ने अन्दर से उत्तर दिया, "बड़ी खुशी से," माणिक अन्दर आया और कुर्सी खींच कर जर के पास बैठ गया।

माणिक ने कहा—" जरथानो, यह मेरी आपसे आखिरी भेंट है। फिर कब होगीसो तो वही परमात्मा जाने। कल तक मुझे जुदाई का अनुभव नहीं होता था। पर आज उस के प्रभाव मेरे दिल पर छा गए हैं। मन मुर्झा रहा है। अनेक विचारों से दिमाग भी चक्कर खा रहा है। आपकी जैसी एक देवी के दर्शन से नित्य मेरे नेत्र निर्मल होते थे, सो वे अब

महीनों तक मलीन बने रहेंगे। यदि ये धुलेंगे तो अश्रुधारा ही से। अहाहा, इस नाचीज़ शरीर पर आप के जो लाखों उप-कार हैं, उनका थोड़ा भी बदला चुकाने के लिये यह शरीर समर्थ नहीं है।" माणिक ने ये शब्द बड़ी गम्भीरता से कहे थे इस समय उनके मुख मण्डल पर शोक के चिह्न प्रत्यक्ष नज़र आते थे।

जर ने बीच ही में उनको रोक कर कहा,"अब उन उपकारों और कृतज्ञता की बातों को ताक पर रख दीजिए, माणिकचन्द्र।

माणिकचन्द्र ने भरी हुई आवाज़ से कहा, " नहीं श्रीमती आज मुझे रोकिये मत। छःमहीने की बातें एक साथही कर लेने दीजिए। आप से रत्न इस संसार में भाग्य ही से प्राप्त होते हैं। धन्य हैं आपकी माता की कोख; जिनमेंसे आप ऐसी देवी का जन्म हुआ। मैं कौन ? मेरी क्या बिसारत ? मेरे जैसे तो आप के यहां झाड़ू देने वाले हैं।"

जर—अरे रे—आज यह कैसी बड़ बड़ाहट है ? क्या कुछ नशा छाना है ? माणिकचन्द्र, डु डे यू हैव गान मैड (आज आप पागल हो गये हैं क्या ?)

इन शब्दों को कहते कहते, माणिक का दिल भर आने से वह चौधारे आंसू रो पड़ा। "आइ हैव नाट गोन मैड, माई डीयर सिस्टर। बट आइ स्पीक ह्वाट इज ट्रुथ (नहीं प्यारी बहिन, मैं पागल नहीं हो गया हूं बल्कि मैं सत्य कह रहा हूं) आपके जैसी पवित्र भगिनी मुझे जन्म २ में प्राप्त हो। और मेरी मरण शय्या में मेरी माता का स्थान लेने वाली, और वात्सल्यमयी जगदंबे ! मुझे पुनर्जन्म देने वाली दयामयी दुर्गे। मेरी अन्नदात्री, अन्नपूर्णे, आपका कल्याण हो। आपकी मनोकामनाएं परिपूर्ण हों। आप एक के इक्कीस सौ हों।"

उसने गंभीर स्वर से कहा। "माणिकचन्द, आपका इस प्रकार जोश से बोलना मुझे भी रुला देगा, और इतने में कहीं मामा जी आ गये तो हमलोगों के चेहरे देखते ही, वहम खा, अपनी पवित्र प्रीति पर शंका करने लगेंगे। आपके जाने से मुझे कुछ कम शोच नहीं है। मैं आपको कितना और किस प्रकार चाहती हूं, यह तो मैं और मेरे खुदा ही जानते हैं। आप तो जापान में नई नई चीजें देखने में, माल टाल खरीदने में, घूमने फिरने में अपना समय बिता सकेंगे, पर मैं अकेली यहाँ क्या करूंगी? किस तरह रहूंगी? इसकी फिकर मुझे, जिस दिन बाबा जी का पत्र आया, उसी दिनसे पड़ी है। माणिकचन्द! मेरे और आपके बर्ताव से कोई कुछ भी सोचा करे, पर मैंने जिस अपनी पवित्रता और सत्यता से आपके साथ अपना निखालिस वर्ताव रखा है, उसके आप और मेरे खुदा दो ही साक्षी हैं। मुझे तीसरे गवाह की कोई आवश्यकता भी नहीं है। भाई माणिकचन्द। मैंने इतने दिनों में आज ही आपको भाई कह कर बुलाया है, इसके पहिले भी मैं आपको भाई की ही तरह समझती थी। मुझे आज आपसे एक भेद कहना है। उसको आप अपने दिल ही में दबाए रखिएगा। अब आप जापान तो जाते ही हैं और—और—

"क्यों, बाहिन जरवानी, आप बोलते २ रुक क्यों गईं? मैं आपका विश्वासपात्र माणिकचन्द हूं। आपका भाई हूं। आप के पिता का खरीदा हुआ दास हूं। पर आपका तो बिना कौड़ी का गुलाम हूं। मुझसे क्यों रुकती हैं? जापान से आप को जो कुछ मँगाना हो उसकी आप मुझे आज्ञा कीजिए। यद्यपि मेरी कोई गिनती नहीं है, तिसपर भी मैं अपनी शक्ति से बाहर की सेवा भी, जो कुछ होगी, करने से बाज न

आऊँगा। कहिए बहिन, कहिए मुझे क्या कहते कहते आप रुक गईं ? याद कर लीजिए और कहिए।"

जरने नीची नजर करके कहा, "माणिकचन्द। क्या मैं आप से कहूं ? मेरा यही पूछना है कि आप मेरे कथन को अपने दिल की पेटी में बन्द रख सकेंगे ?"

माणिकने आश्चर्य से पूछा, "बहिन कैसा प्रश्न ? बहिन आपका भाई अन्न खाता है, धूल नहीं फांकता, दूसरे आपका भाई दो अक्षर पढ़ा भी है, मूढ़ नहीं है। क्या भाई अपने बहिन की कही हुई बात को चौराई बाँटता फिरेगा ? बहिन, निश्चिन्त होकर कहो, विश्वास रख कर कहो--यदि आपकी बातें मैं किसीसे कहना चाहूं तो उसके पूवही मेरी जीभमें कीड़े पड़ें--"

जर बीच ही में बोल बैठी, "ईश्वर के लिये अब आप चुप रहिए। लो तब मैं कह ही डालती हूं, आप बड़े ध्यान से समझिए और एक एक शब्द याद रखिएगा। पर इसके पहिले आप मुझे यह बताइए कि आप जापान के लिये कब रवाना होंगे और वहाँ कब पहुंचेंगे ?"

माणिक कुछ सोच समझ कर बोला, "लगभग एक महीना ?"

जरने एक दीर्घ श्वास ले कर पूछा, "क्या आपको याद है ? जापान में एक आदमी लाईफ बोट के टूटे तख्ते के सहारे किनारे आ लगा था ?"

माणिक—जी, हाँ एक बार आपने मुझसे पढ़ाया भी था।

जरने भरे हुए गले से पूछा, "माणिकचन्द, वह कौन होगा ? बम्बई का निवासी वह कौन होगा ? बोलो, मेरे खुदाई फरिस्ते, जो कुछ तू कहेगा वही होगा। नहीं होगा तो भी वह वैसा ही हो जाएगा। तेरी दुआसे, तेरे अन्तःकरण की पवित्र

वाणी का एक शब्द भी मेरे लिये अमृत का प्याला हो जायगा। बोलो मेरे भाई बोलो, वह कौन होगा ?"

माणिक इसका कुछ प्रत्युत्तर दे, इसके पूर्व ही बाहर से डाकिए के आने की खबर आई और एक सिपाही तार लेकर आया। माणिक ने अपनी रजिस्टरी चिट्ठी का दस्तखत किया और जरने तार की रसीद पर हस्ताक्षर किया। जरने बड़ी आतुरता से तार को खोला और उसको पढ़ा। एक बार पढ़ा, दोबार पढ़ा नहीं उसको अनेक बार पढ़ा और हर्ष से गद्गद होकर कोच पर बैठ गई। आँखों में से प्रेमाश्रु बहने लगे। एक हाथ से आँसू पोछती और दूसरे हाथ से तार को बार बार बाँचती थी। यह वही तार था जिस को मोरगन ने स्टेट्समेन के आफिस द्वारा जर के पास भेजवाया था। उसमें यह समाचार लिखा था:—

"आपको, लेफ्टेनन्ट माणिक जी अरदेशर के समुद्र में से निकलने और उनकी जबान खुल जाने के कारण, मुबारकबादी देने के लिये, हमारा जापान का सम्वाददाता हमें लिखता है।"

सैकड़ों बार तार पढ़ने के बाद जर माणिक जी की तरफ घूमी। वह उनसे कुछ कहने जाती ही थी कि माणिक का मुख देखते ही वह चिहुंक उठी। इतनी ही देर में माणिक ऐसा पीला क्यों पड़ गया ? उसकी आँखों मेंसे अश्रुधारा बहते देख जरने व्याकुल होकर पूछा, "क्यों माणिकचन्द, चिट्ठी में क्या समाचार आए हैं ? आपकी आँखों में आसू क्यों आगए ? क्या भया भाई, खुदाके लिये जल्दी कहिए।"

माणिकने सिर ऊंचा करके जबाव देना तो चाहा, पर दुःख से गला भर जाने के कारण उससे कुछ बोला न गया। आँसू बहाता हुआ चुप चाप बैठ रहा।

सत्ताईसवाँ प्रकरण

मृत्यु-समाचार

ज्यों त्यों कर के उसने जर के प्रश्न का उत्तर दिया, "अरवानो ! बहुत बुरा हुआ-मेरी सुशीला पत्नी परलोक वासिनी हुई है।"

"हे ईश्वर यह क्या आफत !" रूमाल से आंख को पोछती हुई जर कोच पर बैठी। जर का आनन्द आधा हो गया। माणिकचन्द पर एकाएक यह आफत आ पड़ने से कमल की तरह खिला हुआ उसका सुकोमल हृदय मुर्झाने लगा। माणिक को वह कितना चाहती थी यह तो पाठकों से छिपा नहीं है। पाँच मिनट तक वह गुलजार कमरा एकदम शान्त हो गया। फिर ज़र ने अपने कलेजे पर पत्थर रखा, वह उठी और एक गिलास पानी ले माणिकचन्द के पास जा बोली, "भाई, ईश्वर की जो इच्छा थी सो तो हुई, पर अब इस प्रकार अफ़सोस करने से क्या फ़ायदा निकलेगा। धैर्य धारण करो, परमात्मा से धैर्य माँगो, वह अवश्य देगा। हाथ मुंह धोओ, दुनियाँ ऐसे ही दुःखों से भरी है।"

माणिक ने अपने आँसू पोछते हुए कहा, "जरवाजो ! क्या मेरे भाग्य में दुःख ही दुःख लिखा है ? क्या ईश्वरने मेरे भाग्य में सुख शब्द लिखा ही नहीं है ? हाय, बहिन, क्या, कहूँ ? वह कैसी सुशीला, सहनशीला, और सदाचारिणी थी ! मेरा रत्न खो गया। अरे मुसीबतों के पहाड़ भी उसके सिर टूटने पर भी उसने मेरे घर की एक बात बाहर नहीं जाने दी। उसने लाहौर आने के लिये मुझसे कितना आग्रह किया, पर मुझ

को कुछ भी नहीं सूझा। वह कहती थी कि अब मैं नहीं जीऊँगी-अब मैं आपका मुंह नहीं देखने पाऊँगी--अब तो मैं दूसरे जन्म में आपकी दासी होकर सेवा करूँगी। पर हाय—"

माणिक के आँसू अपने रूमाल से पोंछती हुई ज़र बोली, अब बस करो, भाई! ज्यों ज्यों आप उसके गुण याद करेंगे त्यों त्यों शोक बढ़ता जायगा। उठो, हाथ मुंह धोओ, जरा घूमो फिरो, और उस गत आत्मा के लिये अंधों, लूले लंगड़ों को कुछ दान करो, जिसमें उसको शान्ति मिले। उठो, अपने मन को अपने कब्जे में करो।"

माणिकचन्द्र ने उठ कर जर के हाथ से गिलास ले हाथ मुंह धोया, और गिलास एक तरफ रख, कमरे के बाहर आया, सब कपड़े उतार कर स्नान किया, फिर दूसरे कपड़े पहिन जर के कमरे में आया और एक कुर्सी पर बैठ कर खूब लम्बी लम्बी साँस लेने लगा। और अपनी पत्नी के मरण समाचार वाला पत्र बाँचने में लीन हो गया।

ज़र माणिक के हाथ से वह पत्र छीनते हुए बोली, "अब इस पत्र को एक तरफ रखो न, आपको कोई छोटा बाल बच्चा नहीं है, यह भी बड़े शुक्र की बात है नहीं तो और भी आफत होती।"

माणिक ने रूखी आवाज तथा दबी छाती से कहा, "जर-बानो, दुःख आता है तो चारों तरफ से एक साथ ही आता है इस समय मेरे दुःख का कारण केवल मृत्यु का ही समाचार नहीं है, परन्तु इसके अलावे एक दूसरी आपत्ति है जो सामने आँखें दिखा रही है।"

जर ने व्याकुल होकर पूछा, "और दूसरी कौनसी आपत्ति है?"

माणिक ने कहा, "मुझे पत्र दीजिए, मैं आपको पढ़ सुनाऊँ" उसने पत्र दिया और माणिक उसको पढ़ने लगा। पत्र के सिरे पर ही लिखा था कपड़े उतार कर पत्र पढ़ना।

"स्वस्ति श्री काश्मीर मध्ये भाई माणिकचन्द चिरंजीव योग्य लिखा, अमोटा से तुम्हारे पिता गोविन्दराम तथा मातु श्री प्रेमदेवी के प्रेमसहित आशीर्वाद स्वीकारना, तुमको मालूम हो कि तुम्हारी धर्मपत्नी रुक्मिणी चैत्र कृष्ण दशमी को देवलोक पधारी। यह बहुत बुरा हुआ, पर ईश्वर की इच्छा के आगे किसी की नहीं चलती, इसी से सन्तोष करना चाहिए। दूसरे यह पत्र पढ़ते ही यहाँ चले आना। कारण कि रुक्मिणी के तेरहीं को जात का न्योता जब यहाँ फेरा गया, तब गुलाब-चन्द के पुत्र त्रिभुवन ने तुम्हारे विषय में यहाँ ऐसी चर्चा फैलाई है कि तुम पारसी हो गए हो, तुम पारसी के कपड़े पहिनते हो और उन्हीं के साथ टेबुल पर बैठ कर खाते हो। यह उसने अपनी आँखों देखा है। अतएव बिरादरीवाले हम लोगों को जात बाहर करने को तैयार हुए हैं। अब मुझे नौकरी नहीं कराना है। मुझे जो बाजरे की रोटी जुड़ेगी वही खिलाऊँगा। तुम एकदम यह पत्र पढ़ते ही चले आओ।

मि० गोविन्दराम, अभयराम

के शुभाशीर्वाद"

पत्र सुनतेही जर का मुंह फीका पड़ गया। थोड़ी देर विचार कर के उसने माणिकचन्द से पूछा, "क्यों माणिकचन्द, फिर आपका जापान जाना कैसे होगा?"

माणिकचन्द ने विचार-सागर में गोते लगाते हुए कहा, "क्या कहूँ जरवानो, निरक्षरों के साथ पाला पड़ा है। मैं तो

अकेला जात बाहर रहने के लिये भी तैयार हूं। मुझे अब दूसरा विवाह करना नहीं है। दूसरे मेरे कोई बालबच्चा भी नहीं है कि जिसके विवाह आदि की चिन्ता हो। परन्तु अपने वृद्ध पिता के लिये मुझे जातिवालों के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा ही रहना पड़ेगा। मृतक की क्रिया कर मैं चुपचाप जापान चला जाऊंगा मेरे चले जाने के बाद कोई क्या कर सकता है! चिट्ठी पत्री के लिये मैं एक अलग प्रबन्ध कर दूंगा। अरे रे, मैं अपने पिता को कष्ट देने के ही लिये जन्मा हूं। बिचारे ने घरबार गिरो रख कर मुझे पढाया, ज़मीन रख कर मेरा विवाह किया और मेरी स्त्री के किया का भी ख़र्च उसी को करना पड़ा। दूसरे बिरादरी वाले सतुआ-नून लेकर अलग पीछे पड़े हैं। दो चार सौ की भेंट लिये बिना नहीं मानने के। हे जगन्नियन्ता, मेरी स्त्री के एवज में इस समय मेरी ही मृत्यु हुई होती तो कैसा अच्छा होता?"

अरने दया से माणिकचन्द की ओर देख कर कहा; "माणिकचन्द, सुख दुःख इन्सान ही पर पड़ता है। क्या आप यह समझते हैं कि आपका कोई मददगार है ही नहीं? जाइए, इस समय अपने कमरे में जाइए। अपने जाने का विचार कल पर रखिए। मैं आपको एक काम सौंपना चाहती हूं, यह काम आप जापान जाने के बाद करना और जापान जाने का अपना विचार पक्का रखना। मैं एक पत्र लिखती हूं, इतने में आप घूम फिर कर अपनी तबीयत बहलाइए। सदा दिन ऐसे ही नहीं रहेंगे।"

माणिक चन्द ने एक लम्बी सांस लेकर कहा, "हाँ, जरथानो, सदा दिन एक से नहीं रहने के। पर मरे हुए की याद सदा रहेगी। अरे रे, मेरी स्थिति देखिए और उसका प्रम

देखिए । उस बिचारी ने मुझ से बहुत विनती की थी कि लाहौर ले चलो। पर मुझ अभागे ने उसकी एक न सुनी । जर-बानो ! यदि आपने उसको देखा होता तो आप अवश्य उसको अपनी दासी की तरह रखे होतीं । उसने यदि आप को देखा होता तो वह अवश्य आप के पैर धो धो कर पीती। हाय शोक ! मेरे मन में यह अरमान रह ही गया । अरे मरते दम भी मैंने उसका मुख देखा होता तो मेरे मन में कुछ संतोष होता। जरबानो ! मैं बाहर घूम फिर कर अपना दिल कुछ बहलाता हूँ, जरूरत पड़े तब आप बुला लेना । " यह कह कर माणिक बाहर चला गया। वह अपने दिल को बहुत बहलाता था पर जात, पंच, निर्धनता, विपत्ति और कलह की भयंकर मूर्तियाँ प्रतिक्षण उसके सामने आकर खड़ी होतीं । और वे उसको बार बार भय और चिन्ता के महासागर में ढकेल देती थीं ।

माणिक के बाहर जाने पर जर ने उठ कर ट्रङ्क खोला। उसमें से विविध प्रकार के चिट्ठी लिखने के कागज़ और लि-फाफ़ों में से एक सर्वोत्तम जोड़ी निकाल उस पर इस प्रकार प्रेम पत्रिका लिखनी शुरू की ।

"गुलमर्ग" ता० १—

" जर की जान, जर के ईमान, जर के अरमान, जर के सुलतान !"

अन्त में उस दीनानाथ ने मुझ दुःखिया की सुधि ली हाँ। महीनों में जिस आशा रूपी समुद्र में मैं गोते खाती थी, उसमें से ईश्वर ने मेरी सहायता करके आखिर मुझे बाहर निकाला ही। प्यारे, आज आपके सही सलामत का तार स्टेट्समैन के आफ़िस से मिला । पर यह प्रत्यक्ष है कि वह आप ही के उद्योग का फल है। मेरी प्रार्थना में अवश्य कुछ जोर है यह मैं मानती हूँ ।

'गया है अर्शमें अल्लावे शोर वालों का;
खुदा भला करे फरियाद करने वालों का।'

आप की तरफ का तार साधारण न था। उसने मेरी ज़िन्दगी के तार के साथ मिल कर उसको और भी मजबूत कर दिया है। यह कौन तार था? मेरी प्रसन्नता के बन्द पड़े हुए सितार का तार था—उसने बन्द पड़े हुए साज़ पर एक मिजराव मारी कि स्वरों की झंकार मेरे कानों में गूंजने लगी। इस तार के पहिले मेरे दिल को उम्मेदों, नाउम्मेदों, चिन्ता और अफसोस ने अपना घर बना लिया था। पर आप के तार के आते ही इनके स्थान पर प्रसन्नता, मुबारकबादी और चैन की दुहाई फिर गई। आप को स्टीमर में बैठ कर जिन जिन सङ्कटों का सामना करना पड़ा होगा, वे सब मुझे स्टीमर नाम के स्मरण ही से भुगतने पड़ते थे। मेरी अपेक्षा तो पक्षी कहीं अधिक भाग्यवान हैं कि उनको ईश्वर ने पंख दिया है। यदि उस समय मेरे पंख होता तो मैं उड़ कर अपने प्यारे का दर्शन तो कर आती। मेरी छाती पर से आप के प्यार की लकीर कभी मिट नहीं सकती। आप की वह मन्द मुसकान और दोनों भ्रमरों का मिल जाना, यह तीर जिसने खाया होगा वही इसका मरम जानता होगा:—

'जब तक न जख्मकारी दिल पर लगे किसी के;
आगाह जाय कैसे क्यों कर हो दिल्लगी के?'

अपोलो बन्दर की भेंट के समय गोरे गोरे हाथों से दिया हुआ गुलदस्ता और जहाँगीर जी के पुत्री के लग्न के दिन की पहिली मुलाकात के समय आप ने जिन आँखों से मेरी तरफ देखा था, उनका मैं रोज स्वप्न देखा करती हूं। हे दीनबन्धु! शीघ्र तू इनकी मनमोहनी सूरत दिखा।

इस समय मैं काश्मीर ऐसे चमन में हूँ। मामा जी के साथ आयी हूँ। वे मुझे बराबर नए नए दृश्य दिखाते हैं, पर ईश्वर की साक्षी देकर मैं कहती हूँ कि मुझे ज़रा भी चैन नहीं पड़ती। आप रोज पत्र लिखिएगा और यथा साध्य शीघ्र आने का प्रबन्ध कर इस तरसते हुए चकोर को अपने चन्द्रमुखसे बहुत शीघ्र प्रसन्न कीजिए। मैं क्या लिखती हूँ, क्या लिखना चाहती हूँ और क्या लिखा जाता है इसका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है। खैर, ईश्वर जब मिलावेगा तब दिल के अरमान निकालूंगी। इस ज़रा से कागज़ में दिल के अरमान का समुद्र कैसे समा सकता है ?

लि० केवल आपकी—

"जर"

जर ने पत्र लिख एक रेशमी रूमाल में अपने पास रखा। उसके बाद उसने काश्मीर की कारीगरी का एक नाजुक बक्स निकाला। उसमें कितने ही काश्मीरी दृश्य की फोटो, अपनी दो तीन किस्म के फोटो, एक मखमल की सुन्दर छोटी डिब्बी में एक हीरे की अँगूठी और अतर की शीशियाँ रख उसको सावधानी से बन्द किया। इस समय वह फूले न समाती थी। मानो वह स्वयं जापान जा पहुँची हो इस प्रकार आनन्दित हो अपने कमरे में वह घूम रही थी। इतने में डाकृर वाछा, आज्ञा ले अन्दर आए और घूमने चलने के लिये उससे कपड़े पहिनने को कहा। जर ने सभ्यता से उत्तर दिया, "नहीं मामा जी, बिचारे माणिक चन्द की स्त्री मर गई है, और कल वह जानेवाला है इससे उसका दिल बहलाने के लिये आज मैं यहीं रहूँगी।"

डाकृर वाछा ने माणिक पर तरस खाते हुए कहा, "ओफ बिचारा बड़ा अभागा है। ज्यों-त्यों कर उसका चेहरा ठिकाने

आया कि फिक्र की मार से फिर वह ज्यों का त्यों हो जायगा। ख़ैर, तुम लोग कोई नहीं जाते तो, आज मैं जल्दी ही आऊंगा।" यह कह वाछा चले गए।

वाछा के चले जाने के बाद जर ने माणिक को अपने कमरे में बुलाया। स्वयं कोच पर बैठी और सामने की कुर्सी पर माणिक को बैठने को कहा। फिर जर ने माणिक से कहा, "माणिक चन्द! कल सवेरे तो आप जायेंगे ही। ईश्वर आप की सब बलायें शीघ्र टाले, ऐसी मैं अन्तःकरण से प्रार्थना करती हूँ और नित्य स्नानादि के बाद परमेश्वर से ऐसी दुआ करूंगी। आप पर यह जो दैवी कोप हुआ है इसमें मैं आप की पूरी मदद करना चाहती हूँ पर मेरे पास इतना धन नहीं है कि मैं अपने मनसे ऐसा कर सकूं। ईश्वर बराबर सबकी सहायता करता ही है। इस समय तो एक हजार रुपये की रक़म एक नाचीज़ बहिन की अदनी भेंट के तौर पर आप को देती हूँ। इसको आप स्वीकार करें।" यह कह कर उसने एक लिफ़ाफे में रखे हुए एक हजार के नोट माणिक चन्द के हाथ में दिए। माणिकचन्द सभ्यतानुसार सहज आनाकानी करने जाता था, पर जर ने सौगन्ध दिला उसको रोक दिया। एक हज़ार की रक़म माणिक जैसे के लिये कैसी सिद्धि हुई होगी, इसका तो पाठक स्वयं ध्यान कर सकते हैं।

माणिक के टूटे हुए पैरों में दम आ गया। उसने खड़े हो दोनों हाथ जोड़ कर जर का उपकार स्वीकार करते हुए कृतज्ञता से कहा, "बहिन, मेरे लिये तो आप एक अवतार ही हुई हैं। यह तो पिछले जन्म का कुछ लहना जैसा मालूम होता है। इस समय मैं कैसी आपत्ति में पड़ा था और आपने किस प्रकार मुझे बाँह पकड़ कर उसके बाहर निकाला है, इसके

वर्णन करने की शक्ति मेरी जीभ में नहीं है। आप यदि मेरी चमड़ी जूते भी सिवलाकर पहिनें तो भी मैं आप के उपकार के हज़ारवें भाग से भी उऋण नहीं हो सकता। अब तो जैसे बने वैसे दुःख या सुख से अपनी ही सेवा में मुझे रखने का प्रबन्ध करती रहिएगा, तभी तो कदाचित् मैं जीता रह सकता हूं। दूसरे के यहां अब मुझ से नौकरी नहीं हो सकती आपने सदा से मेरी नौकरी कायम रखने के लिये पूर्ण उद्योग किया है। अब तो आप को मुझे अपने ही यहाँ रखना पड़ेगा। मैं आप का खरीदा हुआ भाई हूं। मेरे प्रत्येक संकट में आपही मेरी सहायक हुई हैं। एक हज़ार रुपये की रक़म मैंने आँखों से भी नहीं देखी थी—"

जर ने उसको बैठने का इशारा करके बात काट कर कहा, "मिस्टर माणिक चन्द, उपकार और कृतज्ञता की बात कह कह कर आप मुझे उदास बनाना चाहते हैं। आप इन सब बातों को एक तरफ़ रखिए और मेरे एक काम के लिये तैयार होइये। लीजिए यह बक्स, यह कह कर जर ने वह पहिले से ठीक किया हुआ बक्स माणिक के हाथों में दिया और कहा, "देखना खबरदार, इसके अन्दर एकाध चीज़ बहुत ही कीमती है और उससे सौ गुने कीमती इसमें मेरे कागज़ पत्र हैं। इसको अपने प्राणों की तरह रखना, यदि ज़रा भी लापरवाह होंगे तो मेरी जान जोखिम में पड़ेगी। आप ज्योंही जापान पहुंचें कि ब्रिटिश लिगेशन में जाना। वहां माणिक जी अरदेशर लेफ़्टिनेन्ट का नाम पूछ उन्हों के हाथों में यह बक्स देना। सावधान रहना, यह किसी दूसरे के हाथ न पड़े। इसके अन्दर बड़ी आवश्यक वस्तु है। वह आदमी बीमार है--आप से जितनी बने उतनी उनकी सेवा-सुश्रूषा करना। जब

यह बम्बई आना चाहें तो पहिले आप जाकर उस जहाज को देख आना कि वह नया है न। नए ही जहाज़ पर उनको भेजना। उनको जिस किसी चीज़ की आवश्यकता हो आप उसका प्रबन्ध कर दीजिएगा। जो कुछ रुपया पैसा लगे उसकी फिक्र मत करना। मेरे स्थान पर जैसे आप ही जाते हैं। उनको किसी बात की तकलीफ़ न हो। आप शायद इस पर आश्चर्यित होते होंगे कि यह कौन व्यक्ति होगा, जिसके लिये मैं आप से अनुरोध करती हूं। लीजिए अब मैं आप को सब बता ही देती हूं। वह मेरा पसन्द किया हुआ भावी पति है।"

जर कुछ शरमाई, फिर वह कहने लगी, "वे हाल ही में पास हुए हैं। अपनी नौकरी पर वे हैंगकौंग जाने के लिये अपोलो पर सवार हुए थे। मार्ग में दुर्घटना हुई। जहाज़ डूब गया। लाइफ़बोट के एक टूटे हुए तख्ते का उन्होंने सहारा लिया। परवरदिगार ने उनको जापान के किनारे लगा दिया। हम लोगों में शीघ्र ही लग्न होने की बात हो रही थी। हम लोगों के आपस की बात—प्रेम की बात—अपने माता पिता से कहने के पूर्व ही उनको सरकार का आज्ञापत्र मिला और वे जल्दी में जहाज पर रवाने हो गए। वे खोद खोद कर मेरे सम्बन्ध में पूछ ताछ करेंगे। पर ख़बरदार, मैंने जो आप के साथ बर्ताव किया है, उसकी आप बिलकुल चर्चा मत कीजिएगा। आप भूलकर भी मेरी तारीफ़ के पुल उनके आगे मत बांधिएगा। आप सिर्फ इतना ही कहना कि मैं बाबा जी के आफ़िस का एक आदमी हूं। मामा जी के साथ जब जर काश्मीर गई तब मामा जी ने अपने हिसाब किताब और प्राइवेट काम काज के लिये मुझ को मांग लिया था। अपनी बीमारी की तथा वहाँ के पारसी लिबास के फ़ोटो आदि की बात आप बिल-

कुल उड़ा जाइएगा ।”

अब माणिक को मालूम हुआ कि क्यों जर अपोलो के लिये इतनी चिन्ता करती थी । बारंबार क्यों दुःखी होती थी । रात दिन क्यों अखबारों को उलटती पलटती थी । अरदेशर के खानदान-सम्बन्धी प्रश्न क्यों खोद खोद कर पूछती थी । माणिक सुशिक्षित था, उसको विशेष समझाने की कोई आवश्यकता न थी । क्या कहना और क्या नहीं कहना यह भली प्रकार समझता था । दूसरे दिन प्रातःकाल माणिक लाहौर के लिये रवाना हुआ । रास्ते भर उसको जर, जात और जापान के विचारों ने चक्कर में ही डाल रखा । “जातवालों को किस प्रकार समझाना ? झूठ बोलना कि नहीं ? वे प्रायश्चित करने को कहें तो करना कि नहीं ? दण्ड मांगें तो देना कि नहीं ? जात वालों से जापान जाने की आज्ञा माँगनी कि चुपचाप चले जाना ? आदि विचारों में ही उसका रास्ता कट गया । और वह लाहौर पहुंच गया । वहाँ वह एदल जी से मिला । जर और वाछा के समाचर उनसे कहे । जापान सम्बन्धी भी कितनी पूछ ताछ कर ली । अनुरोधपत्र, हुंडियां और चेक जो जो एदल जी ने दिये सब उसने बड़ी सावधानी से रखे और उनकी कही हुई सब बातों को भी टांक लिया । मुसाफिरी का सामान आवश्यकता से अधिक उसको दूकान से मिला । भाड़े के रुपये, रास्ते के खर्च आदि के अतिरिक्त सौ रुपये उसको तनख्वाह पेटे में मिले । इन सब खटपटों से निवृत्त होकर माणिक ने अपने मालिक को अपनी स्त्री के मरने का हाल कहा । और कहा कि उसके क्रिया कर्म के लिए आठ दिन घर पर बिता कर फिर जापान जाऊंगा । मालिकने खुशी से छुट्टी दे दी । माणिक वहां से अमोटा को रवाना हुआ ।

गुलमर्ग में जर का हृदय अब अकेले घबड़ाने लगा। डाक्टर वाछा जड़ी बूटियों की खोज में, पानी की बोतलें भरने में पत्थरों की फोटो लेने में, उनके आकारों की याददाश्त लिखने तथा भिन्न भिन्न प्रकार के पक्षियों को एकत्र करने में ही लीन हो गए थे। जर जापान का वृत्तान्त बाँचती, जहाज़ों की गति और वेग को जानने तथा अकास्मिक घटनाओं के समय के बचने के लिए उपाय आदि का अवलोकन कर समय बिताती थी। अब उसका हृदय लाहौर होकर बम्बई जाने के लिए उत्सुक हो रहा था। पर माणिक के जाने के कारण उसको ऐसा करने से बदनामी का भय लगता था। गुलमर्ग में अब उसको बिलकुल अच्छा नहीं लगता था। अब अच्छा क्यों लगेगा? प्रेमी भी न था और प्रेमी की प्रतिमूर्ति भी न थी। दिन भर जर नज़ीर कवि का यह शेर कहती:—

"छूट जाय ग़म के हाथों से, जो निकले दम कहीं,
ख़ाक ऐसी ज़िन्दगी पर, तुम कहीं और हम कहीं।"

अट्ठाईसवां प्रकरण

जात बाहर

अमोटा उतर कर माणिक तुलाराम के घर की तरफ बढ़ा। घर के पास आते ही उसने बाहर तुलाराम को आवाज दी। ब्रह्मदेव घर के बाहर आये। माणिकचन्द को मैं असबाब के अपने दरवाजे पर खड़ा देख, उन्होंने बड़े आश्चर्य से दोहे का एक चरण कहा:—

"माणिक क्या मग भूलके आए मेरे द्वार ?"

माणिकचन्द ने हाथ जोड़कर नमस्कार करके कहा, "तुला राम जी मैं दो दिन आपके घर रहना चाहता हूं, क्योंकि बिरादरी वाले मुझसे बिगड़े हैं, और मुझे अपने माता पिता के घर रहना उचित न जंचा, इससे स्टेशन से मैं सीधा आपके घर आया हूँ । क्या मुझे दो तीन दिन के लिए आप के यहाँ आश्रय मिल सकेगा ?"

तुलाराम ने माणिक की प्रार्थना स्वीकार करते हुए दक्षिणा का विषय छेड़ा, "यजमान उतरे गोर के घर, लाभ का क्या पूछना ।"

फिर अन्दर जाकर उन्होंने माणिक के लिए एक कमरा खोल दिया । सब असबाब उचित स्थान पर रख उसने दो पैसे देकर एक आदमी को अपने पिता के घर उनको बुलाने भेजा। आधे घन्टे में गोविन्दराम आ पहुंचे । और बाप बेटे में इस प्रकार वार्तालाप होने लगा,—

गोविन्द ने उसके कन्धे पर हाथ रख दुःख से काँपते स्वर से पूछा, "बेटा, यह तू ने क्या किया ? अरे मूर्ख, क्या तुझे ऐसे ही कर्म करने को पढ़ाया लिखाया है ? हाय, हाय तूने मेरे कुल का नाम डुबोया, मेरा मुँह काला किया, जात बिरादरी वालों के सामने सिर नीचा हो गया। अरे राम! राम!!"

माणिक ने पिता को हाथ जोड़ कर कहा, "बाबा, मैंने आप का नाम डुबाने लायक कोई भी काम नहीं किया है । जो लोग अपने शत्रु हैं वे भले मनमानी कहें । खैर इस समय मैं आप से एक बात कहता हूं, सो सुनिए । इस समय तो मुझे जात बाहर ही रहने दीजिए, और आप मुझे छोड़ कर बिरादरी के साथ रहिए । इस समय मुझे सौ रुपये महीने की

नौकरी मिली है।"

गोविन्द ने आश्चर्य से पूछा, "क्या कहा बेटा? बीस रुपये से एक दम सौ रुपये हो गए।"

माणिक ने धीरे से कहा, "हाँ, पिता जी, पर मुझे जापान जाना पड़ेगा। मैंने यह कबूल कर लिया है और भाड़े खर्च की रक़म भी ले आया हूं। यहाँ केवल आप के दर्शन ही करने को आया हूँ।"

गोविन्द ने मुँह बना कर पूछा, "पर इससे तो बिरादरी वालों के सामने दो दो बातों के लिए दोषित ठहरना पड़ेगा।"

माणिक ने पिता को समझाया कि, "इसी से न मैं आप से कहता हूँ कि आप मुझे अभी जाति के बाहर ही रहने दीजिए। दो दो बार दण्ड न देकर वहाँ से आने पर एक साथ ही सब प्रायश्चित्त कर डालेंगे। लीजिए यह पाँच सौ रुपये।" माणिक ने तुलाराम की अनुपस्थिति में झटपट पाँच सौ के नोट पिता के गाँठ में बाँध दिए। "अब मैं महीने दिन पचहत्तर रुपये का मनीआर्डर आपके पास भेज दिया करूँगा। आप कोई जगह ठीक कर दीजिए, जिस में यह बात किसी को मालूम न हो।"

गोविन्द ने कहा, "पर जातवालों को मुझे क्या जवाब देना होगा?"

माणिक ने धीमे स्वर से अपने बाप को उपाय सुझाया, "कल सब को एकत्र कीजिए। अपना घर छोड़कर यहाँ उतरने का मेरा यही कारण है। जब सब जुटेंगे तब मैं एक ऐसी बात निकालूँगा कि वह जल्दी किसी के ध्यान में आवेगी ही नहीं और यदि आई तो झगड़ा भी मिट जायगा। ये लोग यदि मुझे जात में मिला लें तो आप चुप रहिएगा, और यदि जात

बाहर करें तो आप यही कहिएगा, कि जबसे जात ने इसको दोषी ठहराया है तब से मैंने इस को अपना पुत्र ही नहीं माना है। यहाँ तक कि मैंने इस को घरमें उतरने भी नहीं दिया है। जब तक जात इस को पवित्र नहीं करेगी तब तक मैं इस को अपने घर का पानी भी नहीं पीने दूँगा, और तब तक न यह मेरा बेटा और न मैं इसका बाप।"

गोविन्द राम के मन में यह बात बैठ गई। उसने आनन्दित होकर कहा, "ठीक है, सन्ध्या को तेरी माँ को यहाँ भेजूंगा। इस समय तो मैं जाता हूं।"

थोड़ी बहुत बातचीत करके गोविन्दराम घर चला गया। संध्या समय प्रेम देवी अपनी पुत्री के साथ माणिक से मिलने आई। अपने पुत्रको पवित्र बनाकर एकाध घन्टा बैठ कर चलती बनी। माणिक ने माता को पन्द्रह और बहिन को दस रुपये देकर खुश कर दिया। रात्रि में तुलाराम ने दुनियाँ भर की पञ्चायत से माणिक को वाकिफ़ कर दिया। तुलाराम ने अपनी खाई हुई लकड़ी का घाव भी माणिक को दिखा दिया। माणिक ने उनका उपकार माना और उनसे कितनी सलाह पूछी-जिनके उत्तर तुलाराम ने गद्य और पद्य में दिए। उनका अन्तिम उपदेश यह था:—

"जड़ दे लम्बे हाथों से दो चार को लट्ठ तू।"

माणिक ने कहा, "ऐसा नहीं हो सकता, ब्रह्मदेव! चाहे जैसी है आखिर को अपनी जात ही है। इस प्रकार झगड़ा बढ़ाने से यदि थोड़े ही में निपटता हो तो अच्छा। अगर गुड़ देने से मरे तो जहर देने की क्या जरूरत?"

"सलाह संपसे तेरा दिमाग भरा है,
सत्य है, सत्य है, सत्य है, सत्य है।"

माणिक की पीठ ठोंक भूदेव ने कहा—

"सब को एकट्ठा कर नम पड़,
यदि न मानें तो लड्डू से सब का मुंह बन्द कर
समझ मोदक नाम, कोई मुख से नहीं बोले,
लड्डू की दे मार बदन कोई नहीं खोले।"

इस प्रकार बहुत देर तक गपशप करके दोनों सोने गये। माणिकचन्द को रातभर निद्रा देवी ने दर्शन न दिए। इसके दो कारण थे--एक तो उसके मन में जात का भय था कि न जाने ऊंट किस करवट बैठेगा? और दूसरे उसके पास रुपये की एक अच्छी रकम थी और तिसपर तुलाराम ऐसे ब्रह्मज्ञानी का पड़ोस था। निद्रा आवे तो आवे कहाँ से? प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त हो उसने बिरादरी में हज्जाम फेर दिया। कितने पहिली बार की मारपीट का स्मरण कर दुम दबा कर घर ही में बैठ रहे और कितने लाज और शर्म से न बोलने का निश्चय कर इधर उधर आकर बैठे। इतने पर भी दो, सवा दो सौ आदमी पञ्चायत में इकट्ठे हुए। माणिक ने, किसी के कुछ कहने सुनने के पूर्व ही स्वयं कहना शुरू किया:—

"जाति बन्धुओं, मैं अपनी आरोग्यता के लिये काश्मीर गया था। वहाँ मेरे पिता का मुझे एक पत्र मिला कि मेरी धर्म-पत्नी देवलोक सिधारी है और जातवालोंने गत आत्मा की क्रिया में सम्मिलित होना मञ्जूर नहीं किया है। हमलोगों ने कौन सा ऐसा अपराध किया है कि आप बन्धुओं ने अपनाना अस्वीकार किया है?"

थोड़ी देर तो सब चुपचाप एक दूसरे का मुंह ताकते रहे। अन्त में हमारे एक वीर जिसका नाम बहादुर चन्द था, साहस करके बोला, "आप अकेले ही काश्मीर नहीं गए थे,

ज़ात के भी कितने लोग वहाँ थे, उन लोगों ने आपको पारसी और पारसिन के साथ में उन्हीं के ऐसे कपड़े पहिन कर खाते देखा है। अतएव आपके घर का खाकर जातवाले अपने को भ्रष्ट करना नहीं चाहते।"

माणिक ने जेब में से एक नोटबुक निकाल उसपर बहादुर चन्द का नाम लिखते हुए पूछा, "आपके कथनानुसार वहाँ जात के कितने लोग गए थे, कहिए बहादुर चन्द काका ? उनमें से कितनों ने मुझे पारसी के साथ,खाते पीते देखा था ? इस दोषारोपण को साबित करने के लिये कौन छाती ठोंक कर तैयार होता है ?"

फिर चारो तरफ़ सन्नाटा छा गया।

माणिक—जात गंगा से मैं प्रार्थना करता हूँ, कि किसके कहने से यह अपराध मेरे सिर लगाया गया है ? उसका नाम बतावे और मेरे सामने इस बात को साबित करे। फिर मुझे जो कुछ दण्ड देना हो सो दे।

एक युवक—माणिकचन्द ठीक कहते हैं। अपराध को साबित करके जातको आगे की कारवाई करनी उचित हैं। यह तो ऐसी ही बात हुई कि कौवा कान ले गया और उसके पीछे दौड़े, अपने कान को भूल कर भी नहीं देखा। इस प्रकार किसी को कलंक लगाना सर्वथा अनुचित है।

बहादुरचन्द—मैंने इन्हीं आँखों से देखा है।

माणिक ने बयान करते हुए कहा, "काका साहेब, यदि अकेले आप के कहने से जात ने मुझे यह अपराध लगाया है तो कल मैं भी कह सकता हूं कि मैंने भी आपको चमार के साथ बैठ कर खाते देखा है। कहिए, इसका आप क्या उत्तर देते हैं ? आपके कहने से तो यह सिद्ध हो ही चुका है कि आप

अकेले नहीं थे बल्कि पर आपके साथ कितने दूसरे जाति-बन्धु काश्मीर में थे। तो फिर आपने एक दो को अपना गवाह तो बनाया होता। ख़ैर, उसको जाने दीजिए। आप यही बताइए कि जात के कौन कौन लोग वहाँ थे ? उनका नाम और ठिकाना तो बताइए ?"

अब तो बहादुरचन्द चक्कर में आ गया। इतने में भीड़ में से एक ने मुँह बनाकर कहा, "अरे भाई ये तो वकील बारिस्टर हैं। दूसरे कोने से एक ने कहा, "बीस रुपये मासिक में इन्होंने एक रसोइया और एक नौकर कैसे रखा होगा ?" फिर एक फुलझड़ी छूटी कि, "अरे, ये तो सुशिक्षित हैं इनको तो बात ही छोड़ो।" इतने में आबनूस को मात करने वाले रंग का एक उजड्ड बोल पड़ा, "भाइयो, इसमें कुछ कहने की बात नहीं है। सब बिरादरी वाले जानते हैं। मैं अपने साथ खेले कूदे हुए भाई के विषय में यदि कुछ कहूं, तो उनकी इज़्ज़त पर आ बने। इससे चुप ही रहना अच्छा है।"

माणिक ने मनमें भय खाते हुए पर मुख-मुद्रा बड़ी गंभीर बनाकर कहा, "नहीं, नहीं, राघव भाई, आपको मेरी सौगंद है। यदि आपने मुझे देखा हो तो आप बिना संकोच कहिए।"

यह राघव भाई विरोत्तमदास तीसरे चौथे दर्जे तक पढ़े थे। थाने के पास अर्जियाँ लिख, लड़ाई झगड़े की दलाली से तथा चूने मिट्टी ढोने के ठेके से अपना गुजर करते थे। समस्त बिरादरी को अपने कब्ज़े में कर लेने ही के फ़िराक़ में सदा रहते थे। ये सदा लोगों के सात सात पीढ़ियों के छिद्र बुढ़ियों से सुन सुनकर याद रखते और समय पर उसके उपयोग से अपना बड़प्पन स्थापित करते। माणिक पढ़ा लिखा था, इससे ये उससे सदा जलते थे। इसी कारण इन्होंने जातवालों को

देवाराम (दीवानचन्द) वाली घटना स्मरण करायी । फिर क्या पूछना था ? माणिक चटपट अपराधी सिद्ध हो गया । मनमें तो उसके भय था ही, इससे वह अधिक गड़बड़ न कर सका । मनमें तो वह समझ ही चुका था किः—

"ये अबके तो टलती नहीं बात है,
मसल है जमायत करामात है ।"

मामला शीघ्र तय करने के विचार से माणिक ने खड़े हो कर कहा, "भाइयों, बिरादरी से कोई बढ़ कर नहीं है । पञ्च यहाँ परमेश्वर हैं । इससे मैं भी यही कहता हूं 'कहे पञ्च बिल्ली तो बिल्ली सही' । मैं आपका लाख बार अपराधी हूं, और आप मेरे तारन हैं जो आप मुझे भ्रष्ट और अपवित्र मानते हैं तो आपही मुझे पावन कीजिए । आप जो कुछ दण्ड देंगे सो मैं शिरोधार्य करूँगा ।"

थोड़ी देर काना फूसी होनेके बाद एकने हुक्का गुड़गुड़ाते कहा, "भाई माणिक लाल, आप विद्वान हैं, 'पंडित भूले और तारा डूबे'-खैर आगे अब ऐसा मत करना । इस बार बिरादरी आप पर रहम करती है । जाओ, अधसेरिया घी का चुरमा लड्डू करके जात को खिला दो । फिर उसी प्रकार अपनी स्त्री की जात भी खिला देना ।"

माणिकचन्द ने सोच विचार कर उत्तर दिया, "ऐसा तो मैं नहीं करूँगा । मृतक के तेरहीं को जात को खिला दूंगा । पर दण्ड का चुरमा लड्डू तो नहीं खिलाने का । बिरादरी भरको खिलाने से तो दो, ढाई सौ पर पानी फिरेगा पर मैं ढाई सौके बदले पाँच सौ देने को तैयार हूं, यदि सब भाई मिलकर चन्दा करें और एक उद्योग शाला इस गाँव में स्थापित करें । इसके अलावे भी मैं एक वर्ष तक दस रूपये प्रतिमास देता रहूंगा ।"

मोतीचूर घेवर दूध पाक और चुरमा के खाने वाले, मग़ज़ के हीन, आलसी और उद्योगहीनों को उद्योगशाला, शिक्षा की उन्नति और जात की बढ़ती भला क्यों अच्छी लगने की? चारों तरफसे माणिक के सिरपर बातों की बौछार बरसने लगी।

"भाई आप तो आपगये चार हाथ पगहा भी लेते चले!"

"ठीक ही तो है, हमतो डूबेंगे, पर यार को ले डूबेंगे।"

"भाई,रंडी के पस मुंडी गई, उसने कहा,बहिन मेरे जैसी-होना।"

"यार,जात इनको दंड दे तो ये फिर जातको क्यों न दंड दें।

इस प्रकार के वचन सुन माणिक हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ और "जैसी आप सभों की इच्छा" कह कर चलता बना। जात वाले सब जाने लगे। पर गोविन्दने सब को रोक कर पूछाः—

"कहिए, भाइयो, मुझे अब क्या करना चाहिए? मैंने तो, जब से उस पर आँच आई है, तबसे उसको अपने घर में भी घुसने नहीं दिया है। और जब तक जात इसको पावन नहीं करेगी तब तक मैं इसका बाप नहीं और यह मेरा बेटा नहीं। यदि मैं बहू की तेरहीं करूं तो आप सब इसको छोड़ कर भोजन करेंगे कि नहीं?

बिरादरी वालोंने मुंह के आगे आए हुए लड्डू को छटकते हुए देख, झटपट इस बिनती को स्वीकार कर लिया। इस समय तो एम० ए० बहादुर इम्तिहानचन्द जात बाहर रहे और रुक्मिणी की क्रिया सुधर गई।

माणिक पञ्चायत में से उठ कर तुलाराम के यहाँ गया। उसने उनको सब आद्योपान्त कह सुनाया। तुलारामने भी

लापरवाही से उपदेश दिया कि:—

"झख मारेंगे सब यार, तुम चले जाओ,
पारस हैं पारसिन मज़ा करो और खाओ ।"

भांग के तरंग में तुलाराम बकने लगे।

"भय न खाओ दिल में, माणिक ! भय न खाओ दिल में ।"
"पूछे तो दो लात, माणिक, भय न खाओ दिल साथ ।"

अपनी पवित्रता और जर की विशुद्धता पर शंका करने वाले पटवारी पर माणिक मनमें तो जल गया। पर कर ही क्या सकता है ?

बस, दूसरे दिन प्रातः काल प्रस्थान करने के विचार से उसने एक काश्मीरी कारीगरी का चाँदी का प्याला और पाँच रुपये नकद तुलाराम को दक्षिणा के तौर पर दिए। ब्रह्मदेव ने कविता में आशीर्वाद दिया :—

"पी भंग इसमें नित्य जऊंगा, शंभवम्, जय शंकरम्,
दीर्घायु हो मित्र माणिक, आयु, कीर्तियशो लभम् ।"

रात्रि में ग्यारह बजे जब सब गांव वाले खुर्राटे मार रहे थे उस समय गोविन्द अपनी पत्नी तथा पुत्री के साथ निगाह बचाता हुआ माणिक के पास आया। तुलाराम नशे की धुन में बेहोश पड़ा था। माणिक ने अपने चले आने के बाद भए हुए निश्चय को सुन कर बकस खोला और उसमें से क्रिया करने को दो सौ के नोट पिता के हाथ में रखे और थोड़े से लिफाफों पर अपना पता लिख गोविन्द को दे दिया। दूसरी भी बहुत सी सलाह करके लाहौर के सेठ पदलजी का ठिकाना उसको बता दिया, और कहा कि वहाँ से प्रति मास पचहत्तर रुपये ले आइएगा। कमासुत पुत्र को माता पिताने प्यार किया

और बहिन ने उसकी न्यौछावर की । इस के बाद रुक्मिणी की कुछ चर्चा कर के सबोंने आँसू बहाए। फिर सब चले गए। प्रातःकाल माणिक दूसरे दर्जे की ट्रेन में सवार होकर चलता बना ।

जात वालोंने रुक्मिणी की तेरही खा कर गोविन्द को जातमें ले लिया । और उन्होंने आपस में यह निश्चय किया कि माणिक को तभी जात में लेंगे जब वह बरफी और चुरमें के लड्डू खिलाएगा । देखें अब माणिक कब जीता-जागता आता है और कब इनके बरफी और चुरमें के लड्डू उड़ते हैं ।

उनतीसवाँ प्रकरण

निशाना खाली गया

माणिक जी अरदेशर का शरीर अब क़रीब २ अच्छा हो गया था। वह अब मजे में घूम फिर सकता था। डाक्टर ने अभी उसको बम्बई जाने के लिये समर्थ नहीं समझा था, इससे वह अब तक जापान ही में पड़ा था। कोमरास्की दूसरी बार उससे मिलने को आई। शिष्टाचार युक्त साहब-सलामत के बाद वह उचित स्थान पर बैठ गई। तुरंत ही जेब में से उसने रुमाल निकाल वहाँ की हवा को सुगन्धित कर दिया, फिर अंगूठी [illegible] अन्त में अधीर होकर वह बोल [illegible] उठी:-

"[illegible], कहिए अब आप के शरीर की स्थिति कैसी है ?"

माणिक—"आप की मेहरबानी से अब तो बहुत अच्छी है। घूमता हूं, फिरता हूं, और आशा है कि शीघ्र ही डाक्टर जाने की आज्ञा भी देंगे।"

कोमरास्की—"डाक्टर कहाँ जाने की आज्ञा देगा ?"।

माणिक जी ने हर्ष से कहा, "हिन्दुस्तान जाने को। इस हफ्ते में एक अंग्रेज़ी जहाज यहां से होता जायगा। ईश्वर ने चाहा तो उसी में चला जाऊंगा।"

हाथ से चिड़िया उड़ती हुई देख उसने चिन्तित होकर पूछा, "तब तो आप के सगे-सम्बन्धियों को भी आपकी आरोग्यता के समाचार पहुंच चुके होंगे ?"

प्रसन्न वदन माणिक जी ने कहा, "जी हाँ, सबको समाचार मिल गया है। यह पत्र भी अभी वहीं से आया है।" कोमरास्की के चेहरे की रंगत उड़ती हुई देख वह चुप हो रहा।

पत्र के साथ माणिक जी को विशेष प्रेम से खेलते देख, चिन्तित होती हुई कोमरास्की ने;पूछा, "क्या यह पूछ सकती हूं कि यह पत्र किसका है, माणिक जी ?"

माणिक जी ने पत्र को पढ़ते हुए लज्जा मिश्रित हर्ष से कहा, "जी हां, खुशी से। यह पत्र मेरे एक दिली दोस्त का है।"

कोमरास्की—"आप इसको बार बार पढ़ते हैं, इससे मालूम होता है कि यह पत्र बहुत रसीला है।"

माणिक जी ने एक दीर्घ सांस लेकर कहा, "रसीला ! केवल रसीला ही नहीं लेडी ! अरे रससे लबालब यह पत्र है। दिल के जख्मों का यह मरहम और मृतः प्राय का अमृत बिन्दु है। दो आत्माओं को जोड़ने वाला तार-यह पत्र ही है। हाय, अभी बीच में समुद्र पड़ा ही है।"

कोमरास्की विचार सागर में डूब गई। वह मन ही मन विचार करने लगी "क्या इसका विवाह हो गया है?" उसने बहुत चाहा कि वह इस प्रश्न को न पूछे, पर उसका दिल कब मानता था। उसने अपने मन में तो उससे विवाह भी कर डाला था। माणिक जी को बौद्धमतानुयायी बना, जापान से उसके साथ भाग निकलने के हवाई महल वह बना चुकी थी। बीच में इस पहाड़ को देख वह रुक न सकी, आखिर पूछ ही तो बैठी—

"लेफ्टेनन्ट माणिक जी, क्या यह पत्र बहुत प्राइवेट (गुप्त) है? यह पत्र शायद किसी बहुत प्रिय मनुष्य का मालूम पड़ता है, क्यों?"

माणिक जी पत्र को आँखों में लगा कहने लगे, "जी हां, अत्यन्त प्रिय मनुष्य का यह पत्र है। इसका एक एक शब्द एक एक मोती की कीमत का है, और एक एक अक्षर की कीमत एक एक हीरे के बराबर है। इसके अन्दर प्रेम के जवाहिर चमक रहे हैं। इसकी एक एक पंक्ति एक एक सिकड़ का काम करती है जो पढ़ने वाले के दिल को एकदम जकड़ देती है। इसका एक एक पन्ना तो ऐसे जंगल के समान है जिसमें भूले हुए दिल को बाहर निकलने का रास्ता ही नहीं मिलता। जादू के कलम से यह लिखा गया है, पढ़ते ही दिल दीवाना हो जाता है और सात समुद्र पार कर के भेजने वाले से जा मिलने के लिये तैयार हो जाता है।"

कोमरास्की ने बे मन से हँसते हुए कहा, "ओ होहो, लेफ्टेनन्ट, मेरे जान में आप ने तो लैला मजनूं का दास्तान ही खोल दिया है। मेरे अनुमान से यह पत्र तो आप की पत्नी का होना चाहिए।"

माणिक जी ने हंसते हुए पूछा, "आप ने कैसे जाना कि मैं विवाह कर चुका हूं ?" इसका वह विदुषी क्या उत्तर देती है, यह सुनने के लिये वह उत्सुक हो बैठा।

"आप के अन्तःकरण के उद्गारों से मैं कल्पना कर सकती हूं।"

माणिक जी ने पत्र तकिए के नीचे रखते हुए कहा, "तब आप के विचारों में कुछ फ़रक़ है। यह मेरी स्त्री का पत्र नहीं है। मेरी समझ में अभी आप ने केवल पढ़ा ही है; संसार का कुछ अनुभव प्राप्त नहीं किया है। मिस कोमरास्की, क्या आप को इश्क़-प्रेम का मतलब मालूम है ? अहा ! देखिए, शेक्सपियर का कहना है कि प्रेम पागलपन है। अतएव पागल आशिकों को एक अँधेरी कोठरी में बन्द करके चाबुक से ठीक करना चाहिये। पर मैं पूछता हूं कि अब तक किसी ने इस अनुपान का प्रयोग किया है ? कितने दिवाने आशिकों को कितने चाबुकों से सुधारा है ? सुधारे कहां से ? हकीम खुद अगर इस रोग के शिकार बने पड़े हों तो—हा प्रेम !"

बिचारी कोमरास्की तो प्रेम अथवा इश्क़ का यही अर्थ समझती थी कि विवाह कर के पति के साथ प्रेम निबाहना और संसार की गाड़ी चलाना। उस भोली-भाली नवयुवती को इस बात की जरा भी खबर न थी कि विवाह के पूर्व पवित्र प्रेम से भावी पति की जाँच कर लेना और उसे प्रेम की कसौटी पर कस लेना चाहिये। आशिक-माशूक की अनेक कथाएं उसने पढ़ी थीं पर किसी आशिक को उसने देखा न था। प्रतीक्षा करने में जो आनन्द होता है, इसकी उसको क़दर का कुछ ध्यान भी न था। विरह की विपत्तियाँ भोगने की अपेक्षा पति को अपने वश में कर लेने ही में वह विशेष आनन्द सम-

झती थी। सत्य सनेह की स्थिति देखने का आज ही उस को पहिला अवसर मिला था। उसको प्रथम बार ही आज प्रेम की पैनी तलवार का परिचय हुआ। वह तो घबरा गई, माणिक जी के उद्गारों से वह भौचक्की सी रह गई। वह कुछ बोल न सकी, विदुषी होने के कारण समझ तो गई होगी कि उसकी धारणा से विपरीत पक्ष का ही नाम प्रेम है।

माणिक जी ने फिर अपने मन के भाव प्रकट किए, " मिस कोमरास्की, आप नहीं जानतीं कि दिल की चोट कैसी और कितनी सख्त होती है, यह तो माथे पड़ती है तभी जानी जाती है। मैं अक्षरशः सत्य कहता हूं। " जाके पैर न फटी बेवाई, सो क्या जानै पीर पराई ?"

निराशा-पूर्ण बनावटी हँसी हँसते हुए कोमरास्की ने कहा, " तब मैं विचार करती हूं, लेफटेनन्ट माणिक जी ! कि प्रेम-रस में आप मुझ से कहीं अधिक पगे हुए हैं। यह पत्र आप की माशूका का मालूम पड़ता है। और आप उसके साथ विवाह करने की आशा में स्वयमेव आप को उसका कैदी समझ जीवन बिताते हैं। क्यों यही बात है न ?"

माणिकजी—हाँ, यही बात है। मेरे दिल को कैदी कर के मनमाना नाच नचाने के लिए इस पत्र की लेखिका ही अधिकारिणी है।

कोमरास्की—तो क्या आप का हृदय किसी ने माँग लिया है ?

माणिक—जी नहीं, बल्कि छीन लिया है, देखिए कहा भी है:—

कौन कहता है दिल दिया हमने ?
छीन कर के लिया दिल दिया किसने ?'

कोमरास्की—तब मेरे और आप के विचारों में अन्तर है। मैं तो यही समझती हूं कि बिना कारण मनुष्य प्रेम नहीं करता। प्रकृति ने स्त्री-पुरुष को इस हेतु से उत्पन्न किया है कि वे मिलकर सन्तान उत्पन्न करें, उनका पोषण करें उनको पढ़ावें-लिखावें, व्यापार आदि सिखावें, कलाकौशल में कुशल करें, और अपने स्थान पर उनको छोड़कर आप मृत्युके शरण हों। इतने के लिए स्त्री-पुरुष को लग्न की गाँठ में बँधने की आवश्यकता है। आशिक-माशूक के झगड़े तो पागलपन के नमूने हैं। मेरा विचार भी लग्न करने का है। यदि कोई हिन्दुस्तानी मेरे योग्य मिले तो मैं आज ही उसके साथ विवाह कर लूँ। हिन्दुस्तान ही में रहना, महात्मा बुद्ध की पवित्र जन्मभूमि में जीवन व्यतीत करना, उन्हीं के नाम का जप करना, वहां की मिट्टी माथे चढ़ाना आदि मेरे विचार सुनकर बहुत लोग हंसते हैं, मुझे पागल समझते हैं, और मेरी हंसी उड़ाते हैं, पर मैं किसी की बात पर ध्यान नहीं देती।

माणिकचन्द—ओ हो!—तब यों क्यों नहीं कहतीं कि आप भी प्रेम के फंदे में फँसी हुई हैं। ईश्वर आपकी मनोकामना पूर्ण करे।

कोमरास्की— पाँच वर्षों से मैं इसी धुन में हूं। पर अभी तक मेरी आशा मन की मन ही में रही।

इसके बाद जब कोमरास्की ने देखा कि यहाँ उसकी दाल गलती नहीं, तब उसने इधर उधर की बातें छेड़ीं। फिर आज्ञा लेकर अपने घर चली गई। विचारी मन ही मन विवाहिता हुई और मन ही मन विधवा। जिसको उसने बुद्ध मतावलम्बी बना अपना पति बनाना चाहा था वह तो दूसरी का आशिक निकला। इससे फिर धैर्य धर किसी दूसरे शिकार

को राह देखनी पड़ी । बिचारी करे क्या ? इश्क बड़ी बुरी बला है ।

मानिक जी तो कोमरास्की के जाने बाद बड़े विचार में पड़ गए कि यह क्या बक गई ? जापानी स्त्री और हिन्दुस्तानी पुरुष के साथ विवाह की अभिलाषा । प्रथम तो उन्होंने विचार किया कि, यदि यह दूसरी बार आए तो इसको इसके ऐसे मूर्खता-पूर्ण विचार के लिए कुछ कहूँ । पर फिर यह बात स्मृति से उतर गई । इसके बाद दूसरे दिन डाक जाने का दिन था, इससे वह अपनी प्रिया को पत्र लिखने बैठा । अच्छे होने के बाद वह जर को यह दूसरा पत्र लिख रहा था । अभी इस को रवाना होने में एक-दो हफ्ते की देर थी । इसके लिए तो एक पल एक कल्प के समान बीतती थी । अतएव, " वस्ल नहीं हसरत ही सही " के ख्याल से वह पत्र ही लिख कर मन को सन्तोष देता था ।

थोड़े दिनों में नोटिस निकली कि, " आटो नाम के व्यापारी का दिवाला निकला है और उसकी दूकान का सब सामान फलाँ दिन नीलाम होगा ।" इस पर एक अखबार वाले ने यह प्रकाशित कर दिया था कि इस नीलाम के अवसर पर देश देश के व्यापारियों के अढ़तिए यहाँ आएँगे । शहर में यह भी अफवाह गरम थी कि " पंजाब, मद्रास, बंगाल आदि भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों से भी लोग आने वाले हैं । " इस समाचार से कोमरास्की का मन और भी उद्विग्न हो गया । उसने ज्योतिष देख कर यह निश्चय किया था कि तीन चार नवागन्तुकों में से कोई न कोई उसकी आशा को अवश्य सफल करेगा ।

आखिर वह दिन भी आही पहुंचा । हिन्दुस्तान से आए

हुए तीन व्यक्ति जापान में उतरे। जापानी पुतली कोमरास्की ने उनका पता लगाया और हाथ में दीपक ले पति की खोज में निकली। मार्ग में एक उन्मी के ऐसी उसकी एक सहेली मिली। उसने काले पति को खोजने वाली पीली स्त्री को एक दो ताने मारे। जिसके उत्तर में कोमरास्की ने यह कहा कि जहाँ प्रेम है वहाँ काले गोरे का प्रश्न नहीं रहता। देखो—

'दिल देखिए और जुल्फे सुबहदा को* देखिए
गुल देखिए और बुलबुल शैदा को देखिए
मजनू को और [illegible] लैला को देखिए
राधा को और कृष्ण कन्हैया को देखिए।'

मज़ाक करने वाली सहेली इसका कुछ भी उत्तर न दे सकी। चुपचाप मुँह को खाकर वह अपने रास्ते चली गई।

सहेली का मुँह बन्द हो जाने से कोमरास्की का उत्साह दूना हो गया। उसी उत्साह के बल से अपनी इच्छा पूर्ण करने को ठान वह अपने निश्चित मार्ग पर आगे बढ़ी।

तीसवाँ प्रकरण

दुलहे की खोज़

हिन्दुस्तान से जापान आये हुए व्यक्तियों में हमारे एम० ए० बहादुर भी थे। दूसरा व्यक्ति एक मद्रासी हिन्दू था, जो परिश्रम किए बिना ही मुक्ति प्राप्त करने की लालसा से ईसाई हो गया था। वह मद्रास के एक व्यापारी की तरफ़ से आया

---

* काली।

समझा दस-पांच को भी उन्होंने ईसाई नहीं बनाया होगा।"

कोमरास्की—आपके धर्म के क्या सिद्धान्त हैं? यदि आपको कोई अड़चन न हो तो मुझे समझाइए।

कासिमभाई—"हमारे यहाँ दो मत है; एक सुन्नी और दूसरा सिया। हाल में प्रकृति के उपासक भी अनेक हुए हैं। पर विशेषतर इतनी बातें तो सब ही मानते हैं:—परमेश्वर एक और अद्वितीय है, दूसरे हज़रत महम्मद आलेसलाम उनके रसूल हैं, तीसरे कयामत पर विश्वास रखना, चौथे स्वर्ग और नरक को मानना और पाँचवें कुरान मजीद को ईश्वर वाक्य मानना और तदनुसार चलना।"

कोमरास्की ने चतुराई से अपने मतलब के जाल में कासिम भाई को फंसाने के हेतु से पूछा, "आप बौद्ध धर्म के विषय में कुछ भी नहीं जानते?"

कासिम भाई—हाँ, इतना तो सुना है कि बुद्ध कोई बड़ा भारी आदमी हो गया है। और उसका मत तो आप के देश में बहुत प्रचलित है।

कोमरास्की—इस मत की बातें जानने लायक हैं। मैं नहीं समझती कि, ऐसा सरल, निष्पक्षपात और सच्चा दूसरा भी कोई धर्म होगा। हर एक आदमी और प्रत्येक जाति के लोग इस मत को आसानी से स्वीकार कर सकते हैं। यूरोपियनों ने एक स्वर से बौद्ध धर्म की प्रशंसा की है और विज्ञानवादी तो आम तौर से इसके चेले हो गए हैं।"

कासिम भाई ने उत्कण्ठा से पूछा, "इस मत के सामान्य सिद्धान्त क्या हैं? यदि कष्ट न हो तो कृपा कर के समझाइए।"

कोमरास्की—कल मैं आपके पास एक ग्रन्थ भेजूंगी उसको आप अवश्य पढ़ियेगा। अमेरिका के एक सुप्रसिद्ध विद्वान ने

इस ग्रन्थ को लिखा है। इनका नाम पालकेरा है। उस ग्रन्थ का साधारण ज्ञान मैं आपको दिला देती हूँ। बुद्ध ईश्वर तथा तत्सम्बन्धी बातों को नहीं मानते। स्वर्ग नरक और कयामत आदि को भी नहीं मानते। समान भाव और भ्रातृ भाव को वे धर्म का मूल समझते हैं। कर्म के फल केवल कर्म कर्त्ता ही को नहीं, वरन् उसके सम्बन्धियों को और उसके इष्ट मित्र को तथा उसके समस्त देश को अवश्य चखने पड़ेंगे। बुद्धदेव, चमत्कार को जिसको आप लोगों में मोजजा कहते हैं, नहीं मानते। प्राणी मात्र पर दया, न्याय तथा भ्रातृभाव के वे स्वयं बड़े पक्षपाती थे। समस्त संसार को वे सर्वथा दुःखरूप मानते थे और जाति भेद को वे अन्तःकरण से धिक्कारते और उसको तिरस्कार करते थे।

कासिम भाई ने म्यान के बाहर होकर कहा, "तौबा, तौबा, लाहौलबिला, तो आप यों क्यों नहीं कहतीं कि वह काफिर था। ईश्वर के अस्तित्व पर शङ्का? दोज़ख़ बिहिश्त का इन्कार? कयामत की मुन्किर? धिक्कार है! धिक्कार है! हमारी इस्लामियों की बस्ती में यदि ऐसा आदमी आवे तो उसको तीरंदाजी से खुदा का कायल बनाया जाय।"

कोमरास्की ने हवा बदली हुई देख, बात उड़ा कर कहा, "हो सकता है। अब चलने की आज्ञा लूंगी। फिर मिलूंगी।"

निराश होकर जापानी स्त्री दूसरे होटल की तरफ गई। इसने तो आज यह निश्चय कर लिया था कि:—

'या तो सर देते हैं या लेते हैं दिलबर अपना;
आज झगड़ा ही चुका लेते हैं चल कर अपना।'

इस बार वह मद्रासी से मिली। अपनी रीति के अनुसार उसने यहाँ भी धर्म का झगड़ा उठाया। मद्रासी भाई ने सब

धर्मों से श्रेष्ट क्रिश्चियन धर्म को बताया। हिन्दू, मुसलमान, पारसी तथा यहूदी, बल्कि संसार भरके सब धर्मों को उसने इस वास्ते नीचे बताया कि उनके भगवान का कोई पुत्र ही नहीं है। और ईसा तो परमेश्वर के पेट का पुत्र है। और उसकी सम्प्रदाय को मानने वाले बिना परिश्रम किए ही मुक्ति पा जाते हैं। ऐसे ऐसे दुराग्रह से खिसिया कर कोमरास्की ने उस मद्रासी से एक प्रश्न किया।"

कोमरास्की ने नम्रता से कहा, "बुरा मत मानिएगा, महाशय! आप का ईसा भगवान का सपूत पुत्र है कि कपूत?"

मद्रासी ने मान पूर्वक उत्तर दिया, "सपूत।"

"यदि वह सपूत है तो अपने पिता की सृष्टि में उसने किन किन चीजों की वृद्धि की है? और यदि कपूत है तो किन किन वस्तुओं को उसने लुप्त कर दिया है?"

मद्रासी इस विचित्र प्रश्न का कुछ भी उत्तर न दे सका। कोमरास्की ने उसको दुराग्रही और मूर्ख समझ कर धर्म चर्चा की समाप्ति की।

कोमरास्की—क्या आप के साथ और भी कोई सज्जन आए हैं?

मद्रासी—हाँ, एक पञ्जाब के पारसी व्यापारी का एजन्ट तो आया है। वह सामने की उस होटल में उतरा है। पर शायद ही आप से भेंट हो क्योंकि वह यहाँ एक बीमार पड़े हुए पारसी को देखने के लिये बहुत आतुर था। कहता भी था कि सबके पहिले मैं यह काम कर के अन्न जल करूंगा।

अधीर कोमरास्की उसी होटल में गई। माणिक चन्द से भेंट न होने पर वह अस्पताल की तरफ फिरी। वहाँ जा उसने कार्ड भेजा। माणिक चन्द जी ने लाचार होकर उसको आने

की परवानगी दी। वह साहब सलामत कर के बैठ गई। माणिक चन्द् को देखते ही उसके मन में एक अद्वितीय भाव उत्पन्न हुआ। यह भाव क्या था, सो तो वह स्वयं समझ न सकी। माणिक जी ने कोमरास्की के साथ माणिक चन्द् का परिचय कराया। एक शूरवीर जाति के सभ्य, साक्षर और रूपवान व्यक्ति के साथ परिचित होने के लिये माणिक चन्द् ने बड़ी नम्रता से उपकार माना। कोमरास्की ने भी वैसा ही भाव प्रकट किया। काश्मीर की सैर और समुद्र यात्रा से माणिक चन्द् का शरीर बहुत सुधर गया था। इस योग्य पति को किसी भी प्रकार से प्राप्त करना, ऐसा दृढ़ सङ्कल्प कर होटल में मिलने का समय पूछ वह अधीर और बावरी हो कर उठी। मार्ग में चलते समय यह दो पंक्तियाँ उसके मुख से बराबर निकलती हुई सुनी जाती थीं।

> इश्क़ कहते आए हैं शायद इसी खजर का नाम;
> आज पहिली बार है दिल जिससे घायल हो गया।'

इकतीसवाँ प्रकरण

प्यारी का पैग़ाम

माणिक जी—क्या आप भी उन लोगों के साथ काश्मीर गए थे ?"

माणिकचन्द्—"जी हाँ। डाक्टर वाछा ने सेठ पदल जी से थोड़े दिनों के लिये मुझे मांग लिया था। पदलजी ने भी मुझे उनके साथ जाने की आज्ञा दी थी।"

"वहाँ की आबोहवा कैसी है ? जर राजी खुशी तो है ?"

"काश्मीर की आबोहवा का क्या पूछना है ? भूमि पर यदि स्वर्ग है तो वह केवल काश्मीर ही है। लाहौर की गरम लू से झुलसी हुई जरबानू वहाँ की ठंडी हवा से गुलाब की तरह खिल गई। शरीर को अलबत्तः बहुत लाभ हुआ है, पर हृदय कमल सदा मुर्झाया ही रहता है। निरन्तर उदास रहती, और पागल की तरह सदा अखबारों ही की बाट देखा करना यही उनका मुख्य काम था। मैं सदा उनकी इस स्थिति पर आश्चर्यित होता था। पर जब मुझे सच्चा भेद मालूम हुआ तभी मैं उनकी उदासी और चिन्ता का कारण समझ सका।"

ईश्वर सब अच्छा ही करेगा। पत्र तो मैंने पढ़ ही लिया है और फिर भी पढ़ूगा। उसमें आपके मदद की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। पर ये सब दृश्य मुझे समझाइए कि काश्मीर के किन किन स्थानों के हैं ?"

माणिकचन्द ने उन सब दृश्यों को बड़े विस्तार से वर्णन किया। उनकी वर्णन शैली ऐसी रसीली थी कि माणिक जी ने एक एक बात को दो दो चार चार बार पूछा। काश्मीर का वृतान्त सुनकर वे इतना अधिक आनन्दित हुए मानों वे वहाँ जर के पास ही बैठे हैं। उनको यहाँ तक भ्रम हो गया।

"वैल, माणिकचन्द ! आप एक अच्छे व्याख्यानदाता मालूम होते हैं। आपकी बातों से मुझे बहुत कुछ सन्तोष हुआ। आप सच सच कहिए, मेरे विषय में जरबानो ने आपसे क्या क्या कहा है ?"

"केवल इतना ही कि, आप दोनों का विवाह होने वाला था कि इसी बीच में आपकी हाँग काँग में बदली हो गई।"

"आप शिक्षित पुरुष हैं। क्या आप बतला सकते हैं कि

डाकृर वाछा तथा सेठ पद्लजी को हमारी मोहब्बत की कुछ भी सुनगुनी लगी है ?"

"मैं इस बात को ज़ोरों से कह सकता हूं कि इसकी उनको कुछ भी ख़बर नहीं है जरवानो एक चतुर, बुद्धिमान और शिक्षिता बाला है। उसने अपने प्रेम को इस तरह दबा रखा है कि देवों को भी उसके मन की बात का पता नहीं लग सकता। उनकी अपोलो जहाज़-सम्बन्धी पूछताछ से मुझे तो कुछ शंका होती थी, पर सीधे सीधे सेठ पद्लजी और अपनी रसायन विद्या के फेर में लगे हुए डाकृर वाछा को इसका ज़रा भी ख्याल नहीं है। मुझसे भी जरवानो ने चलने के दिन ही इस बात को कहा है, वह भी सौ सौ बार गुप्त रखने की प्रतिज्ञा करा कर।"

"काश्मीर में वे लोग कब तक रहेंगे ?"

"कदाचित् एक महीना। जब से जरवानो को आपका समाचार मिला है तबसे उनका चित्त वहाँ से उचट गया है। मैं वहाँ वहाँ था तभी उन्होंने डाकृर वाछा से अनेक बार लाहौर लैाट चलने की प्रार्थना की थी। परन्तु वे बनस्पतियों की खोज में ऐसे लगे हुए हैं कि मालूम पड़ता है, अभी थोड़े दिन और वहाँ रहेंगे।"

फिर थोड़ी बहुत इधर उधर की बातें करके दूसरे दिन मिलने की ठहराकर माणिकचन्द अपने होटल की तरफ़ चला। कोमरास्का की विद्वत्ता-सम्बन्धी बातें तो थोड़ी बहुत उसने माणिक जी के मुँह से सुनी ही थीं। ऐसी एक विदुषी के मिलाप से कुछ लाभ अवश्य होगा इसी उधेड़ बुन में वह होटल में पहुंच गया।

बत्तीसवाँ प्रकरण

विवाह हो गया होगा तो ?

माणिकचन्द को होटल में पहुंचे आधा घण्टा भी नहीं हुआ होगा कि एक लड़के ने आकर सलाम कर एक कार्ड दिया "आने दो" कहकर माणिकचन्द द्वार तक गया। एक नाज़ुक पुतली द्वार पर का परदा हटा रंगमंच पर अपना पार्ट खेलने की इच्छा से आकर खड़ी हो गई। साहब सलामत बाद दोनों आमने सामने कुर्सी पर बैठ गए।

"यदि मेरे आने से आपको किसी प्रकार की तकलीफ हुई हो तो कहिए।" 'मनमें भावे और मुड़ी हिलावे' के अनुसार ही यह कह कर, कोमरास्की ने कहा हीरे का हार जाने गड़ता हो इस प्रकार मुँह बना उसने माणिकचन्द का ध्यान उस ओर खींचा।

"इस समय मुझे कुछ भी काम नहीं है। इस समय तो मैं बिल्कुल निठल्लू सा हूं।

"आप अपने लिये तथा और किसी के लिये निठल्लू से होंगे। पर मुझे तो आप बड़े काम के नज़र आते हैं। आर्यावर्त देखने की मेरे मनमें बड़ी उत्कंठा है। उसमें आपके ऐसे विद्वान् पथप्रदर्शक की तो मुझे अत्यन्त आवश्यकता है। आपका दौलत खाना भारतवर्ष में कहाँ और किस स्थान पर है ?

"पंजाब के अन्तर्गत होशियारपुर ज़िले के अलोटा नामक गाँव में मेरा गरीब खाना है। मैं जाति का राजपूत हूं। इस जाति ने तलवार के ज़ोर से अपने को अद्वितीय वीर सिद्ध कर दिया है। मेरे दुर्बल शरीर को देख कर कदाचित् आप

हँसेंगी कि हमारी जाति ने किस प्रकार तलवार चलाई होगी पर नहीं-आप मुझे राजपूतों के पैर की धूल भी मत समझियेगा; क्योंकि कलम की तलवार चलाने में मैं सूख गया हूं।"

"क्या इस समय भारतवर्ष में कोई ऐसी जाति नहीं है जो शस्त्र कला में प्रशंस्य हो ?"

"वाह खूब कही। भारतवर्ष की भूमि अब कुछ वन्ध्या थोड़े हो गई है। अब भी मराठा, गुरखे और सिक्ख इस योग्य हैं कि बड़ी बड़ी वीर जातियों से शस्त्र रखवा लें पर सिक्ख लोग देश भक्त न होकर अन्न भक्त अधिक हैं। पल्टन में भरती होकर वे तावेदारी ही में रह जाते हैं। इस जाति वालों में मूर्खता का अंश विशेष है। कारण इसका यह है कि ये अत्यधिक लम्बे होते हैं। इस विषय में विद्वानों का भी कहना है कि, "कुल्लुन तविलुन अहमकुन" "सिर बड़ा सरदार का और पाँव बड़ा गंवार का," "टालेस्ट दी फूलेस्ट"। इसी प्रकार गोरखे भी अशिक्षित, गँवार और जड़ बुद्धि के होते हैं। अर्थात् जहाँ विद्या का ही अभाव है वहाँ देश भक्ति या देशोन्नति के विचार उत्पन्न ही कहाँ से हों ? ये सब हबशी गुलामों की तरह सरकार के ज़र खरीद दास हैं। एक मात्र मराठे ही दोनों बातों में अच्छे हैं। जैसे वे विद्या में पढ़े चढ़े हैं वैसे ही शस्त्र-विद्या में भी निपुण हैं। देशोन्नति की अभिलाषा, देश की मान-मर्यादा तथा गौरव रखने की उत्कंठा इन में वर्तमान है। साहस, वीरता और दृढ़ता तथा देश की लाज केवल इसी जाति ने बचा रखी है। पर खेद इस बात का है कि सरकार ने इनके अस्त्र-शस्त्र छीन कर इनको जनखे बना दिया है। तोप और बन्दूकों ने जबर्दस्ती की लड़ाई की समाप्ति की है। पर बाहुबल से, छाती से छाती भिड़ा कर

रण संग्राम में आमने-सामने ताल ठोंक कर लड़ने की कला की अवनति हुई है। तिस पर भी जहाँ जहाँ ऐयाशी गोरों की पलटनों ने नाम डुबाया है, वहीं वहीं हमारी देशी पल-टनों ने विजय का डंका वजा, आर्यों का मस्तक ऊंचा कर दिया है। जन संख्या में हमारी जाति दिनों दिन घटती जाती है। अस्त्र शस्त्र के अभाव से साहस तथा वीरता का भी लोप होता जाता है। काश्मीरी और बंगाली लोग इस समय प्रशंसा के पात्र हो रहे हैं। पर केवल ज़बान और क़लम की तलवार चलाने में। इन लोगों की मानसिक शक्ति अच्छी है। स्वदेशा-भिमान में इस सभय बंगाली अद्वितीय कहे जाते हैं। एक पारसी जाति भी हमारे देश में उल्लेखनीय है। व्यापार में तथा राजरजवाड़ों में आगे बढ़ने में यह जाति बहुतही चतुर है।"

"आपकी शारीरिक स्थिति की अपेक्षा आपका मस्तिष्क बहुत बढ़ा-चढ़ा मालूम होता है। आप की वर्णन शैली इतनी उत्तम है कि मेरा मन आप की बातें सुना ही करने की इच्छा करता है।"

"यह तो केवल आप का अनुग्रह और आप की अनुकम्पा है; मैं तो एक अयोग्य मनुष्य हूं।"

"मिस्टर माणिक चन्द्र! क्या आप के देश की शिक्षा इतनी कमजोर है कि देशाभिमान का लोप हो जाता है? आप सुशिक्षित हैं, आप की वर्णन शैली तथा निर्णय शक्ति इतनी उदार है कि उसकी मैं जितनी प्रशंसा करूं, वह थोड़ी है; पर आप की शारीरिक सम्पति देख मैं समझती हूं कि आप पढ़ने लिखने से ऊब गए हैं। आप के देश में शिक्षा किस प्रकार दी जाती है?"

"श्रीमती, मेरे देश की शिक्षा सम्बन्धी कहूं तो आप न

पूछें। जीते आदमी को किस प्रकार मरण शैया पर पहुंचाया जाता है, उसका सच्चा नमूना हमारे देश की शिक्षा है। हाँ, यह शिक्षा नहीं है, पर वास्तव में यह एक बला है। हमारी शिक्षा ऐसी है कि वह हमारे देशाभिमान के। हमारे मन से जड़ मूल से उखाड़ देती है। हमारे कितने लोग देशाभिमान देशाभिमान चिल्लाया करते हैं, पर सच पूछिए ते। हमारे देशाभिमान को हमारी पाठशालाओं ने नष्ट कर डाला है। विद्या पढ़कर हम एम० ए०, बी० ए० डाक्टर और इञ्जीनियर बनते हैं, पर राज काज में और देश के कारबार में बिल्कुल नालायक रह जाते हैं। ऐसी शिक्षा देने से बासी मुर्दे के ऐसी हमारे शरीर की हालत हे। जाती है।"

कोमराल्की ने प्रेम से पूछा, "इसका क्या कारण है ?" कारण यही कि हमारे सरकार की ऐसी ही इच्छा है कि हम पराधीन बने रहें! हमारी सरकार परदेशी और पारधर्मी है। उसको हमारे देश के हिताहित का बहुत ही थोड़ा ख्याल है। पढ़ लिख कर हमारे देश के बच्चे योग्य हों, देशभक्त हों, राज काज में निपुण हों और अपने अधिकार के। समझें, इन सब बातों को देखने के लिये हमारी सरकार के अधिकारी ज़रा भी तैयार नहीं हैं। हमारे में देशभक्ति की वृद्धि हो और किसी काल में हम यूनाइटेड स्टेट्स की तरह बल द्वारा अपने अधिकार सरकार से माँगने लगें' आदि भय से सरकार ने पहिले ही से हम लोगों के। शस्त्र रहित कर दिया है। इतना ही नहीं, लाठी-सोटे के बल से कहीं हम उनपर चढ़ाई कर बैठें इस भय से उन्होंने 'पानी के पहिले पाल बाँधने वाली बात चरितार्थ कर दी है। शिक्षा के बहाने हमारी शारीरिक शक्ति जिस प्रकार कम हो उसका प्रयत्न ऐसी खूबी से किया गया है कि पचीस

पचास वर्ष में हमारे देश की स्थिति ऐसी हो जायगी कि हम को हथियार दिए भी जायंगे तो भी उनको उठाने की शक्ति नहीं रहेगी, फिर चलाने की बात ही दूर रही ? श्रीमती, प्राण ही से हमारी शिक्षा का मूल उद्देश्य हमको निर्बल बनाने का है। मंगला चरण ही से बालकों को दो दो भाषा का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। एक हमारी देशी भाषा और दूसरी अंग्रेज़ी। इन दोनों भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने और परीक्षाओं की यातनाएँ भुगतते २ बालक एक दम निर्बल पड़ जाते हैं। युवावस्था ही में उनका दम फूलने लगता है। कितनों के छाती में दर्द होने लगता है। नब्बे फी सदी तो चश्मुद्दीन बन जाते हैं। जब उनमें केवल चार कोस चलने की भी शक्ति नहीं रह जाती तो फिर नए नए विचार करने, नई नई कलाएँ खोज निकालने आदि की शक्ति आवे कहां से! विद्याभ्यास का पूरा क्रम समाप्त करने में प्रायः एक सौ और आठ बार परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं। प्रत्येक परीक्षा के अवसर पर विद्यार्थी को इतनी मेहनत करनी पड़ती है कि कितने विद्यार्थी तो परीक्षा-मंडप में ही मूर्छा देवी के वश हो जाते हैं और कितने परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थी परीक्षा का फल मालूम होने के पूर्व ही अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर डालते हैं। इतनी भारी जहमत का फल क्या ? सरकारी पन्द्रह बीस रुपये की नौकरी ! हमारे देश में परदेशियों को सोने के रूप में वेतन दिया जाता है और देशके मूल निवासियों को रूपा तथा ताँबे के रूप में। इस स्थिति में देशाभिमान की बातें करनी केवल अपनी मूर्खता का नमूना देना है। ऐसी अवस्था में कोई भी भारतीय देशहित के विचार कैसे कर सकता है ? दूसरे देशों में चालीस वर्षमें जब युवावस्था आरंभ होती है तब हमारे यहाँ का एक सुशिक्षित ग्रेजुएट

अपनी दूसरे लोक की यात्रा करने की तैयारी करता है। हमारे यहाँ केवल दो ही अवस्थाएं हैं: बालकपन और बुढ़ापा। हमारे देश में युवावस्था का नाम ही नहीं है। हमारी शिक्षाका फल-स्वरूप या राजा का उपकार-हमारा स्वदेशाभिमान-जो कहिए सो यही है।"

"तो फिर आपके देश की प्रजा इसके लिये कुछ करती नहीं ? आपकी सरकार तो बड़ी चतुर कही जाती है। -हमारे देश में इंग्लैन्ड की प्रजाकी रीति-रिवाज, शिक्षा, सैन्य-व्यवस्था, राज्य-व्यवस्था, आदि का अनुकरण किया गया है। इस देश के विद्वान अंग्रेजी प्रजा और अंग्रेज़ राज्य को सब प्रकार पूर्ण समझते हैं। पर आपके कथनानुसार मिस्टर माणिकचन्द, आपकी सरकार बड़ी स्वार्थी और परदेशी प्रजापर बड़ा जुल्म करने वाली क्या नहीं कही जा सकती ?"

"आप चाहे जो समझें और चाहे जो कहें, पर मैं अपने देश के राज कर्मचारियों को जुलम करने वाला कहूं तो एकदम राजद्रोही समझा जाऊंगा। मैंने तो केवल आपके प्रश्नके उत्तर का खुलासा किया है। हमारे देश की सरकार जिस प्रकार अपने देश में राज्य करती है, शिक्षा देती है, व्यापार की उन्नति करती है, उसके बिलकुल विपरीत रीति और नीति का प्रयोग भारत वर्ष में करती है। यदि कोई हमारी सरकार के सामने फ़रियाद करे तो वह राजद्रोही समझा जाता है। इस समय तो अब आप इस प्रसंग को स्थगित रखें, फिर कभी इस पर वार्तालाप होगी।"

"खैर, हिन्दू-मुसलमान में परस्पर कैसा मेल है, उनमें कैसी एकता है और परस्पर धर्म सम्बन्धी कैसे विचार हैं ?"

"बिलकुल ठीक है। हिन्दू मुसलमानों को इस्लामी भाई

कह कर बुलाते हैं, और मुसलमान कहते हैं कि हिन्दू-मुसलमानों का चोली दामन का साथ हैं। मुसलमान कहते हैं, हश्र के दिन महम्मद पैगम्बर अपने धर्म-सम्प्रदाय वालोंके चाहे जैसे गुनाह हों माफ करा देगा। हिन्दुओंका भी यही कहना है कि 'करोड़ों मन अपराध करके भी सच्चे दिलसे गंगा में एक डुबकी लगाई कि सब साफ़।' हिन्दु, मिट्टी के गणपति बना, आठ दश दिन घरमें रख, गाते बजाते और फिर पानी में डुबा ठंढा कर आते हैं। मुसलमान भी कपड़े और कागज के ताबूते बना दस बारह दिन घर में रख रोते पीटते पानी में ठंडा कर आते हैं। रिवाज प्रायः दोनों के एक ही हैं। लालची और स्वार्थी अमलदार दोनों कौम के बीच मेल देखना नहीं चाहते। इसका भी अनुभव हो चुका है। तिसपर भी इस समय संसार, हिन्दू-मुसलमानों की एकता और परस्पर की सहानुभूति देख, दांतों उँगली दबाता है। सरकारी अमलदार परस्पर विरोध पैदा कराने के लिये कोई बात उठा नहीं रखते, पर अब दोनों कौमों ने अपने अधिकार और अपना परस्पर का सम्बन्ध भली प्रकार समझ लिया है, अब वे अमलदारों की बातों में फँसने की नहीं। इस समय अन्धे भारतवर्ष की लाठी यही परस्पर का मेल है। इसी पर आगे की इमारत तैयार होगी।"

"विज्ञान की शिक्षाने भी भारत वर्ष का क्या कुछ उपकार किया है?"

"भारत वर्ष में विज्ञान की शिक्षा जैसी दी जानी चाहिए वैसी नहीं दी जाती। यहां की शिक्षण प्रणाली ने तो हज़ारों अमूल्य जीवों को समय होनेके पूर्व ही स्वर्ग पुरी भेज दिया है।"

"आपके देश में बौद्ध मत का प्रचार कैसा है?" कोमराक्कीने, फिरती जाऊँ, फिरती जाऊं, घर की नज़र करती

आऊं' वाली कहावत चरितार्थ करते हुए, अन्तमें अपने मतलब की बात छेड़ ही तो दी।

इसके उत्तर में माणिकचन्द्रने कहा, "हाँ, इतना उल्लेखनीय तो नहीं है। बीस पच्चीस वर्षोंसे कलकत्ते में एक संस्था खुली है। सिलोन निवासी धर्मपाल नामका एक पुरुष, बौद्ध धर्म के जीर्णोद्धार का प्रयत्न करता रहा था। इस विषय में एक यूरोपियन अबला का स्तुत्य प्रयत्न भी विख्यात है। परन्तु 'नक्कार खाने में तूती की आवाज़ क्या कर सकती है?' कहा भी है।

"मस्ल मशहूर है सुन लीजिए सारे ज़माने में,
सदा तूती की सुनता कौन है नक्कार खाने में।"

"हन्टर नामके इतिहासकारने लिखा है कि भारत वर्ष में एक बार फिर बौद्ध धर्म की तूती बोलेगी। पर मेरे तुच्छ विचार में तो ऐसा नहीं आता कि यह बात ठीक उतरेगी।"

कोम०-"मैंने अनेक हिन्दुस्तानियों से भेट की पर आप के ऐसे विशद ज्ञान वाला दूसरा हमको कोई भी नहीं नज़र आया। बौद्ध धर्म के विषय में आपके कैसे विचार हैं मैं जानना चाहती हूं।"

माणिकचन्द्र ने छाती ठोक कर कहा "मैं इसको सर्वोत्कृष्ट धर्म मानता हूं। पर यह बात सर्वसाधारण के गले में उतार उनको इस मार्ग पर लाना केवल अशक्य ही नहीं वरन् असम्भव प्रतीत होता है। मुझे तो बौद्ध धर्म के सिद्धान्त बहुत अच्छे ऊंचे हैं। भ्रातृभाव और दया का सत्य दर्शन इसीने कराया है। यह महात्मा ऐसी ही जातिका एक महापुरुष था। काशी देश के उत्तर, रोहिणी तट निवासी गौतम कुल में उसका जन्म हुआ था। इस शाक्यवंशीय क्षत्रियों के कुलदीपक ने

प्राचीन आर्य धर्म पर बहुत ही अधिक असर डाला है। केवल भारतवर्ष ही में नहीं, वरन् तिब्बत, रूस, तातार, चीन, जापान कोरिया, सियाम; ब्रह्मदेश, सीलोन और जावा आदि अनेक देशों में अपने यश की दुंदुभि बजा, इस परम पवित्र, सात्विक ज्ञान मय, प्रेम-मूर्ति-रूप महात्मा ने सृष्टि के इतिहास में एक अद्वितीय और भव्य प्रकाश का विस्तार किया है। स्त्री पुत्र के मोह को क्षण भर में लात मार सन्यास धारण करना इसी महात्मा का काम था। वह परमतत्व वेत्ता था। ज्ञान-सम्पादन कर के वह चुपचाप बैठा नहीं रहा, पर दयार्द्र हृदय से सर्व-साधारण को अपने ज्ञान का लाभ पहुंचाने के लिये उसने पूर्ण प्रयत्न किया था। संस्थाएं स्थापित कीं, देश देश में व्याख्यान दाताओं को भेजा, वर्ण व्यवस्था की, कल्पित बेड़ी को एक ही झटके से तोड़ डाला, सबको मोक्ष का सत्यमार्ग बताया, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' वाक्य को केवल वचन ही से नहीं परन्तु कर्म से निभा कर बताया, और सर्व-समानता तथा भ्रातृभाव की नींव पाताल तक पहुंचा कर उसपर अपने धर्म की इमारत उठायी है।"

कोमरास्की तो दिग्मूढ़ ही बन गई। "ऐसा विद्वान, ऐसा वक्ता-छोटासा जादूगर-यह बौद्ध धर्म स्वीकार करेगा या मुझे ही कोई और धर्मावलम्बिनी बनाएगा? किन्तु यदि यह भी उसी पारसी की तरह किसी पर आशिक हो या इसका विवाह हो गया हो तो?" ऐसे प्रश्न वह अपने मन से करने लगी।

ज़रा सुस्ता कर माणिकचन्द ने फिर गाड़ी चलाई, "प्राचीन महात्माओं के वचनों का भी बुद्ध ने तिरस्कार नहीं किया है। इस सत्यशोधक और सत्याग्रही महानुभाव ने पुनर्जन्म आदि विचारों को, प्राचीन मत को, माना है और अपने से

पूर्व उत्पन्न हुए चार्वाक के जैसे नास्तिक मत का मूलोच्छेदन कर डाला है। हमारे आर्यों के प्राचीन धर्म में ही कुछ परिवर्तन कर के उसने सबको ठीक मार्ग पर लगाया है। पुरानी लकीर के फकीरों ने भलेही कुछ परिवर्तन होते देख इसको नास्तिक ठहराया हो, पर मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि इसने कोई भी खराब परिवर्तन नहीं किया है। सर्वोपयोगी सादा सरल और कर्म मार्ग की झंझटों से रहित, तथा प्राचीन विचार माला पर बहुत आघात न पहुंचाने वाला बौद्ध धर्म इसने फैलाया था। इसने दुःखमय संसार से मुक्त होने के सरल मार्ग ही बताये हैं। इसने दूसरे विवाद-ग्रस्त विषयों के सिद्धान्त समझाने या उसपर चर्चा करने का परिश्रम ही नहीं किया है। संसार की सृष्टि, सृष्टि कर्त्ता और जीव क्या पदार्थ है आदि विवादों पर इसने दृष्टि तक नहीं डाली है। आत्मा और परमात्मा के फेर में यह पड़ा ही नहीं है। जीवन को दुःख रूप जान बौद्ध धर्म में आस्था रखनी, रागद्वेष से अलग रहना, अश्रद्धा, असूया और अज्ञान आदि का त्याग करना और पाप मार्ग से दूर रहना इन चार मार्गों के इसने आठ रास्ते बताए हैं:-

"सत्य विचार, सत्य वचन, सत्य जीविका, सत्य व्यवहार, सत्य स्मरण, सत्य आचार, और सत्य साधन।"

"क्रिश्चियन धर्म के कितने सिद्धान्तों के लिये यूरोपियन विद्वान अभिमान करते हैं पर उनके धर्म से पाँच सौ वर्ष पूर्व इस अलौकिक महात्मा ने ये सब सिद्धान्त बता दिए थे। ईश्वर के पुत्र ईसूने तो केवल उनका अनुकरण ही किया है। तलवार के बल से नहीं, परन्तु धर्म का सत्य रहस्य समझाकर प्रतिपक्षी से अपना धर्म मनवाने में बौद्ध धर्म को सर्वोच्च स्थान मिलता है।

कोमरास्की ने हर्ष से उछलती हुई छाती पर हाथ रख आश्चर्य से पूछा, " ओ हो, आप ने बौद्ध धर्म सम्बन्धी इतना अधिक ज्ञान कहाँ से सम्पादन किया ?"

" जब मैं एन्ट्रेन्स क्लास में पढ़ता था तब मैंने मेक्समूलर कृत ग्रन्थ में इस विषय का बहुत भाग पढ़ा था। फिर रिस डेविड कृत ' बुद्धिज़म ' और बार्थ कृत ' रिलीजन्स आफ इंडिया ' आदि ग्रन्थों को मैंने बड़े ध्यान से पढ़ा है। गत वर्ष मैं अपने सेठ के साथ लाहौर के संग्रह स्थान में गया था, वहां मैंने दो मूर्तियां देखीं। वे मूर्तियां गौतमबुद्ध की थीं। एक ध्यानावस्था में बैठी थी और दूसरी खड़े होकर व्याख्यान देने के समय की थी। आप यदि उन मूर्तियों को देखें तो वहां से उठने का मन ही न हो। वे अत्यन्त मनोहर और प्रभावशाली थीं।"

कोमरास्की ने एक दीर्घ श्वांस लेकर कहा, "आप दिखाइएगा तो देखूँगी। आप के मुख से निकलता हुआ एक एक अक्षर मैं एक एक सुवर्ण मुद्रा के बराबर समझती हूं। धन्य है आपका परिश्रम। आपके दर्शन और आपके परिचय से मुझे जितना आनन्द हुआ है, उसको वर्णन करने की मुझ में जरा भी शक्ति नहीं है। पर मुझे आश्चर्य इस बात का है कि जब आप इतना सब जानते हैं और न्याय की दृष्टि से एक सत्यमार्ग की प्रशंसा करते हैं तब उसे खुले तौर पर स्वीकार कर बुद्ध धर्म के उन्नति पथ पर आगे क्यों नहीं बढ़ते ?"

माणिकचन्द ने हँसते हुए कहा, और इस हास्य ने माणिकचन्द के हृदय पर बिजली का सा असर किया, " मिस कोमरास्की, यहाँ तो नून, तेल, लकड़ी की चिन्ता लगी है लोक परलोक, धर्म, और शर्म की तो बात ही दूर रही। पेट के धर्म की उन्नति करने ही से छुट्टी नहीं मिलती, तब बौद्ध धर्म की उन्नति

भला किस प्रकार हो सकती है ? हम लोगों में श्री अन्नपूर्णा देवी की पूजा का महात्म्य बड़ा भारी है, और मैं भी उसी मार्ग का चेला हूं। घर बैठकर यदि मैंने खेती वाड़ी का धंधा किया होता तो पेट भर खाने को तो मिला होता। मैंने तो पेट खाली और माथा भारी वाली बात की है। यदि मैं आप के आगे अपनी सच्ची स्थिति का वर्णन करूं तो आप दंग हो जाएंगी। एम० ए० की डिग्री प्राप्त करने की लालच में फंस यदि मैंने अपनी भलीचंगी काया को यन्त्रणा में न डाला होता तो आज पत्थर में से लात मार पानी निकालने की शक्ति मुझ में होती। मेरे बाप, चाचा और जाति बन्धुओं को आप देखें तो दंग हो जाएं। यहां तो आठ दिनों में अस्सी बार दवा पीनी पड़ती है। ज्यों त्यों करके एक दो ग्रास खा लेता हूं रात भर छटपटाता हूँ। दूसरे दिन प्रातःकाल उठते ही खाली पेट खट्टी डकारों की शहनाई बजाता हूं। ऐसी तो मेरी स्थिति है। मेरे बाप और चाचे तो ऐसे पहाड़ जैसे हैं, कि पत्थर भी उनको पच जाय, बीस तीस कोस का चक्कर काट आवें पर शरीर में पसीना तक न हो। शिक्षा ही मेरा काल हो गई। इस समय तो ईश्वर की कृपा और आप लोगों की दया से तनख्वाह भी ठीक मिलती है। यदि मैं अपनी स्थिति का विवेचन करूंगा तो आप सुन न सकेंगी।"

"यदि आप को किसी प्रकार की भी आर्थिक सङ्कीर्णता हो तो वह मिट सकती है। यदि आप एक अच्छी रक़म के अधिपति हों तो फिर आप बौद्ध धर्म को स्वीकार कर सकते हैं न ? इस प्रश्न से कोमरास्की ने मानों मुंह में मिश्री की डली दे कान छेदने की तैयारी की।

"धर्म बेच कर धन कमाया तो इतना सब पढ़ा लिखा

किस काम आया ? ऐसा नहीं हो सकता। बौद्ध धर्म सम्बन्धी मेरी अनेक शङ्काओं का समाधान हो तभी मैं इस धर्म को सहर्ष स्वीकार कर सकता हूं क्योंकि मुझे तो यह धर्म सर्वोत्कृष्ट नज़र आता है।"

"मैं आप को डाक्टर शमदा और मिस कपड़ा से मिला दूंगी। वे संस्कृत, पाली, मागधी और अंग्रेजी के हमारे देश के बड़े विद्वान् गिने जाते हैं। वे अवश्य आप की शङ्काओं का समाधान कर देंगे।"

"मैं इस परिचय के लिए आप का आजन्म कृतज्ञ रहूंगा। मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता हूं कि आज आप जैसी धर्म से एक गहन विषय की अनुरागिनी विदुषी के साथ यहाँ आते ही मेरा परिचय हुआ। मुझे पूर्ण आशा है कि आप बार बार कष्ट उठा कर मुझे अनुगृहीत करती रहेंगी।"

"अवश्य आऊंगी। यदि आप कहेंगे तो हिन्दुस्तान तक आने में मैं आना कानी नहीं करूँगी। आप के जैसे एक अलौकिक विद्वान् का मूल्य मेरी जैसी एक अज्ञानी अबला क्या आँक सकती है ? अस्तु, अपने प्रथम परिचय के स्मारक चिह्न के रूप में आप मेरी इस तुच्छ भेंट को अवश्य स्वीकार कर लीजिए।" इतना कह कर उसने एक चमकती हुई हीरे की अंगूठी अंगुली में से उतार, माणिक चन्द की आना कानी करने के पूर्व ही उसकी अंगुली में पहिना दी और "कल फिर मिलूंगी," कह कर जापानी प्रेम की प्यासी विदुषी देखते देखते वहाँ से अदृश्य हो गई। माणिक चन्द आश्चर्य चकित होकर बार बार अंगूठी और दरवाजे की तरफ देखने लगा। पहिली ही भेंट में हज़ार बारह सौ की यह अंगूठी भेंट ! नसीब खर्राया क्या ? "यह क्या आशा रखती होगी ?" इस विचार

में माणिक, और "इसका विवाह हो गया होगा तो ?" इस विचार में कोमरास्की इस प्रकार दोनों भिन्न भिन्न विचार सागर में गोते खाने लगे।

तैंतीसवां प्रकरण

विवाहित कुँवारा

भूत लगे मदिरा पिये सब काहू सुधि होय
प्रेम सुधा रस जिन पियो तिन न रहे सुधि कोय।"

प्रेम की बात ही निराली है। प्रेम करने से होता नहीं, रखने से रहता नहीं, और किसी काल में भी वह निकालने से निकलता नहीं। कहावत है कि,

--इश्क न देखे जात कुजात।"

रूप देख कर मोह जाना या जवानी पर फ़िदा होना इश्क नहीं कहाता। प्रेम दो प्रकार का होता है। एक इश्क़ हक़ीक़ी और दूसरा इश्क़ मजाज़ी। इश्क़ को इश्क़ टें टें भी कहते हैं। हक़ीक़ी इश्क़ तो पतङ्गियों का है और मजाज़ी इश्क़ बुलबुल का ! किसी फ़ारसी के शायर ने कहा है

--ऐ मुर्गे शहर इश्क़ ज़े परवाना बिआमोज;
कां सोख्ता रा जां शुद आवाज़ नआमद।"

कली के खिलते समय, उस पर चिल्ला चिल्ला कर लोगों को सूचना देने वाले बुलबुलों को लक्ष्य कर कवि कहता है कि "तू पतङ्ग के पास जा कर प्रेम का पाठ पढ़, जो दीपक पर शरीर को जला के भस्म कर डालता है, पर ज़बान से एक भी आह या दुःख का शब्द नहीं निकालता।" कोमरास्की का

प्रेम कुछ हक़ीक़त से मिला हुआ था। वह माणिक चन्द के रूप रङ्ग या दूसरे और किसी अवयव पर नहीं किन्तु सिर्फ उसके गुणों ही पर मोहित हो गई थी। कहा भी है कि, "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।" जैसा वह चाहती थी वैसा ही वर उसको मिला था। माणिक चन्द से वार्तालाप कर के जब से वह घर आई थी, तभी से सर्वत्र उसको माणिक चन्द ही माणिक चन्द नज़र आता था। घर में आते ही उसने पहिले प्रश्नावली निकाली। आँख मीच कर उसने एक अङ्क पर हाथ रखा। उसका जवाब यह मिला कि, "आप के दिल में बहुत दिनों से एक अभिलाषा लग रही है, अब वह शीघ्र ही पूरी होगी। आप चींटियों को पिसान खिलाइए। महात्मा गौतम बुद्ध का यह बचन है। इसका प्रमाण यह है कि आपकी हथेली में एक तिल है" बस हथेली का तिल देखा और बुद्ध का बचन पढ़ा। अब बाक़ी रहा ही क्या? कोमरास्की मन ही में मोदक खाने लगी।

"बस, अब मैदान मार लिया है। राजपूत जाति! राजपूत जैसी वीर जाति का विद्वान् पुरुष, शिक्षित, डिग्री प्राप्त, भरी जवानी के जोश में, कोमल शरीर वाला, व्याख्यानदाता धर्म संशोधक, बुद्ध को मानने वाला—वाह खूब अच्छी जोड़ी मिलीः

"मैं तरुणी यह तरुणतनु, माणिक मीठा नाम;
ब्याह करूं मैं हिन्द में, झख मारेगा गाम।"

थोड़ी देर के बाद फिर वह स्वगत बोलने लगी, "यही न कि वह निर्धन है या और भी कुछ? पल भर में इसको लक्षाधिपति बना डालूँगी। हाय, कब मैं लाहौर जाऊँगी और कब महात्मा गौतमबुद्ध की मूर्ति देखूंगी। अहा इसकी

भौं कैसी भरी हुई और काले भौंरों की तरह है। इसका हंसना भी कैसा और कितना मनोमोहक है। इसकी वाक्य चतुरता अलौकिक है। कहीं मेरी आशा निराशा का रूप तो नहीं धारण कर लेगी ? यदि इसका विवाह हो गया होगा तो ?"

इस विचार ने उसके चेहरे की रंगत फीकी कर डाली। कुछ विचार करके वह उठी और काग़ज़ निकाले। फिर दो चिट्ठियाँ लिखीं। एक डाक्टर शमदा को और दूसरी मिस कवड़ा को। इन पत्रों में उन दोनों को दूसरे दिन संध्या को पांच बजे का अपने यहाँ निमंत्रण दिया था और ब्यालू करने की भी विनती की थी। एक सुन्दर पत्रमें उसने माणिकचन्द्र को भी सन्ध्या के सात बजे पधारने का निमंत्रण भेजा। ज्यों त्यों करके रात बीती। सबेरे उठकर वह "जा शबेहिज़ तेरा मुँह काला।"

यों कहकर दावत की तैयारी करने लगी। दिन काटे कटता नहीं था, वह पहाड़ हो गया था। एक एक पल कल्प के समान मालूम पड़ता। मार पीट कर सन्ध्या तो हुई। डाक्टर शमदा और मिस कवड़ा पधारीं। कोमरास्की ने लैले मजनू का किस्सा बड़े रससे कह सुनाया। मिस कवड़ा ने इस बात का बीड़ा उठाया कि वह चतुराई से उससे पूछ लेगी कि वह विवाह कर चुका है या नहीं। सात बजे कि इम्तिहान चन्द वहाँ आ पहुंचे। कहा भी है:—

> कूदा कोई यूं घर में तेरे धम से न होगा
> जो काम हुआ हम से वो रुस्तम से न होगा।'

कोमरास्की ने बैठक ऐसी खूबी से सजाई थी कि उसकी प्रशंसा करने में "गिरा अनयन, नयन बिनु बाणी" थी।

जापानी स्त्रियों के आगे घर सजाने की कला में अंग्रेज़ भी झख मारते हैं यह बात जगत् प्रसिद्ध है। अंग्रेज़ी स्त्रियाँ जापानी पद्धति पर ही अपना कमरा सजाने में गौरव मानती हैं। माणिकचन्द्र कोमरास्की की साहबी देख कर दंग हो गया। उसने अपने जीवन भर में केवल अपने सेठ की पुत्री जर ही का कमरा देखा था। पर यह साज सामान और उनके उचित साज ने तो माणिक को आश्चर्य के समुद्र में छोड़ दिया। साहब सलामत हुई। सिर पर से टोपियाँ उतरीं हाथ मिले और सब का सब से परिचय हो जाने पर कुर्सियों पर बैठे। गपशप होने लगी। "दीदार बाज़ी और खुदा राज़ी की भी बात एक तरफ़ चली। पर माणिक की बला जानेः—

> "चाहन वह किस काम की, अन चाहत के संग;
> दीपक के मन भाय ना, जल जल मरत पतंग।"

ब्यालू की तैयारी के समाचार आए और सब उठकर भोजन के कमरे में गए। ठाट बाट की तो बात ही क्या? टेबुल पर बिछा हुआ गुलकारी का कपड़ा देख एम०ए० दास तो यही समझे कि फूल पत्तों ही से टेबुल सजाया गया है। कुर्सी को देखकर तो वह दंग ही हो गये क्योंकि उसपर ऐसी उत्तम कारीगरी का काम किया हुआ था कि यदि नादिरशाह उसको देखते तो दिल्ली का तख्तेताऊस (मयूरासन) देकर कुर्सियाँ लेजाते दूसरी कुर्सियां हलकी भी इतनी थीं कि मानों वे हवा ही में उड़ी जाती थीं। नाजुकपने में भी यहां की एक एक वस्तु एक दूसरे से बढ़कर थी। माणिकचन्द्र एक जंगली जानवर की तरह इस कमरे को देखने में लीन हो गया था। इतने में कोमरास्की ने पानी पानी होते हुए कहा, "आपके जैसी बल्कि आपके देश के जैसी सुघड़ताई तो आपको यहाँ

कहाँ देखने में आवेगी। कहाँ गन्दा जापान और कहाँ सुघड़ और चतुर तथा अग्रगण्य भारतवर्ष।"

माणिकचन्द्र ने हंसकर उत्तर दिया, "हाँ, आप ठीक ही कहती हैं। हमारी देश की सुघड़ता और चतुराई के साथ आपका देश बराबरी नहीं कर सकता। गाय बैल के गोबर से लीपी हुई जमीन के आगे यह टेबुल गन्दा तो ज़रूर है। तांबा, पीतल और कांसे के बर्तन इन चीन के बर्तनों को टूक टूक कर डालें इतने भारी तो वे जरूर होते हैं, इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है।"

खाना आया, चालाँकि मिस कबड़ा ने माणिकचन्द्र को छकाने के लिए चम्मच, कांटा आदि छिपा दिया और खास जापानी रीत्यानुसार लकड़ी की सलाइयां मंगायीं। माणिक चन्द ने देखा देखी चावल को सलाइयों से खाने की बहुत चेष्टा की, पर चावल के दाने प्लेट (तश्तरी) में और भूख पेट में! ऊपर से मिस कबड़ा इनकी भद्द उड़ाती कि, "ये गिर पड़े, ये बिखर गए, यह सलाई मुंह में लग गई आदि।" माणिक ने घबड़ाकर हाथ से खाने का विचार किया पर उपहास होने के भय से वह वैसा न कर सका। इतने में दूध आया. मेजवानों ने सलाई से दूध भी उड़ाना शुरू किया, पर मेहमान वैसा न कर सका। वह मन ही मन सोचने लगा कि यह लड़कों के खिलवाड़ की तरह का भोजन करने से कैसे दिन कटेगा ?" देश में लड़के लोग साबुन के पानी में सलाइयों से फेन निकालते हैं, उस प्रकार दूध पीने से माणिक पहिले तो शरमाया, पर जब उसने केम्ब्रीज यूनीवर्सिटी के रेंगलर डी॰ सी॰ एल॰ और जापान कालेज के प्रोफेसर आफ थियोलोजी को भी यही करते देखा, तब उस को लाचार हो कर उसी प्रकार दूध पीना पड़ा। पर कोम-

बालकी से यह देखा न गया। इस प्रकार जब उसने देखा कि मेरा प्यारा भूखा रह जाया चाहता है वह झटपट कुर्सी पर से उठी और नौकरों को डांट डपट कर चम्मच और काँटे मंगवाये। अब विचारे माणिकचन्द के जी में जी आया। अब उस ने पेट में अन्न भरना शुरू किया। फिर चाय आई। प्यालियों को देख कर माणिक मन ही मन हँसा। चिड़िये की एक चोंच भर पानी जिस में समाय इतनी बड़ी प्याली थी। दो तीन प्यालियाँ चाय पी उसने घबड़ा कर चाय रख दिया। उस के बाद फल और मेवे की बारी आई, फिर 'धूम्रपानं महापुण्यम्' किया गया, तदुपरान्त गपशप शुरू हुई। प्रसंगानुसार चतुर कबडा ने इस प्रकार बात छेडी।

मिस कबडा-"आप के देश में स्त्री पुरुष एक साथ बैठकर भोजन करते हैं कि आमने सामने बैठकर?"

माणिक-"अरे, ऐसा कहाँ मिस साहबा? पहिले पति भोजन कर लेता है, फिर विचारी स्त्री लम्बा घूंघट तान एक कोने की तरफ मुंह करके दो चार ग्रास झटपट मुंह में ठूंस लेती है।"

मिस ने आश्चर्य से पूछा, "अरेरे, आप के देश में स्त्रियों की ऐसी दुर्गति होती है? पर आप तो साक्षर हैं। आप तो अवश्य ऐसी रिवाजों को धिक्कारते होंगे। घर जाकर आप अपनी स्त्री के साथ हम लोगों की तरह अवश्य टेबुल पर खाने बैठेंगे, क्यों?"

"अरे, ऐसे भाग्य कहाँ? अपने भाग्य में तो एक एम० ए० का तोक्ष डाल कर बाकी समस्त सुखों को सलाम करने की रेखा विधाता ने खींच दी है। घर जाने का जिसको होश हो वही जाने।"

डाक्टर शाग्ड़ा ने उपयुक्त समय जान कर भेद लेना चाहा। "इससे तो मालूम पड़ता है कि आप अभी कुंवारे हैं।"

माणिक ने कहा, "डाक्टर साहब, इस समय तो मैं विवाहित और अविवाहित के बीच में हूं।"

कोमरास्की का चित्त तो आकाश में टँगा था। कितने हिन्दुस्तानी जापान में आये थे पर किसी ने उस पर ऐसी मोहिनी नहीं डाली थी। प्रेम के नाम पर दाँत निकालने वाली पुतली अभी ही तो प्रेम के सिकंचे में जकड़ी गई। ज्यों ही उसने माणिक का यह 'विवाहित और कुंवारा' वाक्य सुना कि वह बेहोश होकर लड़खड़ाया। दूध का जला छांछ फूंक फूँक कर पीता है। उसी प्रकार माणिक जी अरदेशर के विषय में निराश हुई जापानी युवती, 'कहीं माणिक चन्द भी किसी के साथ वचन में न बंध गया हो' ऐसा समझ कर एक दम निराश हो गई। पर चतुर कवड़ा ने खोद खोद कर अपना मतलब निकाल ही तो लिया।

कवड़ा—"तब आप की सगाई हो चुकी है, यही न, मिस्टर माणिक चन्द ?"

माणिक चन्द ने उत्तर दिया; "वह भी नहीं; हम लोगों में तो गुड़वा-गुड़यी की तरह विवाह होता है। मेरा भी बाल्यावस्था ही में विवाह हो गया था, पर दुर्भाग्य वश परमेश्वर ने मेरी गृहिणी को बुला लिया।"

इस वाक्य को सुनने से कोमरास्की के जी में जीआया।

चौंतीसवाँ प्रकरण

मामा जी अब घर चलिए न

गुलमर्ग में जर अपने तम्बू में बैठी हुई एक पत्र के साथ प्यार से खेल रही है। यह माणिक जी का लिखा हुआ पहिला पत्र था। माणिक, चन्द्र के साथ भेजे हुए पत्र के उत्तर की आशा में आए हुए पत्र को बारबार पढ़ने में जर अपना समय बिताती। डाक्टर वाछा अपनी खोज ही में लीन थे। जर घर जाने के लिए उतावली थी। वह यह चाहती कि अब एक दम काश्मीर से विदा होऊं। परन्तु डाक्टर वाछा के आगे कुछ उसकी चलती ही न थी। यदि वह अधिक हठ करती तो संभव थी कि मामा को किसी प्रकार का शक हो, इस बात का भी उसको बड़ा भारी डर था। माणिक जी ने अपनी बिमारी की हालत में एक छोटा सा पत्र लिखा था, जर उसी को बार बार बांचती। वह पत्र यह था,

"डीयर जर!

उस परब्रह्म परमेश्वरकी असीम कृपा से इतने आदमियों में से केवल एक ही जीव बच गया है। वह जीव तेरे प्रेम का पुजारी ही है। प्यारी, अभी अशक्ति और पीड़ा बहुत है। ज़बान भी साफ़ नहीं हुई है, अभी लड़खड़ाती है। डाक्टर का कथन है कि इसके आराम होने में अभी कुछ दिन लगेंगे। पर मेरा दृढ़ निश्चय है कि यदि मेरी प्राणेश्वरी मेरे समीप होए तो मैं बहुत शीघ्र अच्छा हो जाऊँगा। प्रिये, जिस दिन से मैं तुमसे अलग हुआ हूं उस दिन से एक घड़ी भी ऐसी नहीं बीती होगी जिसमें कि तेरी चाह ने मेरे हृदय में अपना घर बना उसको

चलनी २ न कर डाला हो। अब जब भेंट होगी तभी मैं उस हृदय विदारक घटना का बयान करूँगा। यह डाक्टर भी मालूम होता है मेरा उपचार नहीं कर सकेगा। उसी दिन मैं अच्छा हो जाऊंगा जिस दिन मेरी प्राणप्यारी मुझसे मिलेगी। दो तीन सप्ताह में, यदि ईश्वरने चाहा तो मैं बम्बई आ जाऊंगा। हो सके तो प्यारी तुम भी अपने जन्मस्थान की हवा खाने आना। नहीं तो मैं स्वयं हवा पानी बदलने के बहाने काश्मीर आऊंगा। शुभम्

तेरे प्रेमका पुजारी
मा० अरदेशर"

जर पत्र को पढ़ती, रख देती, फिर पढ़ती और हर्ष से उसको चूमती, आँखों से लगाती, छाती में दबाती, रेशमी रूमाल में लपेटती, चाँदी के डब्बे में बन्द करती और फिर निकाल कर उसकी नक़ल करती कि एक नकल यदि कहीं गिर पड़े तो दूसरी से दिल बहला सके। पहिले की पुरानी प्रेम पत्रिकाओं को निकाल कर वह उनके अक्षरों से इसके अक्षर मिलाती। इस प्रकार वह अपने प्रेमी के पत्रको अनेक प्रकार के लाड़-चावसे मन में हर्षित होती थी। माणिकजी थोड़े दिनों में बम्बई आवेगा और उसको बुलावेगा इस बातने उसको पगली सी बना दिया था।

संध्या समय आँगन में हवा खाते हुए जर ने बाछा से कहा "मामाजी, अब लाहौर चलिए, अब यहां जी नहीं लगता।"

"दो चार दिनों में तुझे क्या हो गया है, जर ? स्वर्ग तुल्य काश्मीर को छोड़ इस नरक के समान लाहौर में आने की तेरी इच्छा कैसे होती है ?"

जर–"ओ,काश्मीर को तो मैं लाहौर पर न्योछावर करती हूं। जिस स्थानपर मेरे पिताजी हों, वही मेरे लिये स्वर्ग है।"

"अहा हा–,वाहरे बेटी! तूने तो मुझे 'लाजिक' से बाँध लिया। पर अब तू मुझे जबाव दे कि तू और तेरे मामा इस समय स्वर्ग में बैठे हैं कि नरक में?"

"अरे–वाहरे मामाजी आप मुझे बांधना चाहते हैं? ख़ैर, लाहौर और काश्मीर दोनों स्वर्गतुल्य, पर जब एक स्वर्ग में से जी ऊबा तो दूसरे स्वर्ग में चलना चाहिए।"

"अच्छा बेटी। यदि तेरी ऐसी ही इच्छा है तो, अगले सप्ताह में यहाँ से हम लोग प्रस्थान करेंगे। बस अब तो तू खुश हुई?"

"जी हाँ, जर ने उत्तर दिया, और वह फूली न समाई।

बात की बात में सप्ताह बीत गया। किन्तु जड़ी बूटी की खोज़ में वाछाने जानेका नाम भी नहीं लिया। पर घबराई हुई जर को कल कहाँ! फिर उसने "मामा जी, अब घर चलिए" का राग अलापना शुरू किया।

"अरे पगली बेटी। गाड़ी वगैरह का बन्दोबस्त कर लूं तब न? तुझे तो मालूम ही है और तू देखती ही है कि यहाँ अंग्रेज कितने आ टूटे हैं। गाड़ी वाड़ी की तो बात दूर रही, इस समय यहाँ कुली का मिलना दुश्वार हो रहा है। ख़ैर, इस हफ्ते में मैं इसका बन्दोबस्त कर लूँगा।" इस प्रकार वाछा ने दूसरा वादा किया।

जरने खफा होकर रोना मुंह बना कर कहा। "देखती,हूं, मामा जी, आप भी अब आजकल का नाम ही भूल गए हैं और सदा हफ्तों ही की बात करते हैं। आग लग गई, सब गाड़ियों में। नहीं मिलती तो नहीं सही, चलिए पैदल ही

चलें। क्या हमारे पैरों में चलने की शक्ति नहीं है ?"

"वाछाने अपनी भानजी को इतनी अधिक घबड़ाई हुई देख कर अधिक दिन काश्मीर में रहना उचित नहीं समझा। यथा साध्य शीघ्र उसने काश्मीर से प्रस्थान किया।

पहाड़ पर से उतरते समय जो गरम लू और दुर्गन्ध की आपदाएँ भोगनी पड़ती हैं उसका हाल जो वहाँ हो आया है वही जानता है। वाछा के चेहरे पर धूप के कारण लाली छा गई। अम्हौरी से तमाम शरीर भर गया। दिन भर बराबर बर्फ २ की पुकार करते हुए वह बिचारा डाकृर घबरा गया था। पर इसके विपरीत उस कोमलांगी के शरीर पर इसका कुछ भी असर न होता, तमाम दिन उसका मन हर्ष से प्रफुल्लित रहता। उसको पसीना तक न आता था। प्यास भी नहीं लगती थी। न उसको कपड़े ही भारी मालूम पड़ते और न उसको लू ही सताती थी। केवल मालिक जी का स्मरण ही उसके लिये सुगन्धित समीर तथा ठंडी बर्फ का काम करता था। सच्चे प्रेम का यही नमूना है। बुलबुले हिन्द दाग सच ही कह गया है कि:—

"इश्क़ निआमत है आदमियों के लिये, इश्क़ जन्नत है आदमी के लिये;
इश्क़ से ही आदमियत आती है, आदमी को इन्सान करती है।"

पैंतीसवाँ प्रकरण

बम्बई

लाहौर का स्टेशन आया ही तो। एदल जी स्टेशन पर आए थे। उन्होंने पुत्रीको छाती से लगाया। काश्मीर की आबोहवा से जर का मुख गुलाब की तरह खिला हुआ देख कर पिता का मन प्रफुल्लित हुआ। एदलजी की यह एकलौती बेटी थी। वे इसको लड़के की तरह मानते थे। स्टेशन के बाहर गाड़ी तैयार थी। सर सामान नौकरों को लाने के लिए सहेज वे घर आए। नौकर-चाकरोंने उनका स्वागत किया। जर अपने कमरे में गई। वहाँ उसने सुस्ता कर चाय पीया। इतने में सब माल असबाब आ गया। जरने सब वस्तुओं को लेकर उचित स्थान पर सजा दिया। केवल एक ही पार्सल उसने ज्यों का त्यों रख दिया, क्योंकि उसमें उसके प्रेमी के लिये खरीदी हुई वस्तुएँ थी। जान पहिचानके सब लोग मिलने आए, और काश्मीर की बहुत सी बातें हुई। जर को घर आने पर माणिकचन्द बहुत याद आने लगा। जिस घरमें वह अपने प्रेम पात्र की प्रतिमूर्ति देख अपने अधीर मन को धीरज देती थी उसी में "वह जापान पहुंचा होगा? मेरा पत्र उसने माणिक जी को दिया होगा?" आदि विचारों में वह आठों पहर और चौबीसों घन्टे गोते खाया करती थी। अन्त में प्रेम-पत्र आया ही। यह पत्र माणिकचन्द के जापान पहुंच कर कहे हुए समाचार, भेजी हुई भेंट तथा पत्र का उत्तर था। डाकिये ने ज्यों ही आकर पत्र दिया कि उसकी मोहर देख कर जर हर्ष से बावली सी हो गई। जरने प्यारे के पत्रसे विक्षित हो हर्ष से

डाकिये को पांच रूपये के नोट की भेंट तो कीही, पर उसके बाद उसने अपने सुकोमल हाथों से उस डाकिये की बलैयां तक लीं। डाकिया चकित होता हुआ बाहर गया कि "इस स्त्री को क्या हो गया है?" उसके जानेके बाद जर अपनी करनी पर हंसी। पाठको, प्रेम ऐसा ही अन्धा होता है। स्वर्गवासी बुल्बुले हिन्द दाग एक उर्दू कवीश्वर की हैसियत से प्रसिद्ध था। एक अबला के साथ उसका प्रेम लगा। धीरे धीरे उस प्रेमने प्रमाद तथा उन्माद का रूप धारण करना शुरू किया। एक दिन दाग़ के यहाँ कोई मेहमान आया। दाग़ने समझा कि "मेरी माशूकाने पैग़म्बर भेजा है"। इससे दाग़ बातें भी करता जाता था और उसके जेब भी टटोलता था कि "प्रेम पत्रिका कहाँ है।" यह आप बीती उसने स्वयं लिखी है। उसी के शब्दों में इसको पढ़ने से विशेष आनन्द होता है—

> "कोई मेहमाँ जो मेरे घर आया, मैंने समझा पैग़म्बर आया;
> उसकी बातों में बोलता था मैं, खत कमर में टटोलता था मैं;
> कभी पीता था पाँव धो धो कर, कभी हँसता था रो रो कर;
> उसको हैरत, यह माजरा क्या है, मेंजबां को जुनू है, सौदा है।"

जब एक विद्वान पुरुष की इश्क़ के जोश ने ऐसी स्थिति कर डाली, तब जर जैसी एक अबला ने यदि प्रेम के आवेश में डाकिये की बलैया लेली तो इसमें नवीनता क्या हुई? जब फिर बड़े बड़े देवता, पैग़म्बर, वल्कि ईश्वर स्वयं प्रेमाधीन हैं, तब मनुष्य यदि प्रेमाधीन होवे तो इसमें शंका किस बात की? मनुष्य को तो सच्चे प्रेम के वश होना ही चाहिए।

जरबानू ने पत्र लिया, उसको चूमा, आँखों में लगाया, और आशा से धड़कती हुई छाती से, थरथर कांपते हुए हाथों

से उसको खोल कर पढ़ा। एक बार पढ़ा, फिर एक बार पढ़ा। इस प्रकार सैकड़ों बार पढ़ने पर भी उसको सन्तोष नहीं हुआ। उसने माणिक जी का फ़ोटो निकाला और उसको बार बार निहारा। फिर भी मन की व्याकुलता ज्यों की त्यों बनी रही। ठीक ही है, सन्तोष हो तो कहाँ से हो? उसका चित्त तो अपने प्रेमी से बात करने के लिये तरसता था। भला वह कोरी चिट्ठी पत्री से किस प्रकार धैर्य धारण कर सकता है।

"जिसको मंज़ूरे नज़र हो देखना तस्वीरे यार;
वो किसी सूरत खिंचा मगवाए और देखा करे;
एक मैं हैरत ज़दा हो पूछता हूं दोस्तों;
जो फ़कत बातों हि का मुश्ताक़ हो तो क्या करे?"

जापान से आया हुआ पत्र इस प्रकार लिखा था:—

"नेक खस्लत, नेक आदत, जान ज़िगर ज़र;
ए मुहब्बत के गुल्शन के बुलबुले बे पर;
ए मेरे मन मन्दिर की मीठी मूरत;
ए सच्चे स्वभाव की तू सुन्दर सूरत;
इस बाग़े जहांन में तू जीये सदा;
और मेरे ज़िगर साथ भेटे सदा;
तू गुल मैं बुल्बुल तू दीपक मैं पतंग;
बस तेरे साथ भटकूं दिल में रख उमंग;
तुझ जन्नत की हूर के गुलाबी गाल;
है तेरे बिना दुनिया दोज़ख़ मिसाल;
तू सच्ची है प्यारी तेरा सच्चा ज़िगर;
है झूठा ज़माना फकत ज़र बग़ैर।"

"प्यारी ज़र, तेरे मुबारक हाथ का लिखा हुआ पत्र मिला। इससे मेरे टूटे हुए ज़िगर में जो खुशी हुई है, उसको लिखने

की ताक़त मेरे क़लम में नहीं है। काश्मीर के दृश्य मिले। येशक बाग़े बिहिश्त की सीनरी है। काश्मीर को स्वर्ग की बराबरी करने में यदि कोई कसर थी तो वह फ़क़त एक हूर की, उसको तूने वहां जाकर पूरा कर दिया। अब तेरा अदना आशिक़ बिल्कुल तन्दुरुस्त है। डाक्टर ने भी बम्बई जाने की आज्ञा दे दी है। बस, अब थोड़े ही दिनों की और जुदाई है। आज से पाँचवें दिन जहाज़ पर सवार हूंगा और दो हफ्ते में बम्बई में हाज़िर। दिल तो चाहता है कि पहिले कलकत्ते होता हुआ काश्मीर आऊं, पर माता पिता की फ़िक्र, ऐसा करने से रोकती है। हाय जिस समय मैं पालवे (अपोलो बन्दर) में उतरूँगा। उस समय यदि वहाँ तुझ प्यारी का दर्शन नहीं होगा तो कैसी ग़ज़ब की गुज़रेगी। प्यारी यदि हो सके तो तू भी शीघ्र ही बम्बई आने की कोशिश करना, जिससे मैं अपना जलता हुआ ज़िगर तेरे दर्शन से ठण्ढा कर सकूं। तेरा समाचार लाने वाला हिन्दू बड़ा भला आदमी है। मुझे तो वह बहुत प्यारा लगता है। सुशिक्षित भी है। पर यहाँ की एक जापानी लेडी उसको अपने चंगुल में फँसाना चाहती है। मुझसे भी वह एक दो बार मिली थी। उसके सिर यही पागलपन सवार है कि वह किसी हिन्दुस्तानी ही की अर्द्धाङ्गिनी हो। पर पहिले वह उसको बौद्ध धर्म का बना लेगी, फिर उससे हाथ मिलावेगी अपने को तो ग़रीब ज़रथोस्ती मत और सीधी सादी जर से काम था। उसकी दाल भला यहाँ कैसे गल सकती थी ? मैं समझता हूं कि तेरा हिन्दू नौकर यहाँ गोता खा जाएगा। यों तो वह बहुत समझदार और चालाक है। पर निर्धनता के कारण सम्भव है वह पैसे के लालच में चिपक जाय। यह जापानी लेडी भी बहुत साफ़ सुथरी है, इस लिए इसके फ़िसल जाने

का भय है। बस अब छुट्टी लेता हूं। ईश्वर चाहेगा तो बहुत जल्द मिलेंगे।

तेरा सदा का चाहने वाला दास—
"मा० अरदेशर।"

"एक दो हफ़्ते में बम्बई आवेंगे? कौन! माणिक जी? ओ हो हो!" इन शब्दों ने जर के दिल पर कैसा असर किया? तीर जैसा। क्यों? उसके मनका मालिक बम्बई आवे और वह लाहौर में बैठी रहे। ऐसा जीना ही किस काम का?

"छूट जाय ग़म के हाथों से जो निकले दम कहीं,
ख़ाक ऐसी जिन्दगी पर तुम कहीं और हम कहीं।"

दूसरे जापानी-लेडी की बात भी कुछ फाँस की सी गड़ने लगी। माणिक के साथ यदि 'अन्द' उस जापानी युवती से विवाह कर ले तो कोई हर्ज नहीं क्योंकि वह रँडुआ है। पर माणिक के साथ 'जी' यदि ऐसी भूल करें तो औरतों की कौन गति!"

शोक! ऐसे ग़ज़ब! ये ग़ज़ब सभी के कानों के पर्दे फाड़ सकते हैं। बस अब बम्बई जाना ही चाहिए। मुझे लाहौर से भाग लो! जापान जाना पड़े तो, वहाँ जाऊँगी। पर पंख कहाँ हैं? न जाने कौन देगा? बस बम्बई और बम्बई की तरफ़ से काल के पर्दे फाड़ डालना या किस पर किस प्रकार चला जायगा, इसकी ही उसके मन में बड़ी फ़िक्र थी।

छत्तीसवाँ प्रकरण

बम्बई का न्योता

सन्ध्या समय की डाक में जर के दो लिफ़ाफे आए। एक में एक निमन्त्रण-पत्र था और दूसरे में एक साधारण पत्र था। निमन्त्रण पत्र में लिखा था:—

"बम्बई, ता० १०वीं मई

"श्रीमती बहिन साहबा,

जगदीश्वरकी असीम कृपासे मेरी पुत्री शीरीन का विवाह दादाभाई माणिक जी के साथ ता० २४ मई, मंगल वार के दिन होगा। अतएव आप [illegible] में अल्ब्लेस बाग में तीसरे पहर चार बजे [illegible] तथा रात्रि में सात बजे बिरादरी भोजन में सम्मिलित होकर मुझे अनुगृहीत कीजिए।

आपका दर्शनाभिलाषी—

अबाबाई मंचेरशाह बरजोर जी छापगर

निमन्त्रणपत्र पढ़ते ही जर के हृदय में बम्बई जाने की आशा बन्धी। फिर उसने दूसरा पत्र पढ़ा, वह इस प्रकार था:—

"बहिन जरबानो,

इस पत्र के साथ एक निमन्त्रणपत्र आता है उसको लीजिएगा। मेरे लग्न के इस अवसर पर आपको अवश्य आना चाहिए। अपने सम्बन्ध को एक तरफ रख कर केवल आपकी मित्रता ही आपको यहाँ आने के लिए बाध्य कर सकती है। मैं बहुत तरह से लिखती हूँ कि आपको आना ही पड़ेगा। गुला के विवाह के अवसर पर तो बम्बई ही में आप थीं।

उसका क्या ? मेरे लग्न के अवसर पर आप जब लाहौर से आएंगी तभी आपके बहिनापे का पता चलेगा। और शोभा भी खूब होगी। यदि आप नहीं आवेंगी तो आपके विवाह पर मैं इसका पूरा बदला चुका लूंगी। आपको मेरी सौगंद है। आप ज़रूर आना, इसी बहाने हमलोग इतने दिनों में मिलेंगी। ईश्वर के लिए ज़रूर आना।

आपकी सदाकी ख़ैरख्वाह बहिन
शीरीन मंचेरशाह बरजोर जी छापगर

नोटः—लाहौर में आग्रह आदि का इन्तिज़ार मत करना।
शी० मं० ब० छा।"

यह मंचेर शाह बरजोर जी छापगर एदल जी के मामा का लड़का था। रुपै पैसेसे भी वह सुखी था। उसका रहनेका बंगला बालेश्वर में और कोठी कोट में थी। जरने इस अवसर से लाभ उठाया निमन्त्रणपत्र लेकर एक पंथ दो काज करने की नीयत से वह अपने पिता के पास गई।

एदल जीने अख़बार को टेबुल पर रख हंसते हुए कहा, "बेटी मैं समझ गया तू किस वास्ते आई है। पर मैं तुझे बम्बई थोड़े जाने दूंगा।"

"आंआं बाबाजी, ई क्यों ? मैं तो इसी वास्ते आई थी।"

"मुझे भी निमन्त्रणपत्र मिला है। मंचेरशाह का एक पत्र भी आया है। उसमें लिखा है कि जो काम काज में फँसे रहने से मैं न जा सकूं तो तुझे अवश्य भेज दूं।"

बाबाजी, मुझे भी शीरीनने पत्र लिखा है और गुलांके विवाह पर मैं वहां थी और इसके वक्त नहीं जाऊंगी तो वह भी मेरे—"

"हाँ, हाँ, सरमाती क्यों है ? कहती क्यों नहीं कि वह भी तेरे विवाह में नहीं आवेगी। यही न ? अरे वाह री बेटी तो

क्या तू भी विवाह करेगी ? तुझ काली कलूटी से कौन विवाह करेगा ?" एदलजी ने जान बूझकर जरको चिढ़ाना शुरू किया।

बाबा जी; आप भी मुझ गोरी का अपमान करते हैं ? अभी मैं काश्मीर से और भी गोरी हो आई हूं, फिर भी आप ऐसा कहते हैं ?"

"तेरी इच्छा है तो तू भी जा पर मुझे यहां अकेले रहना पड़ेगा।"

जर—"मैं बहुत शीघ्र लौट आऊंगी, बाबा जी ! मुझे केवल अपनी शीरीन के साथ मिलना ही तो है दूसरा काम ही क्या है ?"

जर ये शब्द बोल तो गयी पर उसके अन्तःकरण में ऐसा मालूम अवश्य हुआ होगा कि किसी प्रबल शक्ति ने उसको इस प्रकार झूठ बोलने के लिये बाध्य कर अपराधिनी बनाया है जर के मन में शीरीन से मिलने के बनिस्बत माणिकजी से मिलने की इच्छा प्रबल थी। और उसी ने उसको बम्बई जाने के लिये उत्तेजित किया था।

एदलजी—कल ही से इसकी तैयारी करनी पड़ेगी। शीरीन को एक हीरे की अंगूठी और दादी मामा को एक्यावन रुपये देकर मैं गंगा नहाऊंगा। बाकी बम्बई आने जाने का सब खर्च तू अपने पास से करना। क्यों ठीक है न ?'

जर-सब तो आप ही देते हैं। फिर मैं कौन और मेरे पास का खर्च कैसा ? पिता जी, यह दादी मामा जी तो बड़े भारी जादूगर बनते थे और बारबार कहा करते थे कि मैं विवाह नहीं करूंगा, फिर यह हत्या गले कैसे बांधी ?

एदल जी-"यह सब, बेटा, ढोंग ही है। आज कल के पारसी बेटों ने जहां थोड़ी बहुत अंग्रेज़ी पढ़ना लिखना सीखा

कि इनका मिज़ाज आसमान में चढ़ जाता है। दूसरे अख़बार वाले इनको ज़रा ज़रा में ऐसा चढ़ा देते हैं कि ये अधकचरे फूले भी नहीं समाते। इनके कपड़ों की तो शान ही निराली रहती है। बात बात में ये अंग्रेज़ी की टांग तोड़ते हैं। नेकटाई, कालर की कौन कहे, अंग्रेज़ों के टोप चढ़ा घूमने फिरने में ही ये अपनी इज्ज़त समझते हैं। घर में मुट्ठी भर चना नहीं जुटेगा, पर शान नवाबज़ादे की। "नए शौक़ीन खलीते में गाजर। हे परमेश्वर! तू जरथोस्ती क़ौम पर रहम कर। उसमें लड़कियों ने तो ग़ज़ब की ढाई है। वे बाइसिकिल पर चढ़ घूमती हैं और यहां तक कि साड़ी पर मेम की खचिया चढ़ा लेती हैं। गले में रुमाल बाँधती हैं। ईश्वर इन पर रहम करे, इनको अपने सच्चे मार्ग पर लाए।

जर-बाबा जी, मुझे तो इस विवाह में एक बाधा नज़र आती है। मामा जी तो सुशिक्षित और अपने मंचेर जी पक्के शहनशाही हैं। तब दूसरी बार के आशीर्वाद में जो बाधा उपस्थित होगी, उसका क्या किया जायगा?

पद्लजी—इसका क्या, सुधरे हुए कदमी और शहनशाही सब आखिर को जरथोस्ती ही न? अब सब पुरानी बातें ही कहां रहीं? कहां हैं अब वे जरथोस्ती वीर? क्या जन्द ही भाषा में आशीर्वाद है? क्या संस्कृत भाषा का आशीर्वाद कोई चीज ही नहीं है? ईश्वर स्व. जमशेद जी की आत्मा को स्वर्ग वास दें। वह स्वर्गवासी हमेशा दिन अपने सिर पर पगड़ी रखता था, घर में भी वह पगड़ी पहिने रहता था, जहाँ आज कल के लड़के अंग्रेजी टोप पहिनने पर भी गरमी से घबड़ा जाते हैं। स्वर्गवासी महारानी विक्टोरिया से लेकर अदने अंग्रेज तक, एक पारसी से, यह कह कर भेट करते कि यह

सर जमशेद जी की जात की है। लोगों का कहना है कि दूसरा ऐसा कोई नहीं उत्पन्न हुआ जो उनकी बराबरी कर सके।

जर-अब वैसे नर कहाँ पैदा होते हैं।

पदल जी—बेटा, सर वाल्टर फ्रिअर, किसी काल में बम्बई का गर्वनर था। वह एक दिन फ्राम जी कावस जी बनाजी वालों के मजगाम के बंगले पर बिना सूचित किए किसी काम से आगया। फ्रामजी उस समय हजामत बनवाते थे। वे खुशामदी न थे। गवर्नर विचारा दस मिनिट तक चुपचाप खड़ा रहा। जब वे हजामत बनवा चुके तभी उन्होंने गवर्नर से भेंट की। यद्यपि उन्होंने ऐने में पीछे खड़े हुए गवर्नर को देख लिया था। आधी हजामत में से उठ गवर्नर की खुशामद करना उन्होंने उचित न समझा। इसी से उन्होंने वैसा किया। अब तो पारसियों का यह हाल हो गया है कि यदि कोई सड़क दारोगा किसी पारसी के घर आ जाय तो वह भोजन करते करते पत्तल पर से उठ कर उसकी खुशामद करने लगेगा। और अपने ही हाथों से अखबार में भी यह लिख भेजेगा कि आज अमुक साहेब अमुक पारसी के घर पधारे थे। दूसरे अब हिन्दुस्तान में वैसे खानदानी अंग्रेज भी नहीं आते। रिपन जैसे माँके पूत अब कहाँ नजर आते हैं! अब तो माइकेल ओडायर जैसे गवर्नर आते हैं, जो अपनी शान के आगे भारतवासियों को भेंड़ बकरी समझते हैं। और अन्त में भारतवर्ष से अर्धचन्द्राकार पाकर बिदा होते हैं। जनरल डायर, और थोमसन जैसे कर्मचारी आते हैं, जो निहत्थी प्रजा पर गोली चला कर ही अपनी आन, बान और शान दिखाते हैं।"

जर—मैं अपने ऐसे दृढ़ विचार वाले पिता पर न्यौछावर

हूं। आप इतनी सब बातें जानते हैं इसका तो मुझे स्वप्न में भी ख्याल न था।"

एदलजी—"बेटा ऐसी ऐसी बातें कहने बैठूं तो पोथे का पोथा तैयार हो जाय। हाँ, जर आज मेरे माणिकचन्द का भी पत्र आया है। उसने लिखा है कि आठ दस दिनों में नीलाम शुरू होगा। तीन हिन्दुस्तानी आप हैं। देखें और कौन कौन आता है। देखें माणिकचन्द वहाँ कैसी अक्लमन्दी खर्च करता है।

जर—आप की नीयत ठिकाने है तो बाबा जी, ईश्वर सब अच्छा ही करेगा। माणिकचन्द भी समझदार आदमी है। उस को दूकान का भी अनुभव हो गया है, इससे कुछ नादानी तो नहीं कर सकता। जो करेगा अच्छा ही करेगा। इसकी मुझे सोलह आने उम्मेद है।

बाप बेटी की बातचीत खतम हुई। फिर इधर उधर की बातें कर के जर बम्बई जाने की तैयारी में लगी। खुरशेदजी अपनी स्त्री और पुत्र सहित जर को लेकर बम्बई जायं ऐसी व्यवस्था की गई। जर आनन्द में मग्न होती हुई यह शेर पढ़ने लगी:—

"खुदा रखे मुहब्बत ने किये आबाद दोनों घर;
मैं उनके दिल में रहती हूं, वो मेरे दिल में रहते हैं।"

सैंतीसवाँ प्रकरण

मुझे अपना-लीजिए

"आपके कहे हुए प्रमाण बहुत मनन करने योग्य और गंभीर हैं, फिर भी मेरी बुद्धि की सीमा के बाहर होने के कारण, वे

मेरे ध्यान में नहीं उतरते। अतएव ईश्वर के अस्तित्व को न मानने को मेरा हृदय गवाही नहीं देता।" ये शब्द हमारे माणिकचन्द्र वर्मा एम० ए० उर्फ इम्तिहानचन्द्र बहादुर के मुखारविन्द से निकल रहे थे। डाक्टर शमदा के साथ आज शास्त्रार्थ हुआ था। बुद्ध मत का प्रायः पुजारी भया हुआ माणिक, जिसका हृदय बुद्ध के सिद्धान्तों पर कुर्बान हो चुका था, केवल एक ही बात से हिचकता था। ईश्वर के ऐसा व्यक्ति के सिर पर कोई स्वामी अवश्य होना चाहिए, यह उसका दृढ़ निश्चय था। डाक्टर शमदा और मिस कबडा, कोई भी उसके मन का समाधान नहीं कर सके। इस समय कोमराकी आशा और निराशा के झूले में झूलती हुई मालूम पड़ती थी।

माणिकचन्द्र ने कहा, "आप चाहे जो कुछ कहें, पर मेरे मन में यह बात आही नहीं सकती। ईश्वर शब्द का इन्कार स्वीकार करने के नाम ही से मेरा कलेजा कांप उठता है। मैंने मौलवी हाली साहब के चार चरण हीरे के अक्षरों में अपने हृदय पट पर लिख दिए हैं। वे ये हैं:—

> हिन्दू ने सनम में* जलवा पाया तेरा;
> आतिशये मुगां † ने राग गाया तेरा;
> दहरी ‡ ने किया दहर से तावीर () तुझे;
> इन्कार किसी से न बन आया तेरा।"

डाक्टर शमदा ने कहा कि आप यदि मेरी बातों पर खूब विचार करेंगे तो सम्भव है कि हीरे के अक्षरों में लिखी हुई पंक्तियों का पानी भी जाता रहे। आज तो अब बहुत विलम्ब हो गया है, अब किसी दूसरे दिन इस पर और विचार करेंगे

---

* प्रतिमा, मूर्ति † आग्न्योपासक, अग्निहोत्री ‡ नास्तिक () मिश्र,

यह कह कर डाकृर सब से विदा होकर चलता बना। दस पांच मिनट के बाद मिस कबड़ा भी बिदा हुई।

माणिकने कोमरास्की से कहा, " अब मुझे भी आज्ञा दीजिए।"

" इस वक्त आप को होटल में कौन सी हुण्डी सकारनी है? अब तो आप खाली हो हैं। माणिक जी अरदेशर को तो आप बिदा ही कर आए, और दो दिन से बराबर नीलाम में जाकर अपने सेठ का भी काम कर ही रहे हैं। मैं तो नहीं समझती कि इस समय आप को कोई काम होगा। आपको अकेले में कैसे अच्छा लगता है। मुझे तो आप से बिछुड़ते ही बड़ा कष्ट होता है। मैं फिर कहती हूं, माणिकचन्द जी आप मुझे अकेली छोड़कर मत जाइए।" इस वाक्य ने माणिक के हृदय पर कुछ ऐसा प्रभाव डाला कि वह वर्णित नहीं हो सकता। वह टकटकी बाँध कर कोमरास्की को देखता ही रह गया।

माणिक—" यह लीजिए, मुझे क्या, मैंने यह अपना डेरा जमाया। मुझे तो आप हो के समय का ख्याल न था।"

" आजकल तो मैं 'करनी न करतूत मियां लड़ने को मज़बूत' हो गई हूँ।"

" अपने तो इसमें भी जी हैं।"

फिर गाड़ी आई और दोनों जने समुद्र के किनारे हवा खाने गए। कोचवान और साईस दोनों जापानी थे। ये दोनों अंग्रेजी में बातचीत करते थे इनको न कुत्ते का खटका, न बिल्ली का ग़म था। कोमरास्की की प्रेम की उर्मियाँ गले तक आ जाती थीं। अब इस अबला में आशा की उमंगों को दबाने की शक्ति न थी। लज्जा और संकोच इसकी टाँग पीछे खींचते थे, जब प्रेम और यौवन सब पर पानी फेर कर इसको

अपने मन की सब बात साफ़ साफ़ कह देने के लिए उत्तेजित करते थे। बिचारी नाज़ुक कोमराल्की बारबार चाहती थी कि वह अपने मन के उद्‌गार को दिल के बाहर निकाल कर अपना दिल हलका करे, पर उसके दिल की बात दिल ही में रह जाती थी। दूसरी दूसरी बातों ही में समय बीता जाता था

कोमराल्की—"मैं यह जानना चाहती हूं, मिस्टर माणिक चन्द, कि ये......इश्क और प्रेम के शब्द, जो लोग चिल्लाते हैं वास्तव में कुछ है या सिर्फ डिक्सनरी (कोष)की शोभा बढ़ाने ही के लिये हैं ?"

"स्वयं मैं तो अभी तक इन को साधारण ही मानता हूं।" यह सुन कर कोमराल्कीने एक लम्बी सांस ली। माणिकने फिर कहा, "इसका कारण यह है कि पंजाब यूनिवर्सिटी के पंजे से छूटते ही मैं नौकरी के गोरखधंधे में फँस गया हूं—

'पिनहा था दामे सख्त क़रीब आशियान के;
उड़ने न पाये थे के गिरफ्तार हो गए।'

अतएव मुझे स्वयं तो इस बात का अनुभव है नहीं; पर, हाँ पर बीती कह सकता हूं कि इश्क एक महान् रोग है। जिसका वैद्य, पथ्य और आरोग्य आदि सब केवल नाज़ुक ही के हाथ में है! किसी को किसी प्रकार का शौक़ न हो और यदि उसको कष्ट उठाने की इच्छा हो तो उसको इश्क शब्द का अर्थ प्रेम की पुस्तक के पन्नों में खोजना चाहिए। मेरी एक धर्म की बहिन थी, जिसको किसी बात की भी कमी न थी, उसने इस दुःख को खरीद लिया था। मैंने उसकी हालत अपनी आँखों से देखी है। निद्रा भूख, आराम, तथा अपना और पराया आदि सब वह भूल गई थी। एक भूली भटकी हुई हरिनी की तरह वह मारी मारी फिरती थी। जिसको कुछों

का बिछौना अंगारे का बना डालना हो, मोतीके दानों को कुड़ाना हो, कोने में मुंह डाल कर रोना हो, पड़ोसी भाली को लात मारनी हो, मित्रों को रुलाना और शत्रुओं को प्रसन्न करना हो, उसी को प्रेम शब्द से परिचित होना चाहिए। किसी कविने कहा है:—

'ये इश्क वह है कि पत्थर को दम में आब करे;
लगाए दिल वही जिसको खुदा खराब करे।'

इस व्याख्यान और विवेचन से कोमरास्की के दिल पर कैसा प्रभाव पड़ा होगा! वह बराबर सुनती गई—कुछ भी न डरी—और जब माणिक बोल चुका तब उसके नेत्रों की तरफ बड़ी प्रेम तथा दया पूर्ण दृष्टि से देखने लगी और बोली।

"पर मिस्टर माणिकचन्द, जिसने इस संसार में प्रेमशब्द को एक प्रकार की मूर्खता का रूप ही मान लिया हो, और उसके गले यदि स्वयं यह बला आ लगी हो, या संयोग से उसके तीर से जो आदमी घायल हो गया हो, उसको क्या करना चाहिये?"

दूसरा वह करही क्या सकता है? अपने प्रेमपात्र से मिलने का प्रयत्न करे—अपने रोग की दवा करे।"

तब तो इश्क के रोग की दवा है सही। इस रोग के रोगी आराम भी होते हैं?"

माणिकचन्द ने उसके मनोभाव को न समझ कर उत्तर दिया "संसारमें भला ऐसाकौन रोगहै जिसका उपचार न हो?"

"क्या आप इश्क के रोग से मुक्त होने की दवा बता सकते हैं?"

मैं कुछ डाक्टर, वैद्य या हकीम तो हूं नहीं।"

"यदि आप के पास दवा हो, आप डाक्टर, हकीम या वैद्य

के स्थान पर खुद ही ईसा, लुकमान अथवा धन्वंतरी हों तो मेरी दवा करें कि नहीं ?"

माणिक ने शंका और विचार से कहा, "आप जैसी सभ्य, श्रीमती और विदुषी स्त्रीके लिये मैं कुछभी नहीं उठा रखूंगा।"

"जो मुझे आप ही का इश्क़ लगा हो, यदि मेरा अन्तःकरण आपही की सेवा करना चाहता हो........।"

माणिकचन्द ने आश्चर्य चकित हो कर कहा, "मेरा इश्क और मेरी सेवा ! माणिकचन्द और उसमें मोहित करने का गुण ! विचारे दीन इम्तिहान चन्द का भी कोई चाहने वाला !! यह हो ही कैसे सकता है ? इसकी सम्भावना ही कैसी ? न रूप, न गुण, न काठी, कहावत है कि, 'जर न जोर फिर किस बिरते पर शोर ?' कहां आप और कहाँ मैं ?"

'कहाँ जर्रा कहाँ मेहरे मुनव्वर !'
"जमीं की गर्द पहुंची आसमां पर !!"

कोमरास्की ने माणिक की बात काट कर कहा, "माणिकचन्द आप ऐसा मत कहिए। कौन कहता है कि आप में गुण नहीं है ? मैं तो कहती हूं कि आप अनेक गुणों के भण्डार हैं; आप युवक, विद्वान, कुलीन, सुन्दर, लेखक, वक्ता, और सुशील हैं। कोई भी स्त्री इस से अधिक अच्छे गुण की आशा नहीं रख सकती। आप में किस गुण की कमी है ? केवल लक्ष्मी का ही टोटा है कि और भी कुछ ! प्रेम और लक्ष्मी का कौन सम्बन्ध ? 'फ़र्हाद संगतराश था, शीरीं ने उसमें क्या पाया' ? पागल मजनूको कौन अदा लैलीको भाई थी ? यूसुफमें जुलेखा की क्या लालच थी ?

माणिक—कुछ न कुछ तो अवश्य ही इन लोगों में होगा। पर मुझ में कौन विशेषता है ? यह तो मुझसे कुछ छिपा नहीं

रह सकता ? 'मन् आनम के दानम्'—मैं जो कुछ हूं सो मैं जानता हूं। जिसके हाथ के बीने हुए चार बेर कोई न ले उस पर मिस कोमरास्की जैसी चतुर विदुषी का मोह जाना, भला कैसे सम्भव हो सकता है ? मिस साहब ! आप मुझ गरीब की क्यों हँसी उड़ाती हैं ?

कोमरास्की ने बड़े गम्भीर भाव से कहा, "मिस्टर माणिक चन्द ! आप अपनी ही नहीं वरन् मेरी भी परीक्षा-शक्ति के साथ अन्याय करते हैं और उसका अपमान करते हैं। मैं अशिक्षित बालिका नही हूं और न मैं इतनी भोली भाली ही हूं। मैंने आप में बहुत कुछ देखा है, यह आप नहीं जान सकते। भौं की मनोहरता नेत्रों के देखने में, कस्तूरी की सुगन्ध मृग को नहीं आती। मोती का मूल्य सीप कहां से बता सकता है ? "कद्रे गौहर शाहदानद या बिदानद जौहरी !" मैं अंधी नहीं हूं !

'गौहर को जौहरी, सराफ़ ज़र को देखते हैं;
बशरके देखने वाले बशर को देखते हैं।'

आप के पास पैसा नहीं है, और पैसे की मुझे भूख भी नहीं है। यदि मैं अपनी मिल्कियत को मिट्टी के मोल भी निकाल डालूं तो भी पचास लाख कहीं नहीं गये हैं। पैसे जैसी तुच्छ वस्तु की पूछ ही कौन करता है ? मैं आपकी हूं तो पैसे फिर किस के ? एक बार मुझे आप अपना लीजिए और अपने मन से निर्धनता शब्द को सदा के लिये निकाल दीजिये। आप स्वप्न में भी यह ख्याल मत कीजिएगा कि मैं धन के ज़ोर से आपको खरीद रही हूं। मैं स्वयं आप की दासी बनना चाहती हूं। आज तक मेरा यही निश्चय था कि मैं उसी की होकर रहूंगी जो कोई बौद्ध धर्म को स्वीकार करेगा, पर आपने मुझे अपने निश्चय से डिगा दिया और दूसरे ही मार्ग पर मुझे फेर

दिया। जो आपका धर्म है वही मेरा धर्म। आपकी दशा वही मेरी दशा। आपका वतन वही मेरा वतन, आपकी इच्छा वही मेरी इच्छा-यही अब मेरा दृढ़ निश्चय हो गया है। माणिकचन्द जी ! मेरे कथन में आप ज़रा भी शंका मत कीजिएगा। मैं सच्चे अन्तःकरण से कहती हूं, यदि आप मुझे स्वीकार कीजिएगा तो मैं अपना अहोभाग्य समझूंगी। नहीं तो इस संसार के सब पुरुष मेरे लिये पिता और भ्राता के तुल्य हैं। मेरा और कोई नहीं है, यदि सगे सम्बन्धी या मित्र कोई भी हैं तो आप ही हैं। किसी काल में भी मैं आपको दग़ा नहीं दूंगी। आप ही की हो कर रहूंगी। दुख में सुख में, शान्ति में या आपत्ति में, बुराई में या भलाइ में आप के पसीने की जगह मैं सदा अपने खून की धारा बहाऊंगी। नहीं फिरूंगी नहीं डिगूंगी। बस आप मुझे अपनी बना लीजिए।" यह कह कर कोमरास्की ने माणिक के दोनों हाथ अपने हाथ में दबा लिये और उत्तर की आशा से उसके मुंह की ओर देखने लगी। अहा हा ! वाहरे मनुष्य का हृदय ! सत्य ही कहा है:—

'रोके नहीं रुकती है किसी पर अगर आ गई
आंधी की तरह आई तबियत जिधर आई।'

"मुझे कुछ सूझता नहीं है-मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि इस स्वप्नवत् वार्ता का क्या उत्तर दूं ?" कोमरास्की के जोश भरे भाषण से दबा हुआ, और किं कर्त्तव्य विमूढ़ इकिलहान चन्द ने ऊपर का वाक्य कहा उसने क्या कहा, इसका उसको कुछ भी ध्यान न था।

कोमरास्की ने शान्ति से कहा। "घबराइये मत, जल्दी मत कीजिए। धीरज से विचार कर, हानि लाभ को कांटे पर तौल कर मेरी बातों का उत्तर दीजिए। यह कुछ अन्न, जल,

या जर ज़वाहिर के खरीदने की बात नहीं है, यह दिल जैसी मँहगी वस्तु का सौदा है, दूसरे को अपना करने की बात है। यदि आज आप की इच्छा न हो तो कल परसों या आप जब चाहें तब मेरी बिनती पर ध्यान दीजिएगा। पर मुझे भूल मत जाइयेगा-मुझे हताश मत कीजिएगा। मैं अन्न-जल और निद्रा का त्याग करके आप के उत्तर की आशा देखती रहूंगी। यदि और कुछ नहीं तो केवल दया के नाम ही पर आप मेरी ओर देखिएगा।"

माणिक चन्द के हृदय-समुद्र में इस समय विचार तरंग बड़े वेग से उठ बैठ रहे थे। जात-बिरादरी से तो उसका नाकों दम आ गया था। केवल माता-पिता का मोह ही बीच में अपनी टाँग अड़ाता था। एक तरफ दरवाजे पर आई हुई लक्ष्मी का ख्याल और दूसरी ओर माता-पिता की नाराजी! क्या करे और क्या न करे?

"कल नीलाम में से सीधा आप के ही यहां आऊंगा और आप के प्रश्न का उत्तर दूंगा।"

कोमराल्की ने संतोष से उत्तर दिया, "खैर, जैसी आप की इच्छा। देखिए, खूब सोच विचार कीजिएगा। आप विश्वविद्यालय से ऊब गए हैं और जात-बिरादरी से घबरा गए हैं। पाठशाला स्थापित करने, विद्या का प्रचार करने, और स्वदेशोन्नति करने के आप के सब विचार पूर्ण हो सकते हैं। इन सब बातों को ध्यान में रख आप हानि लाभ का विचार कीजिएगा। अपने गांठ के लाखों रुपये प्रदान करने के उपरान्त व्याख्यान दे देकर रकमें इकट्ठी करेंगे। भारत वर्ष की प्रजा को उसके सच्चे अधिकार का दर्शन करायेंगे। वर्त्तमान काल के तन्द्रा में पड़े हुए भारतवासियों को सचेत

करने का उचित प्रयत्न करेंगे। पर केवल आप मुझे अपनी बना लीजिए। और फिर देखिए, आपकी इतने परिश्रम से प्राप्त की हुई विद्या किस प्रकार परमार्थ में लगती है। कोच-वान ! गाड़ी साहब के होटल की तरफ़ ले चलो।

गाड़ी चली, होटल आ पहुंचा। कोमरास्की का शरीर गिर पड़ा। "अरे रे ! क्या अब मैं आप से अलग होती हूं ? देखिए, मुझे अकेली मत छोड़िएगा" इस प्रकार बिलखती हुई वह प्रेम मदोन्मत्त-इस समय परवश-होकर रो पड़ी।

माणिक ने दया और दुःख से उसके आंसू पोंछते हु कहा, "आप यह क्या करती हैं ? चलिये मैं, आप को घर तक पहुंचा आऊं। वहां से लौट आऊंगा इतना ही न ?"

"बड़ी कृपा होगी" कहकर कोमरास्की ने कृतज्ञता प्रकट की। गाड़ी चली पर कोमरास्की को तो एक ही धुन लगी थी:—

"ग़नीमत जान इम मिल बैठने को;
जुदाई की घड़ी सिर पर खड़ी है।"

वही हुआ। घर आया, गाड़ी ठहरी। साईस ने चट दर-वाज़ा खोल उनको उतारा। गाड़ी घुमाकर खड़ी रखने का हुक्म देकर कोमरास्की माणिक को हाथ पकड़ कर भीतर ले गई। आख़िर बड़ी लाचारी से उसने माणिक को विदा किया। "जाओ" शब्द कहते उसका हृदय कांप उठता था। फिर उसने वापस बुलाया और इधर उधर देख कर उसकी बलैयाँ लीं और दोनों अलग हुए। आज के रंग रवैये से नौकर चाकर भी अवश्य कुछ न कुछ तो समझे हो कि:—

"ढंग निराला, शौक़ तुवाला आंखो देखा भाला है;
"तुरंग सब पहिचान गए कुछ दाल में काला काला है।"

अड़तीसवाँ प्रकरण

विवाह करने ही से क्या लाभ है ?

कोमरास्की से विदा होकर हमारे इम्तिहानचन्द उर्फ माणिकचन्द अपने होटल में आ पहुँचे। आते ही वे अपने कमरे में बिछौने पर जा लेटे। मनमें नाना प्रकार के विचारों का तुमुल युद्ध चल रहा था। इससे उनको झपकी तक न आई। कोमरास्की की बातें मान लेने में उनको अनेक लाभ होने की सम्भावना थी। प्रथम तो इन लाभों के ही बारे में वे विचार करने लगे।

इसको अपने आधे अंग की अधिकारिणी बना लेने में अपने जन्म की सहचरी दरिद्रता तो हाय मारकर अपना प्राण दे देगी। यदि वह किसी प्रकार बच भी गई तो यह अवश्य उसको स्वर्गधाम का दर्शन करा देगी। फिर लक्ष्मी के साम्राज्य में अपने विचारे हुए सब कार्य बड़ी सुगमता से सम्पादित हो सकते हैं। धन ही से धर्म है। धन हीन की पूछ कहीं भी नहीं है। दूसरे यह स्त्री स्वयं विदुषी है, इससे अपना गार्हस्थ्य जीवन भी सुख पूर्वक शान्तिमय बीतेगा। मै लाख जात के लिये मर मिटूं, चाहे मैं धर्म की मूर्ति ही क्यों न बन जाऊं परन्तु बिना लक्ष्मी की कृपादृष्टि के इज़्ज़त आबरू घर की ड्योढ़ी के भीतर नहीं आ सकती। बिना इज़्ज़त के ज़िन्दगी में लज़्ज़त नहीं। क्योंकि 'सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति'। फिर मैं इसकी प्रार्थना क्यों न स्वीकार लूं ? इसमें हर्ज़ ही क्या है ? दूसरे विवाह कर लेना भी उत्तम ही है।"

इस प्रकार विचार सागर में वह खूब गोते खाने लगा।

इतने में एक शंका उत्पन्न हुई और वह मन ही मन बड़बड़ाने लगा :—

"नहीं, नहीं, विवाह करने से कुछ लाभ नहीं है। लाभ होने की जो कुछ सम्भावना है वह सब धन के योग से। तो क्या कोमरास्की का हृदय किसी दूसरी ओर नहीं फेरा जा सकता ? फिर विवाह करने की कोई आवश्यकता न रहेगी। मैं यदि इससे विवाह कर लेता हूँ तो मेरे माता पिता के हृदय पर कैसा आघात पहुँचेगा ? मेरे पढ़ने लिखने को संसार किस प्रकार धिक्कारेगा ? प्राचीन पद्धति पर चलने वाले तो अभी भी कहते हैं कि 'जो गिटपिटिया भए सो हाथ से गए।' तब तो मैं भी इस कथन को चरितार्थ करनेवाला कहा जाऊँगा। इसके अलावा जात गई पाँत गई। हिन्दुओं की निगाह में गिर जाऊँगा। विवाह को प्रेमलग्न का नाम मिलेगा एक मात्र धन की लोलुपता से। विवाह होने के उपरान्त फिर कोई परमार्थ का काम हो सके—चाहे धन की कितनीही प्रचुरता क्यों न हो—यह मुझे सम्भव मालूम नहीं देता। उस समय तो विलासोपभोग की लालसा उत्तरोत्तर वृद्धिगत बढ़ती जायगी। यदि संसार में रहकर सत्कार्य हो सकते तो आज सन्यास और वैराग्य का नामोनिशान भी न रहता। विवाह के बन्धन में पड़कर परतंत्र होना और माता पिता के हृदय को कष्ट पहुँचाना; इससे तो विवाह न करना ही लाख बार अच्छा और श्रेयष्कर है।"

इसी प्रकार विचारों की उथल पुथल में प्रायः रात बीत चली। अन्त में उसने यही निश्चय किया कि चाहे किसी प्रकार से हो कोमरास्की को समझा बुझाकर उसकी प्रार्थना अस्वीकृत करनी चाहिए। फिर उसके मनमें यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि, "क्या वह मान जायगी ? वह स्त्री है, युवती है साथ

:ही में धन-धान्य से सम्पन्न है। शास्त्र में भी नारी हठ बड़ा जबरदस्त कहा है। यदि उसने अपनी हठ न छोड़ी तो? ख़ैर, उस समय ईश्वर जैसी बुद्धि देगा वैसा करूंगा।”

इस समय साढ़े पाँच का अन्दाज़ था। आकाश में तारे विलीन हो चले थे। मन्द प्रकाश की आभा छटक रही थी। पौ फटना चाहती ही थी। प्रातःकाल के सब लक्षण व्यक्त होते जाते थे। होटल के नौकर चाकरों की दौड़ धूप उसको कर्ण गोचर होने लगी। वहाँ चाय तैयार थी। चाय पीकर वह थोड़ी देर बाद बाथरूम (स्नानागार, जल घर) में गया। इतने में उसको बुलाने को कोमरास्की की गाड़ी आ पहुँची। ज्योंही वह नहा धोकर अपने कमरे में आया कि उसने कोमरास्की के कोचवान को वहाँ खड़ा पाया। कपड़े पहिन कर वह तुरन्त गाड़ी में सवार हुआ। प्रायः सात बजे के लगभग वह कोमरास्की के इन्द्र-भवन-सदृश भवन में आ पहुँचा।

कोमरास्की बड़ी आतुरता से अपने भावी पति की प्रत्याशा करती हुई घर के दरवाज़े ही पर खड़ी थी। माणिकचन्द के आते ही वह कम्पाउंड के सामने आई और हाथ पकड़ कर उसको ले गई। कमरे में टेबुल पर पहिले ही से नास्ता तैयार था। उस कठपुतली ने बातचीत करने के पूर्व उससे नास्ता कर लेने का आग्रह किया। नास्ता करने के लिये जब कोमरास्की सामने टेबुल पर आ बैठी तब उसके मुख और नेत्रों को देखने का माणिक को पूर्ण अवकाश मिला था। उसका चेहरा उतरा हुआ नज़र आता था और आँखें लाल हो गई थीं। इससे वह तत्काल अनुमान करसका कि यह प्रमदा भी रातभर सोई नहीं है। वास्तव में बात भी ऐसी ही थी। मानवी प्रकृति सर्वत्र समान ही है। कोमरास्की के मनमें भी रातको,

"कल माणिकचन्द न जानें कैसा उत्तर देगा, वह मुझे पत्नी के तौर पर स्वीकार करेगा कि नहीं ?" ऐसे अनेक विचार और संशय उठ रहे थे, जिससे रात भर निद्रादेवी उसके नेत्रों में प्रवेश न कर सकी। क्योंकि निन्द्रा का सम्बन्ध शान्ति के साथ है क्षोभ के साथ नहीं।

पेट पूजा करके वे दोनों बैठक में गए। माणिक चन्द एक जापानी आराम कुर्सी पर लेट गया, कोमरास्की भी टेबुल के सहारे एक कुर्सी पर बैठी।

इस के बाद कोमरास्की ने बातचीत शुरू की, " मिस्टर माणिक चन्द आपने मेरी बातों पर क्या विचार किया ? मैं तो समझता हूं कि आपने उस पर भरपूर विचार किया होगा। और आप के मुखारविन्द से मैं सन्तोषदायक ही उत्तर सुनने की आशा रखती हूँ।"

माणिक चन्द ने दुमानी जवाब दिया, " मैं भी ऐसी ही इच्छा रखता हूं कि मेरे उत्तर से आप को सच्चा सन्तोष प्राप्त हो। तमाम रात मैंने आप की बातों पर विचार किया, पर मेरा यह कहना है कि विवाह करने ही में क्या लाभ है ?"

"विवाह करने ही में क्या लाभ है ? यह कैसा सवाल ?" कोमरास्की आश्चर्य से उस वाक्य को दुहराते हुए टकटकी लगाये उसके मुख की ओर देखने लगी।

माणिक चन्द ने अपने वाक्य का समर्थन करते हुए कहा, "मेरा प्रश्न आप के मन में कदाचित् आश्चर्य तो उत्पन्न करेगा, पर जब आप उस पर विचार करेंगी तो वह आप को श्रेयस्कर ही समझ पड़ेगा। पति-पत्नी के सम्बन्ध से बन्धुभाव-मित्र-भाव-का प्रभाव कहीं अधिक पड़ता है। मैं आप के साथ विवाह करूँ और आप मेरे इच्छानुसार अपने धन का व्यय करें-इसमें

क्या प्रत्यक्ष स्वार्थ परायणता नहीं नजर आती? मैं एक आर्यावर्तवासी हूं। मेरे देश में पत्नी पति की दासी मानी जाती है। पति होने के बाद, मैं आपको उसी मान की दृष्टि से देख सकूंगा कि नहीं, जिस मान की दृष्टि से मैं आप को अभी देखता हूं, इस बात में मुझे शंका है। दूसरे संसार-चक्र ऐसा विचित्र और विलक्षण है कि संसार में प्रवेश कर के मेरी परमार्थ की बुद्धि ऐसोही बनी रहेगी कि नहीं, यह भी मैं निश्चित नहीं कर सकता। इसके अलावे मैं अपने माता पिता के मन को दुःखी कर के आप को सन्तोष देना उत्तम नहीं समझता। कदाचित् मैं जाति सम्बन्ध तो तोड़ सकूं, पर माता पिता का तो मुझे अवश्य ख्याल करना चाहिए। ईश्वर की कृपा से आप धनाढ्य हैं और परतन्त्रता की बेड़ी में बंधी नहीं है। उसी प्रकार मैं भी अभी संसार के झगड़ों से मुक्त हुआ हूं। ऐसी मुक्तावस्था में यदि मित्र भाव से भारतवर्ष के हित का प्रयत्न करूँ तो क्या अधिक उत्तम नहीं होगा?”

अब क्या उत्तर देना चाहिए सो कोमरास्की के ध्यान में नहीं आया। आकाश में बादल के आ जाने से जिस प्रकार सूर्य आच्छादित हो जाता है, उसी प्रकार गम्भीर विचार रूप बादल के आ जाने से उसके मुख-चन्द्र पर निस्तेज स्वरूप आच्छादन आ गया। उसने बोलने की अनेक चेष्टाएँ कीं, पर शब्द को ओष्ठरूपी दुर्ग को भेद कर बाहर आने का मार्ग नहीं मिला। उसकी ऐसी अवस्था देख कर माणिक चन्द ने फिर अपनी गाड़ी छोड़ी।

“आप ने मेरे जैसे दीन मनुष्य पर जैसी कृपा दिखाई है उसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। मेरे लिये आप, यहाँ तक कि, अपने धर्म को-अपने प्रियतम बुद्ध धर्म को-त्याग वेद

धर्म को मानने के लिए तैयार हो गई हैं; पर मैं आप को उस मार्ग पर ज़बर्दस्ती ले जाना नहीं चाहता। बुद्धधर्म और वेद-धर्म यदि सच पूछिए तो भिन्न नहीं हैं। आप खुशी से मेरे साथ भारतवर्ष में चलिए, वहाँ व्याख्यान देकर विशुद्ध बुद्ध धर्म की उन्नति कीजिए, और धन की सहायता से मेरे विचार के अनुसार वहां की शिक्षण-पद्धति में भी सुधार कीजिए। इस प्रकार बुद्धदेव की पवित्र जन्मभूमि में रह कर पवित्र होने की आप की धारणा भी सफल होगी और आप के धन की बदौलत भारतवर्ष की पतित प्रजा का भी कितने अंशों में उपकार होगा। हम पति पत्नी के सम्बन्ध से यदि नहीं तो पवित्र प्रेम से तो एक साथ रहेंगे। क्या इससे आपके मन को सन्तोष नहीं होगा ?"

बोला तो नहीं जाता था, फिर भी मन को एक दम दृढ़ कर के कोमरास्की कहने लगी, "मुझे आप से ऐसे उत्तर की आशा न थी। क्या आप पति-पत्नी के प्रेम को अपवित्र प्रेम मानते हैं ? यदि ऐसी बात होती तो आज हम लोग इस विश्व का अस्तित्व भी नहीं देख सकते थे। केवल परमार्थ की साधना मात्र के बजाय यदि हम लोग स्वार्थ और परमार्थ दोनों की साधना करें तो क्या हानि है ? भारत वर्ष में स्त्री यदि दासी मानी जाती है तो मैं कुछ सेठानी होना नहीं चाहती। मैं स्वयम् आपकी दासी होने की इच्छा रखती हूं, यह मैंने आप से पहिले ही कह दिया है। माणिक चन्द, आप इस प्रकार के वादविवाद उपस्थित कर मेरे प्रेम की परीक्षा तो नहीं करते ? मुझे तो यही मालूम पड़ता है। पर मेरा प्रेम दृढ़ है-बज्र सदृश है-यह आप निश्चय जानिएगा।"

माणिक—मैं पति-पत्नी के सम्बन्ध को अपवित्र नहीं

मानता; परन्तु बन्धुभाव को, विषय सुख से रहित होने के कारण, अधिक पवित्र और उत्तम मानता हूं। आप के प्रेम की परीक्षा करने का विचार तक उत्पन्न होना सर्वथा अशक्य है। आप के प्रेम की दृढ़ता के विषय में मुझे ज़रा भी शंका नहीं है। मैं जो कुछ कहता हूं वह सर्वथा निष्कपट और सत्यता से कहता हूँ।"

इसके उत्तर में कोमरास्की ने कहा था, "मैं विवाह करूंगी तभी ही अपना धन भारतवर्ष के लाभ के निमित्त व्यय करूँगी अन्यथा नहीं-यह विचार आप एक दम अपने हृदय में से निकाल दीजिए। एक बार मैंने जो कुछ कह दिया वह निराश होते हुए भी मैं पूर्ण करूंगी। मेरा धन आर्यावर्त के लाभ के निमित्त ही है। अब वह अन्य किसी कार्य में व्यय नहीं हो सकता।"

"आपकी इस दृढ़ता और उदारता के लिये मैं आप का जितना कृतज्ञ हूं उसे शब्दों में नहीं कह सकता। आपकी जितनी प्रशंसा करूं उतनी थोड़ी है।"

"आप का कथन और आपके विचार कदाचित सर्वथा ठीक भी हों तब भी आपकी ओर से मेरी आशा अपने दिल से निकाले नहीं निकलती। इस समय मेरे हृदय में निराशा का इतना अधिक भयंकर आघात पहुंचा है कि स्त्री जाति उसको कदापि सह नहीं सकती। अतएव इस समय हम लोग इन बातों को छोड़कर यदि दूसरा विषय उठावें तो अच्छा हो। संध्या समय पुनः इस बात की स्वस्थ चित्त से चर्चा करेंगे। पर आप मेरी इतनी प्रार्थना तो अवश्य ध्यान में रखिएगा कि एक स्त्री का हृदय दुखाना अच्छा नहीं होता। इतने पर भी आप मुझे

अपनाने का विचार करने का श्रम उठाइयेगा। यदि अपनी नहीं तो मेरे ही हित की धारणा अवश्य रखियेगा।"

यह विषय बन्द हुआ और दूसरे विषयों पर गपशप होने लगी। पहिले ही विषय में प्रायः दोपहर हो गया था।

उनचालीसवाँ प्रकरण

दो प्रेमियों का मिलाप

दिन के बारह बजने का समय है। धूप ऐसी निकली है कि हरिन के सिर फटे पड़ते हैं। शरबत वालों की दूकानों पर ग्राहक टूटे पड़ते हैं। एक गिलास पानी पीने पर चार गिलास पसीना निकलता था। नए पहिने हुए कपड़े सब खराब हो जाते थे। नशे में चूर गोरों की लातों से रोज दो एक पंखा कुली के स्वर्ग गमन की चर्चा अखबार में निकलती थी। अखबार के सम्पादक अपने कलम के घोड़ों को काग़ज के मैदान में सरपट दौड़ा कर इस घातकीपने को रोकने के लिए पुकार कर रहे थे। कुम्भकरण की निद्रा में सोई हुई सरकार इनको एक कान से सुनती और दूसरे से निकाल देती थी। न दाद न फरियाद। म्युनिसिपालिटी के नल के रोने, जनता की आँखों में धूल का बेशुमार भंडार, ऐसी परशुराम की भूमि में बसी हुई मोहमयी नगरी को उष्णकाल में अवस्था थी। इन दिनों में अपोलो बन्दर पर नेकटाइ, कालर बाँध अंग्रेज बने हुए कितने पारसी नवयुवक, चाहे जितनी गरमी पड़े पर सिर से पगड़ी न उतारने वाले लकीर के फकीर वृद्ध लोग, और रंग बिरंग की साड़ियों से सुसज्जित पारसी प्रमदाओं

की कई टोलियाँ टहल रही थीं और रह रह कर समुद्र की ओर देखती थीं। उस बन्दर की शोभा के विषय में इतना ही कहना है कि जिस को देखना हो वह ट्राम, मोटर वा रेकशा पर सवार हो स्वयं वहाँ जा के देख आए। जाना चाहे तो प्रायः सन्ध्या समय जाय तो अधिक अच्छा है। क्योंकि फैशन की शौकीनी पाउडर का लेप, कृत्रिम शृंगार और आशिकों का इन्तजार आदि की बहार देखने का वही समय है।

अपोलो बन्दर पर पारसी और पारसिनों का एक बड़ा समूह घूम रहा है। एक तरुण अबला भी दाहिने तरफ के कोने में बैठी हुई आँखें फाड़ फाड़ कर देख रही है। बारम्बार वह दीर्घ साँस खींचती है। वह सुन्दरी हलके रंग की एक उत्तम रेशमी साढ़ी पहिने है। प्रिय पाठको! आपने तो इस युवती को पहिचान ही लिया होगा। यह पारसो महिला और कोई नहीं है- यह हमारी कथा की नायिका जरबानू ही है। चातक की तरह वह अपने प्रेमी के दर्शन रूप स्वाति बूंद के लिये समुद्र पर दृष्टि दौड़ा रही है। इतने में दो स्टीमबोट आए। एक में जर तथा मंचेरशाह और दूसरे में माणिक जी के माता पिता तथा भाई बैठे।

इतने में माणिक के सब से छोटे भाई ने चिल्लाकर कहा "मांजी, मांजी, वह देखिए जो स्टीमर दूर से नजर आती है उसी में भाई आवेंगे। सब कोई उसी तरफ देखने लगे। कितनों ने दुर्बीन लगा कर देखना शुरू किया, और कितनों के हृदय स्टीमर का धूंआ देख कर उछलने लगे। थोड़ी ही देरमें सबकी मनोकामना सफल हुई। स्टीमर आ पहुंची। आगबोट भी स्टीमर के आस पास समुद्र की सतह पर नाचने लगी। स्टीमर पर से माणिक जी की दृष्टि पहिले पहिल अपने माता-

पिता तथा भाइयों पर पड़ी। हर्ष से उछलते हुए हृदय को दोनों पक्षवालों ने अपने हाथ से दबा कर धैर्य धारण किया। सैकड़ों प्राणियों में से बचे हुए अपने हृदय के टुकड़े को छाती से लगाने के लिए उत्सुक माता पिता की अधीरता, सहोदर भाइयों की भाई से मिलने की उत्कंठा, तथा माणिक जी का स्टीमर पर से उतर कर मिलने तथा हर्ष के अश्रु बहाने की उत्सुकता का दृश्य आदि चित्रित करने की शक्ति तो किसी महान कवि की लेखनी में ही हो सकती है। माणिक जी अपने सम्बन्धियों के देखने में इतने लीन हो गए थे कि उनको इस बात का स्वप्न में भी विचार न आया कि दूसरी तरफ भी कोई किसी से मिलने के लिए आया होगा। अर्थात् जर के आगमन से वह बिल्कुल अनभिज्ञ था।

दूसरी तरफ दूसरी स्टीमबोट में से जर की आँखें माणिक जी के बदन की तरफ देख पुकार पुकार कर कह रही थीं कि:—

'देख तो ओ सरे तुरबत से गुजरने वाले
हम वही हैंगे तेरी चाह में मरने वाले।'

मन "मुझे देख मुझे देख" यों पुकार रहा था; पर व्यर्थ। माणिक उस तरफ झाँकता भी न था। तिस पर भी जर का हठीला हृदय इसी प्रकार कह रहा था:—

"वह हमे देखे न देखे हम उन्हे देखा करें

अन्त में सीढ़ियाँ लगीं। मुसाफिर उतरे। माणिक जी भी उतरे। उनके सगोंने बार बार उसको छाती से लगाया। आँसुओं की धारायें बहने लगीं। बलैयाँ ली गईं। ईश्वर को धन्यवाद दिया गया। पुष्प की मालाएँ पहिनाई गईं। स्टीम बोट बन्दर की तरफ घूमी। दूसरी स्टीम बोट के लोगोंने हर्षनाद किया। माणिकजी ने उस तरफ़ नज़र फेरी।

अकस्मात् चार आंखें हुईं । जर को चक्कर आ गया । मुख पर रूमाल डाल कर वह बैठ गई । मंचेरशाह के यहाँ विवाह का आनन्द लूटने आया हुआ एक रंगून निवासी धनाढ्य सेठ भी उतरा था मुबारकबादी की नाद में जर का किसीने ख्याल तक न किया । जर तो वास्तव में माणिक जी को देखने ही आई थी । वह मंचेर शाह के यहाँ ही उतरी थी । आगन्तुक मेहमान के स्वागत के बहाने वह अपने प्यारे को देखने गई थी । माणिक जी वाली स्टीमबोट तो किनारे भी लग गई । गाड़ियोंमें बैठ कर वे सब घर की तरफ़ रवाना भी हो गए । मंचेरशाह वाले भी अपने मेहमान को लेकर अपने बंगले पर पहुंचे । जर भी अपने कमरे में, जिसमें वह उतरी थी, आकर थकावट तथा हर्ष से एक आराम कुर्सी पर जा पड़ी । थोड़ी देर बाद मन शान्त कर के उसने एक पत्र लिखा। एक आदमीके हाथ उसको भेजा । चिट्ठीमें यह लिखा थाः—

"मेरे प्राणेश्वर,

आपने मेरी तरफ निगाह फेरने में भी कंजूसी की, पर आपके चितवन की भूखी चक्कर न आने तक बराबर एक टक से आपके दर्शन करती रही । यात्रा के श्रम से थके हुए अपने नाज़ुक बदन को आज तो विश्रान्ति दीजिए । कल सन्ध्या समय छः सवा छः बजे के समय महालक्ष्मी तोपखाने के पास मिलने की कृपा कीजिएगा । बस मेरी यही विनती है ।"

एक कविने लिखा है—

> 'होती ज़रूर इश्क में है दिलसे दिलको राह;
> दोनो तरफ़ से प्यार हो, दोनों तरफ से चाह ।'

दूसरे किसी कविने कहा हैः—

"इश्क में यह बात न हो क्या माने ?
जज़्बे कामिल में कमालात न हो क्या माने ?
इश्क बाज़ी में करामात न हो क्या माने ?
जिसको जी चाहे मुलाक़ात न हो क्या माने ?"

तब तो यह सिद्ध होता है कि प्रेम में आकर्षण, शक्ति है। यदि यह सत्य नहीं है तो कविने फिर ऐसा क्यों लिखाः—

लैलीने फस्द ली थी तो मजनू को खूं बहा :"

भक्तशिरोमणि महात्मा तुलसीदास जीने भी लिखा है—

जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू।

सत्य है, हृदय एक प्रकार का तार आफिस है। पाठक ने यदि बिजली-विभाग में नौकरी की होगी तो उसको माशूक के एक एक क्षण के तार मिले होंगे। वह हाय ही किस काम की कि जिसने हृदयको कम्पायमान नहीं किया? वे नेत्र ही किस कामके जिन्होंने अपने लक्ष्य को आर पार छेद कर न देख लिया हो? जिस समय जर के मन में पत्र लिखने का विचार उत्पन्न हुआ था, उसी समय माणिक जी के मन-माणिक्य में भी प्रेम का पानी निकल पड़ा था। उसने भी एक पत्र लिखा। लड़के को बुला ठीक ठीक पता बता उसीदम उसको बिदा किया और कह भी दिया था "उस लेडी से कहना कि यह चिट्ठी एक पारसी स्त्री भूलसे हमारे सेठ के पास दे गई थी, सो सेठने तुम्हारे पास भेजा है।"

"अच्छा बाबू" कह कर लड़का बालकेश्वर की तरफ बढ़ा। दोनों तरफ की यही बात हम को यह चेतावनी देती है:—

"चाहने का मज़ा जब है के वो भी हो बेकरार,
दोनो तरफ हो आग बराबर लगी हुई।"

माणिक जी के पत्र में यह लिखा था:—

"प्राणप्यारी जर,

यद्यपि थकावट और श्रम के कारण बुरा हाल है, फिर भी तेरी खिद्मत में दो अक्षर लिखे बिना दिल नहीं मानता। प्यारी आज तो मैं किसी प्रकार भी घर से नहीं निकल सकता। कल जहाँ हुक्म हो वहीं आकर तेरी खिदमत बजाऊं। तेरा उत्तर आने के बाद मैं थोड़ा विश्राम लूंगा। शरीर में बड़ी पीड़ा है। उत्तर शीघ्र देना।

तेरा सच्चा आशिक
मा० अरदेशर।"

दोनों को दस पाँच मिनट के हेर फेर में पत्र मिले। माणिक जीने तो चिट्ठी लाने वाले को 'सलाम बोल देना' कह कर बिदा किया। फिर उसने पलंग पर कुछ विश्राम लिया। जरा आँखें लगते ही वह महालक्ष्मी तोपखाना और जर की भेंट आदिके स्वप्न जाल में फँस गया। उधर जर अपने प्यारे के पत्र से हर्षोन्मत्त हो कर उत्तर लिखने बैठी।

"मुझे याद करने वाले दिलदार,

गुरूर मत कीजियेगा कि आपही ने पहिले चिट्ठी लिखी है। आशा करती हूं कि मेरी चिट्ठी भी आपको मिल गई होगी। आपका पत्र मिलने के पूर्व ही उसके प्रश्न का उत्तर जिसको गरज थी उसने पहिले हो लिख भेजा है। देखना है कौन अपने ठीक समय से वायदे पर पहुंचता है। आपके आशिक शब्द के प्रयोगपर मुझे बड़ा गुस्सा आता है। क्योंकि यह दरजा तो मेरा है। फिर आप ऐसा कभी मत लिखिएगा।

केवल आपकी,
जर।"

दूसरा दिन आया। यह मिलाप का और दिल्बर के दर्शन का दिन था। आशा की अग्नि को दीप्त करनेवाला प्रातः काल फिर दोपहर और इन्तज़ार की वृद्धि। ओ होहो, पाँच कब बजेगा! कब घर के बाहर निकलूंगी। कब प्रेमी और प्रेयसी के दर्शन होंगे! यही झंखना। क्षण क्षण में घड़ी पर दृष्टि, ऐसा मालूम होता मानो घड़ी बन्द होगई है। फिर पास जाकर उसकी अवाज सुनना और वारंबार नज़ीर का यह मिसरा याद करना—

"हाय कहां मर गए घड़ियाल बजाने वाले ?"

इस प्रकार तड़पते तड़पते चार की गजल बजी। वह उठी। हाथ मुंह धोकर कपड़े बदले! रुमाल पर अतर छिडका। गहने का बक्स खोलकर उसमें से एक मोती की माला गले में, हीरे की तरकी जोड़ी कान में और हाथ में जड़ाऊ चूड़ियां पहिन कर भाड़े की गाड़ी लाने को आदमी भेजा। फिर रूमाल को जो उठा कर सूँघा तो उसकी सुगन्ध पसन्द न आई इसलिये उस रूमाल को खिड़की के बाहर फेंक दिया। तुरंत दूसरा रूमाल निकाला, उस पर काश्मीर से लाया हुआ मिट्टी का इत्र छिड़का और एक शेर को पढ़ा। यह शेर अतर बेचने वाले ने अतर देते समय कहा था। जर को यह बहुत पसन्द आया था, इससे उसने उसको लिख लिया था। सचमुच में इस शेर का एक एक शब्द मोती के दाम के बराबर था। शेर यह था:—

"इत्र मिट्टी का लगाना चाहिये पोशाक में;
ख़ाक से रग़बत रहे मिलना है एक दिन ख़ाक में।"

गाड़ी आई। शीरीन से जर ने हवा खाने जाने का बहाना किया और वह गाड़ी पर सवार हो गई। गाड़ी वाले से तोप-

खाने चलने को कहा। दस मिनट में गाड़ी वहाँ आ ठहर गई। इस समय पूरे पूर पाँच बजे थे। सूर्य की मन्द् गति पर जर को बड़ा गुस्सा आया। पर वह बेचारी इतने लम्बे हाथ कहाँ से लावे कि उसको पकड़ कर पयोनिधि में डुबा दे किसी न किसी तरह पौने छः बजे। इधर उधर घूमती, बराबर लोगों के पैर की आवाज सुन वह चिहुंक कर फिर के देखती, गाड़ी की खड़खड़ाहट होने से आशा बाँधती, फिर निराश होती और बार २ सोने की छोटी घड़ी जेब में से निकालती और फिर उसमें रखती थी पर आने वाले का तो अभी तक कुछ पता भी न था। अहाहा !

'ग़ज़ब किया तेरे वादे पर ए एतबार किया,
तमाम रात कयामत का इन्तेज़ार किया।'

छः बजे, अभी तक किसी का ठिकाना नहीं। गुस्से से शरीर लाल हो गया। आवे तो बोलना ही नहीं, ऐसा संकल्प किया। इतने ही में पीछे से साहब जी की आवाज आई। सब संकल्प विकल्प पर पानी फिर गया।

"आइए, आप तो बड़े लोग हैं, समय के बड़े पाबन्द हैं।" इस प्रकार जर बेतहाश बोल उठी।

"क्षमा कीजिएगा, खंभाला हिल के कोने पर एकाएक एक सहपाठी मित्र मिल गया। उसके साथ सभ्यतानुसार बात चीत करने में पांच मिनट लग गए।"

"दूसरे की बातों से तो शान्ति मिलती ही है ? बम्बई के दोस्तों के आगे लाहौर से आए हुए किस गिनती में हो सकते हैं ?"

"लीजिए, अब तो माफ़ कीजिए। यह आपका सेवक गुनाहगार, तकसीरवार और भूलों का भण्डार है। आप

मेरे गुनाहों की तरफ़ मत ख्याल कीजिए आप अपने बड़प्पन और क्षमाशीलता की ओर देखिए।"

"बात बनाने खूब आता है। चलिए उस बेंच पर बैठ कर बात चीत करें।" यह कहती हुई जर उनसे लिपट गई।

बेंच पर जाकर पहिले दोनों कुछ दूर दूर बैठे। हवा खाने वाले आते जाते थे। थोड़ी देर में अन्धकार ने धीरे धीरे अपना साम्राज्य फैलाकर इनको मनमानी बातें करने का खूब मौका दिया। बड़े खुले दिल से इन लोगों की बात चीत हुई। एकाएक आकाश बादलों से घिर गया। अचानक बिजली का एक कड़ाका हुआ। उससे डर कर, 'अरे माँ रे! कह कर जर माणिक जी से लिपट गई। माणिक जीने भी आवश्यकता से भी अधिक विशेष रीति से अपनी प्राणप्यारी को अपने हृदय से लगा रखा और ईश्वर से यह प्रार्थना की कि—

"लिपट जाते हैं वो विजली के डर से,
इलाही ये घटा दो दिन तो बरसें।"

पर आकाश को इतने दिनों में मिले हुए इस जोड़े पर तनिक भी रहम न आया। उसने भादों मास की तरह एक झोंक पानी गिराया और पानी के पत्थरों से इनको मारना आरंभ किया। डाही आकाश ऐसा ही है तभी किसी प्रेमी ने कहा है किः—

"ये दो दिल को एके जा बिठाता नहीं,
इसे वस्ल प्यारों का भाता नहीं।"

जर ने भी वियोग का समय नज़दीक आते देख निगाह भर माणिक के मुख को देखना शुरू किया। पर पलक बीच में आही गई। हाय, प्रेमी जोड़े के सभी शत्रु निकलते हैं। एक गोपी ने ब्रह्मा पर अपने उद्गार ठीक निकाले हैं—

"बड़ो मन्द अरविन्द सुत, जिहि न प्रेम पहिचान,
पीमुख निरखन दृगन के, पलक रची बिच आन।"

माणिक ने छाता खोला और लाचार होकर गाड़ी वाले को बुलाया। गाड़ीवाला भी बड़बड़ाता हुआ आया। दोनों जने गाड़ी में बैठे। थोड़ी दूर जाकर गाड़ी खड़ी कराई; क्योंकि माणिक को खंभाला हिल उतर कर कोट के बाहर से होकर जाना था, और जर को वालकेश्वर जाना था। लाचार होकर अन्त में दोनों अलग हुए। जर ने कुछ कहा हो, ऐसा सुनकर, माणिक जी ने पूछा कि, "डिड यू आस्क मी एनीथिंग (आप ने कुछ कहा है)?"

जर ने उत्तर दिया "यस"।

माणिक जी ने पूछा "ह्वाट (आप ने क्या फर्माया है)?"

"ओन्ली लव मी लिटिल, बट लव मी लाँग (मुझ से प्रेम चाहे थोड़ा ही कीजिये, किन्तु वह चिरस्थायी होना चाहिये) बस साहब जी।" "गाड़ीवाले! वालकेश्वर चलो।" प्रेम की याचना करके जर ने गाड़ी वाले को हुक्म दिया और गाड़ी वालकेश्वर की तरफ दौड़ी।

चालीसवाँ प्रकरण

अब हिन्दुस्तान में चलिए

फिर वही जापान, वही विजातीय जोड़ा, वही गाड़ी वही दरिया का किनारा और वही कोचवान जिनको हम एक बार देख चुके हैं। एक तरफ़ प्रेमजाल में जकड़ी हुई जापानी युवती और दूसरी ओर विद्या, जात बिरादरी, निर्ध-

नावस्था आदि से ऊबा हुआ शुष्क हृदय माणिकचन्द बैठा है। कौन पहले बोले, दोनों यही विचार कर रहे हैं।

अन्त में प्रेम के पंजे में फँसी हुई कोमरास्की ने उत्कंठा और विनीत भाव से पूछा, "मेरे लिये आपने अपने हृदय में क्या छिपा रखा है, इस बात को जानने को मुझे बड़ी आतुरता हो रही है। माणिकचन्द ! कहिए, मेरे हृदय को शान्त कीजिए; मुझे उत्तर दीजिए, आपकी निर्दयता का अभी नाश हुआ कि नहीं ?"

"हाँ, मैं आपका पाणिग्रहण करने में लेशमात्र भी······" नींद से जगे हुए के समान, चिहुँक कर वह घबड़ाया और फिर विचार सागर में गोते लगाने लगा।

आशा और निराशा में डाँवाडोल होती जापानी अबला ने आतुरता से पूछा। "लेशमात्र क्या ?"

फिर माणिकचन्द चिहुँका और उस जापानी युवती ने क्या कहा, इसे भली भांति न समझकर आगे कहने लगा,—"हां, मैं ऐसा करने में लेशमात्र भी अड़चन नहीं देखता परन्तु—"

"ओ, बस हो गया मैं आपकी—परन्तु 'परन्तु' कहकर आप रुक क्यों गए ? आगे आप क्या कहते हैं ?" यों पूछती हुई कोमरास्की ने आवेश से माणिकचन्द के हाथ पकड़ कर अपनी आँखों पर दाबे।

माणिक विचार-सागर से निकल कर अपने मनपर काबू रखते हुए कहने लगा, "नहीं ऐसा मत कीजिए। ठहरिए, मैं जो कुछ कहता हूँ उसे ध्यान से सुन लीजिए।"

"अरे कहिए न, फिर आपके विचारों ने क्या चक्कर खाया ?" किनारे पर से फिर बीच दरिया में जा गिरते हुए व्यक्ति की तरह निस्सहाय होकर कोमरास्की कहने लगी।

"देखिए आपको केवल प्रेम की झंखना है। आप मेरी प्रीति प्राप्त करने के लिये आतुर हैं और मैं यूनिवर्सिटी तथा समाज से ऊबा हुआ, कायर भया हुआ, बेकाम सा मनुष्य हूँ। आपने विद्या और लक्ष्मी की गोद में दिन काटे हैं और मुझ अभागे ने सर्वत्र ठोकरें खाई हैं, मुट्ठी भर अन्न से किसी तरह अपना पेट भर लेता हूँ। अतएव मैंने आपको जैसा उपदेश दिया है उस प्रकार यदि आप चलेंगी तो आपका अधिक लाभ होगा। पर आपकी विवाह ही करने की इच्छा हो तो वैसा करने के लिये भी मैं बाध्य हूँगा।"

"यह सुनने के बाद कि, आपने मुझे स्वीकार कर लिया है, मैं भरे समुद्र में कूद पड़ने के लिये भी तैयार हूँ यदि आप वैसी आज्ञा करें।"

"यदि विवाह माता पिता की सम्मति से किया जाय तो कैसा ?"

इस बात पर कोमरास्की के राजी हो जाने से माणिकचन्द्र ने कहा, "मैंने अपने प्राण बेचकर भी एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय स्थापित करने की प्रतिज्ञा की है। उस कार्य के लिये एक करोड़ रुपये की रकम इकट्ठी करने का महान् कार्य हम दोनों को अपने सिर पर उठाना पड़ेगा। सब से पहिले मैं आप ही से भिक्षा माँगता हूँ कि हे जापान देश की देवी, प्रिय भारतवर्ष के लाभ के लिये आप मुझे पचीस लाख रुपये की पहिली भिक्षा दीजिए।"

"इसी दम मैं संकल्प करती हूँ कि कदाचित् बुद्धदेव मुझे निराश भी करें तो भी आप के परमार्थ की शुभ कामनाओं को पूरा करने के लिये पचीस लाख रुपये एक ही हफ्ते के अन्दर आप के चरणों में आ गिरेंगे।"

"धन्य, धन्य, आप को कोटिशः धन्यवाद है ! परमार्थ प्रेमी विदुषी ! आपकी जननी को, जिसकी कोख में आप ऐसी उदारचित्त बाला ने जन्म लिया है, अनेक धन्यवाद।"

"मेरा अन्तःकरण यह कह रहा है कि यदि आप अपनी गाँठ से मुझे इस बादशाही रकम को देकर मेरे साथ व्याख्यान देने को कमर कसेंगी तो मेरा दीन देश इस गई बीती हालत में भी आप की कृतज्ञता नहीं भूलेगा। आप देखिइएगा कि नादिरशाही ओडायर शाही और डायर शाही के अत्याचारों से पीड़ित, धूर्त चालबाज व्यापारियों से दरिद्र किया हुआ, पराधीन, मुट्ठी भर अन्न के बदले में चक्की की तरह पीसे जाने वाला, विचारा हमारा गरीब देश अपने हितेच्छु पर किस प्रकार स्वर्ण की वृष्टि करता है। मैं साहस पूर्वक कहता हूँ कि एक वर्ष के भीतर ही एक करोड़ की रकम हम लोग सुगमता से एकत्र कर सकेंगे। जिस दिन हम लोग इस बीड़े को खाकर अपना मुंह लाल करेंगे उसी दिन ईश्वर के सम्मुख सच्चे अन्तःकरण से बँध कर हम दोनों पति पत्नी का उपनाम धारण करेंगे। तब तक हम लोग भाई बहिन के प्रेम में ही सुखी रहेंगे। कहिए यह आप को मंजूर है ?"

"इसके लिए मैं दिलोजान से तैयार हूं। जो आप की इच्छा वही मेरी इच्छा। आप को जो अच्छा लगे वही मेरा पथ्य। यह शरीर ही अब आपका है:—

'दिल तेरा जान तेरी आशके शैदा तेरा;
सब यह तेरा है तो फिर किस लिए मेरा तेरा ?'

"कब से हम लोगों को अपने निश्चित कार्य का श्री गणेश करना चाहिए ?"

कोमरास्की—आज से, इसी घड़ी से। धर्म के कार्य में

किस बात की सुस्ती ? कल प्रातःकाल आप होटल को सलाम कर अपने घर में आ बैठिए। अपने सेठ को भी अपने विचार लिख भेजिए कि नीलामी भी दो दिन में खतम हो जायगी। अब वहाँ ख़रीदने योग्य वस्तु भी नहीं है। जो कुछ ख़रीद का माल आप भेज चुके हैं उसका हिसाब भेज दीजिए। फिर हम लोग अपने मिलकियत-सम्बन्धी विचार करेंगे कि इनको कैसे बेंचना या रुपये किस प्रकार वसूल करना। आज से यह घर बार; गाड़ी घोड़े, नौकर चाकर, रुपया पैसा और यह अबला आप की सेवा में अर्पित है। आप इनका जिस प्रकार चाहें उपयोग करें। अब मैं अधिक नहीं कहूँगी किन्तु करके दिखा दूंगी।

माणिक—पर ध्यान रखियेगा कि मैं ईश्वर को तो मानूंगा ही, बुद्धदेव की हर एक बात और उनके हर एक सिद्धान्त का आदर करूंगा पर नास्तिकता की स्वीकृति मुझसे नहीं की जायगी। हाँ, यदि मेरी शंकाओं का समाधान हो जायगा तो मैं दुराग्रह भी नहीं करूँगा।

"आपके प्रताप से मैं भी वैसा ही करना सीखूंगी। अब तो सही:—

'राजी हैं हम उसी में जो यार की रज़ा है।'

कल अख़बारों में हम अपनी स्थावर सम्पत्ति के बिक्री का समाचार लिख भेजेंगे। फिर आपको मैं अपनी जागीर और बाग-बंगले घूम कर दिखा दूंगी। जवाहिरात भी मेरे पास उत्तम कोटि के हैं। उनको यहाँ न बेचकर भारतवर्ष ही में बेचेंगे। अब जैसे बने वैसे चटपट सब व्यवस्था करके हिन्दुस्तान चलिए।"

इकतालीसवाँ प्रकरण

तूफ़ान का बयान

आज शामको ६ बजे सीरीन का व्याह बड़े धूम धाम से हो गया। विवाह में जाति-बिरादरी तथा अन्य प्रतिष्ठित सज्जनों की खासी भीड़ थी। रात को ८ बजे विवाहोपरान्त लोग टेबुल पर व्यालू करने बैठे। भोजन के बाद सब लोग अपने २ घर चले गये।

इस मंगल उत्सवमें अपनी वार्ता की मुख्य नायक नायिका-माणिक जी और जर भी हाजिर थीं। सब लोगों के चले जाने के बाद सब घर के लोगों ने मिलकर "स्टीमर कैसे डूबी और माणिक जी कैसे बचे?" यह सुनने की इच्छा प्रकट की। माणिक जी की माता जर के पीछे पागल को तरह इस उद्योग में घूमने लगी कि किसी तरह मेरे पुत्र को यह अमूल्य रत्न प्राप्त हो जाय।

सब के बहुत आग्रह करने पर माणिक जी ने कहना शुरू किया कि, "मुझे जिस समय फ़ौज के साथ यहाँ से जाने का हुक्म मिला था उस समय मैं एक ऐसे काम में लगा था कि बम्बई छोड़ने का हुक्म मुझे मौत के हुक्म के समान सख्त और प्राण-घातक मालूम हुआ। पर आख़िर नौकरी, और वह भी सरकारी, किए बिना छुटकारा नहीं। मेरा कार्य इतना आवश्यक था कि जिसके किए बिना मेरा भविष्य जीवन एक प्रकार से कंटकमय हो जाता। येनकेन प्रकारेण अपने अफ़सरों से मैंने एक हफ्ते की छुट्टी ली। इस छुट्टी में अपना कार्य कुछ तो पूरा कर सका और कुछ तब भी अधूरा ही रह गया। ईश्वर की इच्छा होगी तो अब वह पूरा हो जायगा।"

यह वाक्य पूरा होने ही अचानक जर से चार नजरें हो गईं। इनके मन के आनन्द का पार न रहा। पर दोनों ने यह बात दाब दी। सुनने वाले न जान सके कि, माणिक जी की प्रस्तावना का क्या रहस्य था:—

'दिलकी बीती को कोई क्या जाने ?
दिलही जाने या दिलरुबा जाने।'

दो चार क्षण रुक कर, माणिक जीने फिर अपना किस्सा कहना शुरु किया, "मेरी फौज रवाना होने के ठीक आठवें दिन, मुझे भी ईश्वर का नाम लेकर, स्टीमर पर पैर रखना ही पड़ा। मैं अपोलो स्टीमर में सवार हुआ था। यह स्टीमर सरकारी नहीं था, इससे गांठका गोपी चन्दन करना पड़ा। मैंने खुशी से अपनी आठ दिन की छुट्टी के कारण इतना खर्च उठाया। मेरी पल्टन के दो चार अफ़सर भी छुट्टी लेने के कारण मेरे ही साथ स्टीमर पर रवाना हुए। उल्लेखनीय पुरुषों में इस स्टीमर में दो एंग्लो इंडियन सम्बाददाता थे। वे लोग अंग्रेज़ोंके कमरे में घुसने के लिये बहुत माथा मारते थे, पर वे उनको अपने कमरे में घुसने नहीं देते थे। 'टाइम्स' पत्र के सम्बाददाता काले आदमियों से तो मुँह ही चढ़ाए रहते थे। ये लोग कहाँ जानेवाले थे इसको पूछने का आपने कष्ट भी न उठाया। दो बंगाली युवक कलाकौशल सीखने के निमित्त चीन जा रहे थे। इन बंगालियों की और उन दोनों अर्ध साहबों की साहब-सलामत में ही झगडा होगया। उन साहबोंने जान बूझ कर इन बंगालियों को कंधे से ठोकराया और उन बंगालियोंने भी 'वन्दे मातरम्' की पुकार करके उन अंग्रेज़ों को दे मारा। बस, फिर पूछना ही क्या था? झगड़े झंझट में तो बंगालियों का अव्वल नम्बर है ही। घमंड में चूर 'गिरे तो भी मियाँ जी

'की टांगें ऊँची'। अंग्रेज़ों को दो एक और अंग्रेज़ोंने आकर छुड़ाया। हमारे साथ हौङ्गकौङ्ग जानेवाले चार सिक्खभी थे। वे आपस ही में आनन्द करते थे। वे किसी लड़ाई-झगड़े में नहीं पड़ते थे। दूसरे भी बहुत लोग थे, एक राज कुमार भी था, जिससे अपना कोई विशेष सरोकार न था। खैर, खुदा का नाम लेकर स्टीमर रवाने हुआ सब अपने अपने रागमें मस्त थे। इतने में एक हिन्दू भाईने 'ओ ओ ओ' करके उल्टी की। मैंने जा कर उसको सुलाया, उसकी आँखों पर कपड़ा डाल दिया। अपनी केबिन में जा थोड़ी शराब और थोड़ी लेमनेट मिला कर ले आया और उसकी नाक बन्द कर'के पिला दिया। थोड़ी देर बाद उसने पूछा कि इसमें शराब तो नहीं थी। मुझ को क्या पड़ी थी जो शराब बतला कर उसका दिल दुखाता। मैंने नहीं कह दिया। इतने में और दो चार लोगों ने 'उर्रर-गुर्रर' किया। अपने हिन्दू भाई पहले उठ बैठे और सभों को हँसने लगे। तीसरे पहर फिर बाप ही का घर समझ, वह अपने पास आया और गिड़गिड़ाने लगा कि, आप एक बार फिर वही दवा दीजिए। मैंने एक बार फिर उसी दवा को दे दी। थोड़ी देर में जो अग्नि चेती तो वह घबराने और सामने मटन, चाय आदि जो कुछ आवे सब स्वाहा करने लगा यहां तक कि कुछ भी नहीं छोड़ा।"

यह बात सुन कर सब खिलखिला पड़े। माणिक जी ने फिर कुछ दम लेकर अपना वृत्तान्त शुरू किया।

'वे सिक्ख लोग कुछ शिक्षित न थे, पर मिज़ाज के वे सच मुच में सरदार थे। स्टीमर की छत पर वे एक तरफ़ थोड़ा बहुत खाने पीने को लेकर एक खँजड़ी के साथ गाते बजाते और मौज उड़ाते थे। कोई मुसाफ़िर किसी की बात में दखल

नहीं देता था। उनमें से एक की आवाज़ बड़ी सुरीली थी। उसने एक ऐसी चीज़ गाई कि सभी मुसाफिर मुग्ध हो गए। यहाँ तक कि अंग्रेज़ लोग भी उस गाने पर फ़िदा होगए। कुछ नहीं तो पाँच सात बार यह गान उन लोगोंने उससे प्रार्थना करके गवाया होगा। उस गाने का टेक भी बहुत मीठा था—

"मेरा परानो खड़ा मैयावाला बोलीओ—"

"मैंने 'मैंयावाले' का अर्थ पूछा तो उत्तर मिला 'भैंस-वाला'। मैंने उससे कहा कि तू सिपाहीगिरी छोड़ किसी नाटक कम्पनी में भरती हो जा। वहाँ अच्छी तनख्वाह मिलेगी। इसी प्रकार आनन्द करते हम लोग सियाम की खाड़ी तक पहुँचे। स्टीमर बिलकुल नई थी। उसकी चाल भी बहुत अच्छी थी। चीन समुद्र में पैर रखते ही हवा ने रुख बदला। आसमान पर बादल घिर आये और थोड़ी ही देर में एक दम अन्धकार छा गया। हवा ने जोर पकड़ा। लहरों ने पहाड़ों का रूप धारण करना शुरू किया देखते ही देखते सब रंग बदल गया। कप्तान, मालम, सरंग और खलासी मन जी तोड़ कर मेहनत करने लगे। पाल फट गई थी। वह उतार ली गई। पानी बाहर निकालने के पंपों पर आदमी दौड़े। रस्सों को और लहासियों को इधर से खोल उधर बाँधी। कप्तान बराबर दुर्बीन से देखता जाता था और नए नए हुक्म करता जाता था। सबसे अधिक और पहिले बंगाली घबड़ाए। कप्तान से वे सवाल पर सवाल करते पर उस धीर वीर अंग्रेज़ ने जरा भी गुस्सा किए बिना बराबर उत्तर दिया। धीरे धीरे प्रश्न कर्त्ताओं की संख्या बढ़ चली। बिचारे कप्तान ने सब को दिलासा देकर बड़ी आजिज़ी से अपने अपने स्थान पर जाकर बैठने का आग्रह किया। अपने आदमियों

को वह बराबर शाबाशी से उत्तेजित करता जाता था। स्वयं जी तोड़ परिश्रम करता और लोगों से काम लेता था। ज्यों ज्यों समय बीतता गया तूफान भी भयंकर रूप धारण करता गया। ऊपर से इन्द्र देव ने भी बुन्दों की मार मारना शुरू किया। स्टीमर एक तरफ झुक पड़ी। सब के चेहरे उतर गए—'यह डूबी, यह गई, हे खुदा, हे परमेश्वर, ओ गॉड, हरे राम या गुरू, ओ अल्लाह' आदि की आवाज़ें एक साथ सुनाई पड़ने लगीं। इतने में समुद्र की लहरों के साथ स्टीमर फिर ऊपर उठ आया, लोगों के मन में कुछ शान्ति हुई। किसकी मजाल थी कि वह सामने आंख उठा सके। लहरें आसमान से बातें कर रही थीं। मालूम होता था कि लहर स्टीमर को एक ही हाथ में हड़प कर जायगी। इधर स्टीमर घड़ी में नीचे धंसता और घड़ी में उतराता था। थोड़ी देर में मस्तूल टुकड़े टुकड़े हो गया। वर्षा ने उस समय अपना रंग अलग ही जमा रखा था। हवा भला क्या किसी से कम थी। क्षण क्षण पर उसकी तेजी बढ़ती जाती थी। अन्त में कप्तान ने लाचार होकर दुर्घटना की निशानी लगाई। दो मिनट में हवा के झोंके से दुर्घटना का चिह्न-स्वरूप लाल वस्तु टुकड़े टुकड़े हो गई। लोगों ने अपने असबाब फेंकने शुरू किए। किसी प्रकार से भी स्टीमर हलकी करने की कोशिश करने में कोई बात उठा नहीं रखी गई। सब मुसाफिर पाणी फेकने वाले पंप पर जान देकर परिश्रम करने को तैयार हो गए। चार चार आदमियों से भी न उठ सकने वाले भारी बोझों को एक एक आदमी ने उठाकर समुद्र को अर्पण किया। प्रायः सभी के शरीर के कपड़े फट गए थे। लोहू टपक रहा था। बंगाली अपने मुंह को कपड़े से ढक कर पड़े पड़े उल्टी कर रहे थे। रिपोर्टर (सम्वाद दाता) ओ गाड, ओ ग्रेशियस

शब्दों को उच्चारण करते हुए सुने जाते थे। वे हरामियों की तरह चुपचाप बैठे थे। एक दो वृद्ध यूरोपिन प्रशंसनीय परिश्रम करते थे। कप्तान और इञ्जीनियर घड़ी में गोदाम में जाते तो घड़ीमें छतपर नज़र आते थे। वे मुसाफिरोंसे धैर्य धारण करके ईश्वर की याद करने की प्रार्थना करते। घन्टों बीत गए, अभी भी तूफ़ान का ज़ोर कम न हुआ। दो चार आदमी बराबर काम करने से घबड़ा कर समुद्र में जा गिरे। सबों ने उनको ईश्वर के अधीन ही सौंपा। वहाँ कौन किसको निकाले और कौन किसकी रक्षा करे। इतने में कप्तान ने इञ्जीनियर से कहा कि यदि पांच घन्टे स्टीमर बच जाय तो एक जापानी और एक अमेरिकन जहाज़ सहायतार्थ आ पहुंचेगा। पर तूफ़ान कहाँ मानने वाला था। इञ्जीनियर ने दो तीन घन्टों की तो हामी भरी। अन्त में लाइफ़ बोट छोड़ कर तैयार रखने की आज्ञा हुई। लोगों की चिल्लाहट, बच्चों का अपनी माताओं से लिपट जाना, प्रार्थना के निमित्त बराबर हाथ उठाना, उठना-बैठना, धमाधम फेंकना, आदि दृश्य एक पत्थर के कलेजे को भी पानी पानी कर सकते थे। इस समय भला कौन होगा जो ईश्वर को याद न करता हो? ऐसा किस का पत्थर का दिल होगा जो अन्तः करण से ईश्वर से प्रार्थना न करता होगा? पर सब व्यर्थ। सब प्रार्थनाओं पर पानी फिर गया। ईश्वर की इच्छा में किसका दख़ल? एक बड़े पहाड़ जैसी स्टीमर पानी के झोंके से इधर उधर मारी मारी फिरती थी। लहर के एक साधारण तमाचे में इतनी शक्ति आ गई थी कि एक साधारण लकड़ी के टुकड़े की तरह वह इस जहाज़ को उछाल कर दूर फेंक देता था। दो तीन घन्टों तक लोग इसी तरह आशा और निराशा के बीच

में झूला किए, पर अन्त में कप्तान और इञ्जीनियर ने हताश होकर एक मत से लाइफ़ बोट समुद्र में उतारे। सब के पहिले बिना पूछे ताछे वे दोनों अर्ध अंग्रेज़ धड़ाधड़ कूद पड़े। कप्तान की आंखों में खून आ गया। पर ऐसे जीवन मरण के समय में उस कुलीन अंग्रेज़ ने एक शब्द भी मुह से न निकाला। उनकी नालायकी पर वह लोहू का घूट पीकर रह गया। उसने लोगों की तरफ़ घूम कर कहा, "सद्गृहस्थों इस समय समय बर्बाद करना व्यर्थ है, आप लोग पहिले उन बच्चों और स्त्रियों को उतारें। इसके बाद वे उतरें जिनको अपनी ज़िन्दगी अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होती हो। आप लोग घबराइये नहीं, अभी स्टीमर की एक घन्टे की ज़िन्दगी है।" लोग इतनी घबराहट में पड़ गए थे कि सबों ने मिल कर हाथो हाथ उन स्त्रियों और बच्चों को उतार कर जहाँ स्थान मिला वहीं बैठ रहे। दोनों बंगालियों में से एक उतरते समय सीढ़ी टूट जाने से समुद्र में गिर पड़ा और देखते देखते ग़ायब हो गया। कप्तान का एक आठ वर्ष की उम्र का बच्चा उतरने जाता था कि कप्तान ने उसका हाथ पकड़ कर खींच लिया और कहा, "सब्र करो, स्थान हो तो जाना नहीं तो मेरे साथ यहीं मरना।" वाहरे हिम्मत और परोपकार। वे पांच सिक्ख बच्चे हरगिज़ न उतरे। वे तो यही कहते कि, "सरदारों बस गुरु महाराज की शरण जायँगे। दो तीन वृद्ध अंग्रेज़ एक यहूदी, और दो तीन हिन्दु अपने को ईश्वराधीन समझ कर, चुपचाप वहीं बैठे रहे। व्यर्थ में उन्होंने लाइफबोटों के डुबाने की कोशिश न की। अन्त में केवल अपनी अरमान पूरी करने के लिए यह सेवक उतरा। उतरते समय मैंने कप्तान से कहा कि आप इस प्यारे बच्चे को मेरे हवाले

कर दें, मैं इसको माँ की तरह पालूँगा और इसको शिक्षा दूंगा। उस दिलदार अंग्रेज़ बच्चे ने, अपने प्यारे पुत्र को गोद में उठा लिया, उसकी पेशानी का चुम्बन लिया और उसको मेरे हवाले किया। फिर उसने अपने जेब में हाथ डाला और एक पिस्तौल निकाली। देखते ही देखते उसने उसको अपने मुँह में दाग दी और अपना प्यारा प्राण ईश्वर को अर्पण कर दिया। लाइफ़ बोट भी समुद्र की सतह पर जिधर लहरें बहा ले जातीं उधर ही भटकते थे। वे ईश्वर के आश्रय पर ही चलते थे। इतने में दो चार दफे धुडुम धुडुम की आवाज़ हुई और वह परी जैसा बिलकुल नया स्टीमर देखते देखते समुद्र में समा गया। यह गया, वह गया बस वह सदा के लिए विदा हुआ। समुद्र की सतह पर मस्तूल, तख़्ते आदि ही नज़र आते और चारो तरफ़ पानी ही पानी था पलक मारने में वह क़ीमती जहाज़, क़ीमती माल और अमूल्य जीवों के सहित ग़ारद हो गया।"

"जब तलक अंजाम बजमें ऐश का जाना न था;
शमअ थी उम्मीदे दुनियाँ और दिल परवाना था,
नशअए ग़फ़लत मगर उतरा तो ज़ाहिर हो गया,
ख्वाब था जो कुछ के देखा जो सुना अफ़साना था।"

"उस सर्व भक्षी समुद्र ने इतना बड़ा स्टीमर अपने पेट में हज़म कर लिया। कुछ भी पता न लगा कि वह किस कोने में समा गया। अब हम लोगों के भाग्य की परीक्षा का समय आया। जिस तूफान में एक इतनी बड़ी स्टीमर का पता न लगा, वहाँ हम लोगों के काठ के टुकड़े की कौन बात ? तिस पर उसके खेनेवाले भी सब मेरे ऐसे बहादुर। लहर का एक झोंका उसको पूरब को तरफ फेंक देता तो दूसरा उसको उठाकर उत्तर का मार्ग बताता। न कुतुबनुमा, न कौंपास, और न

दुर्बीन-कुछ भी नहीं-केवल ईश्वर की कृपा पर डोंगियाँ समुद्र की सतह पर नाच रही थीं। थोड़ी देर तक तो एक दो डोगियां नज़र आईं फिर वे भी ग़ायब हो गयीं। ईश्वर जाने वे किस लोक को ओर बढ़ गईं। तूफानने भी अब धीरे धीरे इतना बलिदान लेकर शान्त होना शुरू किया मेरी डोंगी में आठ स्त्रियां, छः बच्चे और दस पुरुष थे। दो दिन और दो रात हम लोगों ने ग़म खा और आँसू पीकर गुजारी। उल्टी (वमन), भय और निराश की मारी—दो स्त्रियों ने एक यूरोपियन और एक हिन्दू-तीसरे दिन अपने प्राण छोड़ दिये। हे परमेश्वर वह कैसा समय था ! किससे कहूं। बस उस समय हम लोगोंने अपने निर्जीव शरीर को केवल उस कर्ता, धर्ता और विधाता की असीम दया पर छोड़ दिया। अब उन दोनों मृत स्त्रियों के छोटे बच्चों की, 'अरे मा! ओ डियर मम्मा' आदि की हृदय बेधक पुकार हम लोगों का हृदय बेध रही थी। सभी भूखे प्यासे थे, थके थे, बदन पर के सब वस्त्र तर थे। तिस पर भी ऊपर से निर्दई लहरें आआ कर पानी की मार से बाज न आती थीं। जिनमें कुछ भी शक्ति बची थी वे पानी निकालते थे और बाकी के बेहोश पड़े थे। मैं अपनी अमूल्य अमानत की दिलो जान से ताकीद और सम्भाल रखता था। और उन मरी हुई दोनों स्त्रियों के बच्चों को फुसलाता था। हर एक आदमी परमेश्वर का नाम लेकर चारो तरफ देखते थे कि कहीं किनारा नज़र आजाय, या और कोई जहाज़ नज़र आए। पर काहे को ? दूसरा दिन और रात बीती। इस बार हमारी आंखों ने तीन बच्चों और एक स्त्री को ईश्वर की शरण में जाते देखा। पत्थर का कलेजा करके उन दोनों को भी जलचरों की भेंट किया। अब मुझः पर एक नया

पहाड़ टूटा। कप्तान का वह प्यारा पुत्र भूख प्यास की पीड़ा और पानी की मार के कारण ज्वर का शिकार बन गया था। मैं भी स्टीमर पर की मेहनत, भूख प्यास, सेवा और जहमत से बिल्कुल लाचार हो गया था। पर उस प्यारे कप्तान के पुत्र के लिये मैंने कुछ भी न उठा रखा। पर करही क्या सकता था? उसका शिर दाबता, पैर दाबता, पुचकारता और झूठी आशा बँधाता था, इसके अलावे मैं क्या कर सकता था? दवा दारु तो कुछ थी ही नहीं। अरे हाय! निर्दयी कालने उसको भी अपना ग्रास बनाया। उसने इस गुलाब के फूल के दामन की तरफ़ भी ज़रा ख्याल न किया।"

इन शब्दों को बोलते बोलते माणिकजी का हृदय भर आया। वे चौधार आँसू बहाने लगे और गद्गद् स्वर से आगे बढ़ेः–

"उस बच्चे पर मेरा बेहद प्रेम हो गया था। मेरे शरीर में शक्ति भी नहीं बची थी तिसपर भी मैं उस बुझते हुए दीपक को अपनी गोद में ले कर नाव के सहारे एक तरफ बैठ रहा। प्रार्थनाओं का एक मन्त्र, जो सबके मुंह से निकल रहा था, मेरे बच्चे के मुख में भी बस गया था। जिसको मैं अपने प्राण दे कर भी जीवित रखना चाहता था, उसने भी "पप्पा माणिक, डियर माणिक,आय डाय-आय-आय-डाय-गो!" यों कहते हुए जहांपनाह की पनाह में पनाह ली। मेरी छाती धड़कने लगी। मैं आंखें फाड़ फाड़ कर उस खाली पिंजरे को देखा करता था। मैंने डाक्टरी का अभ्यास किया है। सैकड़ों बल्कि हजारों मुरदे देखे हैं। उनको चीरा फाड़ा भी है; पर इस बोलते हुए सुग्गे ने तो मेरे होश ही उड़ा दिए। यद्यपि वह चल बसा था–मुझे दगा दे गया था-फिर भी मुझे इस बात का विश्वास नहीं होता था। मैं समझता था कि अभी भी ईश्वर उसको खड़ा करेगा।

इस हालत में मैं काष्ठ सदृश पानी के कारण चिमटे हुए उसके गालों को चूमता। हाय, इतने ही में फिर वैसा ही दृश्य। वही तूफानी हवा, वैसी ही राक्षसी लहर, वही अन्धकार, वैसी ही वृष्टि ! निर्दयी बेरहम तूफानी फरिश्तों ने फिर हम लोगों का पीछा किया। मैंने फिसल कर अपने एक हाथ से तो एक तख़्ता थामा और दूसरे से उस लाश को खींच कर अपनी छाती से लगाया। इतने में मैंने अपनी डोंगी को चट्टान की तरफ जाते हुए देखा। देखते ही देखते बेरहम लहर ने हमारी डोंगी को उठा कर पत्थर की उस बेरहम छाती पर दे मारा और उसके टुकड़े टुकड़े हो गए। बस, इतने में मैं बेहोश—"

एक चीख़ हुई। सबने चिहुंक कर पीछे देखा कि पद्लजी की जर मूर्छित हो धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी। आँख की पलक मारने में यह घटना होगई। घबड़ाहट के कारण दौड़ धूप से सब बगीचा भर गया। अपनी प्यारी की बीमारी की दवा करने के लिये माणिक ने सब को रोक दिया। वह स्वयं उसको उठा कर एक एकान्त कमरे में ले गया। वह स्वयं डाक्टर था, इस से दूसरों को शान्ति थी। न कोई दवा न दारू, न कोई दुसरा मंत्र केवल एक आलिङ्गन की गरमी और एक चुम्बन की सुगन्ध की बदौलत उसने जर को होश में ला दिया। पाव घन्टे के बाद फिर वही आनन्द-मंगल और विवाह आदि की बातचीत चलने लगी। वहां से चलते समय माणिक जी की माता ने अपनी और जर की माता की दूर की सगाई बताई और दूसरे दिन अपने यहाँ उसने जर को भोजन करनेका निमन्त्रण दिया। जरबानू ने तुरन्त उस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। क्यों न स्वीकार करे ?

"मन में थी और वैद ने भी कही।
भाया मरीज को, वही तबीब ने कहा।"

बयालीसवाँ प्रकरण

अपनी अपनी ढापुली अपना अपना राग

दूसरे दिन जब माणिकजी के यहाँ भोजन करने जानेवाली थी, माणिक जी की माता सबेरे ही से तैयारी करने लग गई थी। यह देख माणिक जी ने साधारण रीति से पूछा; "माँ, आज किस फेर में पड़ी हो? किसी राजा महाराजा को भोजन करने के लिए बुलाया है क्या?"

हर्षित होकर नवाजबाई ने कहा, "अरे राम, आज एक इन्द्र लोक की अप्सरा को अपने यहाँ भोजन करने का निमंत्रण दिया है। ईश्वर भला करे, मैं भी अपने प्यारे पुत्र का विवाह करूंगी।"

माणिक जीने अचरज से पूछा, "मेरा मां?"

"हाँ बेटा तेरा। तेरे लिये स्वर्ग की अप्सरा ले आऊंगी, देखना। हे ईश्वर, मेरी मनोकामना पूरी कर। मैं तेरे ही योग्य ले आऊंगी।"

"पर मां, यह तूने कैसे शेखचिल्ली के विचार बाँधे हैं? अभी तो मेरा विवाह करने का ही विचार कहा हैं! दो पैसे पैदा करने का तो ठिकाना नहीं और चले विवाह करने। यह गले में नया तौक़ बाँध कर क्या करना है?"

माता ने कहा, "अरे जा रे बेटा, तुझे किस बात की चिन्ता? तू पढ़ा लिखा है, तू तो लात मार कर भी पैसा ला सकता है। फिर तू क्यों इतना घबड़ाता है?"

"नहीं, नहीं मां! आप इस तरह मुझ से पूछे बिना अपनी मनमानी मत कर बैठना। किसी फूहड़......"

"अरे चुप रहो, चुप। जाना, बड़े चतुर की पूंछ बन गया है। तूं देखते ही पागल बन जायगा। फिर तू उसी से विवाह करेगा, और मैं, तभी सही जब तरसा तरसा कर तेरा विवाह करूं।"

"तुझे मेरी शपथ है। मैं पागल भी बनूंगा और आप लोग लैला मजनूं का हाल भी न देखेंगे। हा-हा-हा-हा-"

इसके बाद नवाजबाई अपने काम धन्धे में लगीं। माणिक जी ने भी जल्दी से जर को एक चिट्ठी लिखी और नौकर के हाथ उसको भेजा। उसको स्वप्न में भी इसका ध्यान न था कि उसकी माँ ने उसकी भावी भार्या ही पर अपनी आँख गड़ाई है। उसने तो भोले भाव से इस प्रकार एक चिट्ठी घस दी—

"माणिक की प्राणेश्वरी,

माया, मोहब्बत और मिठास-पूर्ण प्यार के बाद यह लिखना है कि आज मेरी भोली माता जी ने मेरे लिये एक स्त्री खोजी है। आज उसको भोजन के बहाने मेरे देखने के लिये बुलाया है। ईश्वर न करे कि कोई फ़ैसन की मारी हुई, उद्दण्ड सुशिक्षिता आ मेरे गले पड़े। ख़ैर, यदि कोई शान-सलूक की हो तो गनीमत—पर कोई भी हो, मेरे लिये तो सब व्यर्थ ही है। प्यारी तू आज संध्या को छः सवा छः के समय उसी दिन के ठिकाने मिलना। मैं तुझे आज की सब हक़ीक़त सुनाऊंगा।

तेरा दर्शनाभिलाषी—

माणिक"

नौकर ने आकर जर को चिट्ठी दी। जर ने उसको पढ़ा और खूब हँसी। फिर उसी नौकर के हाथ उसने नीचे लिखा उत्तर भेजा :—

"जर के ज़िगर, संयोग की बात है कि कल के विवाहो-

त्सव में मेरी स्वर्गवासिनी माता जी की एक सखी ने मुझे आज अपने घर भोजन का निमन्त्रण दिया है। मुझे लाचार होकर निमंत्रण मानना पड़ा। अब जाना तो पड़ेहीगा। शायद उसके भी कोई पुत्र हो और मेरी माता जी की सखी ने उसके पसन्द करने के बहाने मुझे भोजन करने के लिए बुलाया हो। ख़ैर, यदि उनका बेटा शान-सलूक का होगा तो मैं भी इन्सानियत से बाज़ न आऊंगी। यदि कोई चिलबिल्ला, बेवकूफ होगा तो फिर आँख-भौं चढ़ाऊंगी। आज वहाँ से आकर मिलना मुश्किल नज़र आता है, अतएव अपनी मुलाक़ात कल पर मुलतवी करने की आप से आज्ञा माँगती हूं।

सदा की आप की दिलवर—

ज़र"

"चारो तरफ ऐसी ही हवा एक साथ कैसे चली? आम के फसल की तरह क्या यह मौसिम विवाह ही का है? और उसमें बुढ़ियाँ, जवान, लड़कियों को निमन्त्रित करने निकली हैं—यह कैसे आश्चर्य की बात है? ख़ैर, जैसी परमेश्वर की इच्छा।"

किसी न किसी तरह भोजन का समय हुआ। दरवाज़े पर गाड़ी की गड़गड़ाहट सुन पड़ी, माणिकजी की आँख दरवाज़े की तरफ दौड़ी। मालिका ने कमरे की खिड़की के बाहर सिर निकाल कर देखा। क्योंकि ज़र ने पहिले ही से उनको देख कर अपना मुंह दूसरी तरफ फेर लिया था। वह घूमकर पीछा देकर [illegible] के साथ घर में गई। माणिक जी अब और भी चक्कर में पड़े। घड़ी में वे मनही मन बड़बड़ाते कि 'ज़र है' और घड़ी में कहने कि, 'वह नहीं है' और कमरे में इधर उधर घूमने लगते। भोजन का समय हुआ टेबुल सजाया गया और सब कोई

भोजन वाले कमरे में गए। चार आँखें हुई। जर तो पहिले ही से जानती थी, इससे उसने दूसरी प्रकार और माणिक अपनी चिट्ठी को याद कर दूसरी प्रकार—इस तरह दोनों मनही मन में हंसने लगे। दोनों का मन इस समय कैसे आनन्द का अनुभव करता होगा, यह उनके मुख का दर्शन करने ही से पता लगता था। जिह्वा और शब्दों में इसका सम्पूर्ण दर्शन कराने की शक्ति नहीं है। भोजन करने के बाद दोनों का परस्पर परिचय कराया गया। इधर उधर की अनेक बातें होने लगीं।

नैवाजबाई—तब मैं यह पूछती हूँ, बेटा जर, क्या तेरे पिता सदा अपने ही यहाँ तुझे रखेंगे ? क्या वे तेरा विवाह नहीं करेंगे ?

जर—मैं अपने बाबाजी के मन की बात कैसे जान सकती हूँ। उनको यदि कोई सलाह देनेवाला नहीं मिलेगा तो वे फिर अपने काम काज में मेरी फ़िकर कहाँ से करेंगे ?

नैवाजबाई—पर बेटा, तेरी क्या इच्छा है ? ईश्वर कृपा करे बाप का बादशाही घर तो सुखदायक होता ही है, पर ससुराल के सुख तो दूसरी ही प्रकार के होते हैं। पति की तो गालियाँ भी पिता के आशीर्वाद से कम नहीं होती।

जर—आपका कहना बिल्कुल ठीक है।

"बेटा मैं तुझसे यह पूछती हूँ कि तेरी विवाह करने की इच्छा है कि नहीं ? शरमाने की इसमें क्या बात है ? कहती क्यों नहीं कि तुझे कैसा वर चाहिए ?" इस प्रकार बुड्ढी ने जर का मन टटोला।

जर—जैसा ईश्वर ने भाग्य में लिखा हो वैसा।

बुड्ढी—यह और कैसी बात ? ईश्वर का इसमें क्या ? यह तो जो इन्सान चाहता है उसको हज़ार हाथों से देने को तैयार

है। तुमने सुना भी होगा कि 'चाहना इन्सान का और बख्शना यजदान का।'

"यदि ईश्वर दे तो मैं ऐसा पति चाहती हूँ जो देखने में सुन्दर, मज़बूत, पढ़ा लिखा, और सभ्य हो। डाक्टरी का जिसने खूब अभ्यास किया हो, सैकड़ों आदमी रोज़ जिसके दरवाज़े पर दवा कराने आते हों। सिविल सरजन हो और बड़े बड़े अंग्रेज़ अफ़सर भी जिसका मुँह ताका करते हों। यदि ऐसा वर मिले तो मैं उसपर निछावर हो जाऊँ।" जर ने बुड्ढी के मन की बात जानकर, माणिक जी ही के सर्वगुण सपन्न जैसे पति के लिये कहा।

बुड्ढी—क्या तू सच कहती है? मैं तेरे दिल के माफ़िक डाक्टरी पास सुन्दर, चालाँक, सभ्य और सरकारी नौकरी करने वाला पति खोज निकालूँ तो?

चालाक जर ने बुड्ढी का हर्ष बढ़ाने के लिए एक मिरची फेंकी "पर वह जहाज़ की नौकरी करने वाला नहीं होना चाहिए।" यह सुन बुड्ढी का मुँह फीका पड़ गया।

बुड्ढी—(बीच ही में) क्या है, क्या है, यह और कैसी शर्त?

"देखिए, न आपके माणिक जी ही को। दयासागर परमेश्वर ने उन्हें संसार में पहुँचाया तभी न? उनकी स्त्री की स्टीमर की बातें पढ़कर क्या दशा होती रही होगी? वह बिचारी तो रो रोकर मर गई होगी? किस प्रकार उसने अपने दिन काटे होंगे?"

बुड्ढी—मेरे माणिक का अभी विवाह कहाँ हुआ है। यह कह कर बात काट दी।

"हाँ—ऐसी बात है? मैं समझती थी कि उनका विवाह

हो गया है । ख़ैर पर आपही कहिए, ऐसी जोखिमभरी जिन्दगी वाले पति के साथ विवाह करने के लिए किसकी हिम्मत पड़े ? स्त्रियाँ तो डर के मारे यों ही प्राण दे देती हैं । क्यों, मैं ठीक न कहती हूँ ?

"इसमें डर की कोई बात नहीं है, बेटी ! यह तो दैवी आकस्मिक घटना हुई थी । यह क्या रोज़ होती है ? स्त्रियाँ यदि ऐसे डरा करें तो पल्टन में नौकरी करने वाले सिपाही, सूबेदार, मेजर, और कर्नल तथा कप्तान आदि सब कुंवारे ही रहा करें । बेटी ! तेरी अपेक्षा तो एक मकड़ी की हिम्मत कहीं अधिक नज़र आती है ।"

"क्यों ऐसी बात है ? मनमें डर नहीं रखनी चाहिए ?"

"डर और किस बात की, बेटी ! संसार में सभी कार्य जोखिम भरे हैं हम घर में बैठे हैं—ईश्वर न करे अगर घर गिर पड़े तो क्या यह कहेंगे कि जान बूझ कर घर गिर पड़ा । इससे घर में न रह कर फिर क्या हमको मैदान में रहना चाहिए ? ये सब झूठे विचार हैं, झूठे ।"

"आप ठीक कहती हैं । देखिए न जब बड़े बड़े राजकुमार समुद्रयात्रा जहाज़ पर करते हैं तब हमारी कौन गिनती ! तीन में न तेरह में ।"

बुड्ढी—बेटा जर ! यदि मैं माणिकजी के साथ तेरे लग्नकी बात करूं तो मैं स्वयं मतलबी तो नहीं कही जाऊंगी ? ईश्वर की कृपा से वह सब प्रकार लायक़ है । उसमें कोई ऐब नहीं है । यदि तुझे अड़चन न हो तो उसको यहाँ बुलाऊँ ? हूँ, दो दो बातें तो कर । तू भी ईश्वर की कृपा से शिक्षिता है । इसने भी 'गिड्डागय गिड्डाणय' करने में ज़िन्दगी बिताई है । ज़रा मुलाक़ात तो ले ।

जर ने कुछ आनाकानी की पर बुड्ढी ने माणिक को बुला ही कर छोड़ा। जर और माणिक को बातों में छोड़कर वह चाय लेने गई और एक घन्टे में उनके लिए चाय ले आई। चाय पीकर जर ने थोड़ी देर बाद विदा माँगी और वह अपने स्थान पर गई। बुड्ढी माणिक के पास जा बैठी और उससे बातें करने लगी।

क्योंरे, अब 'नहीं' कह तो देखूँ? अब कहो कि विवाह नहीं करूंगा? बस हो चुका? चुप क्यों हो गया है? बोलता क्यों नहीं?

"नहीं रे मैया, लड़की तो घर की शोभा बढ़ाने वाली मालूम पड़ती है। अंग्रेज़ी कैसी अच्छी बोलती है। विचार भी बड़े ऊँचे हैं। ठीक है। इसके माँ बाप यदि मन्जूर करें तो।"

"चल हट, तुझ गवाँर को, यह रत्न कौन देगा?"

नवाजबाई ने सब वृत्तान्त माणिक के पिता से कहा। उन्होंने मंचेरशाह छापगर से एक पत्र जर की माँग का लिखाया। माणिकजी की फोटो भी साथ में भेजी। और यह भी लिखा कि जर की भी इसमें थोड़ी बहुत इच्छा है।

तेतालीसवाँ प्रकरण

आपानी जोड़ा

माणिक जी के साथ तो हमलोग मोहमयी (बम्बई) में मनमाने तौर से मिले जुले, विवाहोत्सव में सम्मिलित हुए, समुद्र के किनारे की हवा खाई, घर पर भी भेट की, और विवाह की भी बात चीत की। अब चलिए माणिकचन्द्र उर्फ

इम्तिहानचन्द के पास । देखे जापान में उनकी क्या हालत है? अब तो मुफलिसी का क्रूर हाथ उनके पास फटक भी नहीं सकता है अब दरिद्रता का दुस्सह दुःख उस को दुश्वार हो गया होगा। अब तो लक्ष्मी स्वयं माणिकचन्द की चेरी बन गई है । सैकड़ों और हजारों की कौन कहे अब तो लाखों माणिकचन्द के हाथ का मैल हो गया है।

'एक ताज़ी खबर सुनो यारो तुम भी अचरज करोगे सुन सुन के;
कल थी फाकों की जिनके घर नौबत, आज तो हुन बरस गये उनके।'

उस तरफ़ जर लाहौर में अपने बाप के पास जा बैठी है। पद्लजी उसके विवाह की तैयारी में लगे हैं। जर मारे खुशी के फूले नहीं समाती । माणिक जी का कहना ही क्या है । इधर (जापान में) लाखों की स्थावर और जंगम सम्पत्ति पानी के भाव बिक रही है । सट्टे हो रहे हैं । रूपये गिने जाते हैं। हुंडियाँ लिखी जाती हैं । बहादुर चन्द का शरीर अब फिर चला है। शोक और चिन्ता नेस्त नाबूद हो गई है। 'फिकर फकीर को और चिन्ता चतुर को' । रूपवाला रोए और हाड़ पिंजर पीटा जाय। दो-दो चार-चार मोटर और घोड़ा-गाड़ियाँ कसी तैयार रहती हैं, सब मिल्कियत की जाँच पड़ताल होती है, खाने पीने, पहिरने ओढ़ने किसी बात की कमी नहीं। माणिकचन्द की ऐसी इच्छा है कि धीरे २ सब बिक जाए तो मनमानी रकम खड़ी हो सकती है। कोमनाक्की यही माथा पीटती है कि कब सब में आग लग जाय और हिन्दुस्तान जाने की नौबत आवे, कब करोड़ रुपये की रकम एकत्र हो जाए, और कब माणिक के साथ विवाह हो ।

डाकिये ने चिट्ठियाँ लाकर दीं । एक में पद्लजी के यहाँ से आया हुआ निमंत्रण पत्र था। उसी के साथ उस सद्गृहस्थ

पारसीने इनको बम्बई आने का बड़ा आग्रह किया था। दूसरा पत्र स्वयं जर के हाथ का था, उसमें भी उसने बहुत आरजू मिन्नतें लिखी थीं। पर दुर्दैववशात् जिस दिन माणिक ने रवाने होने का विचार किया था उसी दिन वहाँ जर का विवाह था, इस लिए जर के विवाह के अवसर पर पहुंचना तो सर्वथा असम्भव था। मणिकचन्द्ने कोमरास्की को वह पत्र पढ़ सुनाया और अपने पर किये हुए उस अबला के सब उपकार उस ने उसको कह सुनाये कोमरास्कीने चट अपने जवाहिरात की पेटी खोली और एक हीरे की अंगूठी निकाली। माणिक ने उसको उपकार सहित लेकर विवाह की भेट के स्वरूप में जर के पास पारसल करके भेज दिया। वाहरे माणिकचन्द का भाग्य! कहलो, जर और माणिक जी इस बहुमूल्य मुद्रिका को देख कर क्या निश्चित करेंगे?

सोचेंगे और क्या? जिस समय माणिकने हिन्द के भविष्योदय के निमित्त पचीस लाख की रकम मांगी थी, उस समय क्या उसने यह सोचा था कि कोमरास्की क्या खायगी? लीजिए पाठक, जिस दिन बम्बई में अपनी कथा का मुख्य जोड़ा का हाथो हाथ मिलता है उसी दिन दूसरा काला पीला, रंग बिरंगी जोड़ा, पैंतालीस लाख की हुन्डियां, नोट गिन्नियां और चेक तथा बीस बाइस लाख का जवाहिरात, एवं सब मिलाकर साठ पैंसठ लाख की नादिरशाही लूट कर बम्बई आने के लिये रवाना होता है। दो महीने पूर्व दादा भाई मामा के विवाह के अवसर पर बम्बई में थे। विवाह की सब चाल ढाल, रीति रिवाज देख ही चुके हैं। जर के विवाहोत्सव के अवसर पर निमन्त्रण पत्र आने पर भी पहुंच नहीं सकते; इसलिए अपने पुराने परिचय के कारण उनको शुभाशीर्वाद दें

कि वह जोड़ा अमर रहे–पुत्र परिवार हो और दीर्घायु होकर संसार के सब सुख भोगे। ऐसी मंगल कामना करके माणिक को स्टीमर पर सवार करने चलें।

बासठ तिरसठ लाख की नकदी और मालमता के अलावा पच्चीस तीस गाड़ियाँ साज-सामान ले एक राजा की तरह ठाठ बाठ से दुरंगी जोड़ा घर से बाहर निकला। दाहिनी तरफ एक कौवा बोला, एक बिल्ली ने रास्ता काटा और एक लड़की ने छींका पर दौड़ा दौड़ में किसी ने ध्यान नहीं दिया। गाड़ियों की पल्टन निकली मार्ग में ऐसा मालूम पड़ता था जैसे किसी की बारात निकली हो, कोमरास्की ने चलने समय अपने इष्ट-मित्रों को एक अन्तिम विदाई का भोज दिया था। इससे वे सब बड़े बड़े धनी, जागीरदार और अफसरान कोमरास्की को बिदा करने आए थे। अधिकतर लोग कोमरास्की को पागल और माणिकचन्द को जादूगर कहते थे पर जहां मियां-बीबी राज़ी तो क्या करेगा, काज़ी। कितनों ने दृढ़ चित्त वाली इस प्रेम मूर्ति की प्रशंसा की, तो कितने माणिकचन्द के भाग्योदय पर जल भुन कर खाक हो गए। पाठक आप भी इस प्रेम मूर्ति के विषय में यथेष्ट विचार करने के लिये स्वतन्त्र हैं।

संयोग की बात है कि माणिक जी अपनी प्यारी से मिलने के लिये समुद्र पार करके गया और माणिकचन्द समुद्र पार से एक धनी-तरुणी को जीत ले चला। खैर अन्तर तो सिर्फ 'जी' और 'चन्द' ही का है न? डाक्टर शमदा और मिर्स कत्रड़ा प्रेमाश्रु बहा रहे हैं। कोमरास्की उनको दो वर्ष बाद फिर एक बार जापान आने का वचन देकर धीरज दे रही है। गाड़ी चली, हर्ष ध्वनि हुई। समुद्र का किनारा आया, हार और

फूलों का ढेर लग गया नाना प्रकार के आगत् स्वागत हुए।
आखिर जहाजने लंगर उठाया ही। कोमरास्की के नेत्रों में,
अपनी जन्मभूमि को अन्तिम प्रणाम करते समय, पानी भर
आया। क्यों न ऐसा हो ? जन्मभूमि आखिरकार जन्मभूमि
ही है। कहा भी है—

'गंदुम है सीना चाक़ फ़िराके बिहिस्त में,
आदम को क्यों न होवे मोहब्बत वतन के साथ।'

लोकोक्ति है कि जिस समय आदम को विदेश निकाला
हुआ उस समय उसके साथ गंदुम—गेहूं—को भी वतन छोड़ने
का हुक्म हुआ था। वतन के वियोगसे गेंहू की छाती फट
गई अभी तक गेंहूं की छाती में दरार है कारण कि उस को
वतन वियोग का बड़ा शोक है। फिर मनुष्य को यदि मातृ-
भूमि के लिये प्रेम हो तो उसमें नवीनता ही क्या है ? उसमें
आश्चर्य ही कैसा अंग्रेजी में इसी आशय की एक उक्ति है कि—

"I would not change my native land,
For rich Peru with all her gold,
A nobler prize lies in my hand,
Than East or Western Indies hold."

Watts.

कोमरास्की ने घूम कर माणिकचन्द को तरफ देखा। और
चट अपने आँसू पोंछ डाले। दोनों व्यक्ति अपने लिए रिजर्व
फर्स्ट क्लास केबिन में गए। साथ में चार नौकर थे और कोम-
रास्की के लिए एक खास दाई थी। किसी को किसी प्रकार
की भी तकलीफ न थी। भारत वर्ष में चल कर क्या करना ?
आदि विचारों में दोनों लीन हो गए थे।

उस तरफ माणिक और जर का जोड़ा हनीमून (मधुमास)

का अनुभव करने के लिए महाबलेश्वर की तरफ उतरा है। माणिकचन्द की अंगूठी पर दोनों जने ख़ूब तर्क वितर्क करते और यह कह कर हंसते कि थोड़े दिनों में सब गुल खिल जायगा। एक जोड़ा तो इस प्रकार निर्विघ्न रूप से अपने मनोरथ को प्राप्त हुआ, जब कि दूसरे जोड़े के प्रस्थान के समय अपशकुन हुए थे। उस जगन्नियन्ता से हमारी इतनी ही प्रार्थना है उन को सही सलामत भारतवर्ष में पहुंचा दे। आइये हम सब मिल कर ईश्वर से निम्न प्रार्थना करें:—

"दीनानाथ विश्वास तिहारो, तारो नौका और पार उतारो।"

चौवालीसवाँ प्रकरण

भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्

"अभागे कहीं जाना मत, बैठे रहना भाड़ में,
तू जाएगा रेल में तो, मैं पहुँचूंगा तार में।"

पाठक वृन्द ! पहिले प्रकरण में लिखी हुई, माणिक चन्द की तस्वीर का आप ध्यान कीजिए। जहाँ दूध लेने जाय, उस की भैंस मर जाय; जहां दीप जलाने जाय उसका कुल-दीपक नाश हो जाय, जिसके आश्रम में जाने की इच्छा करें उस का घर जले, और जिस वृक्ष की छाया में बैठें उसके पत्ते झर पड़ें। उन के सम्मुख अपने दुर्भाग्य वर्णन करते समय उसने कहा था कि:—

"मौत मांगू तो रहे आज़ू ए ख़ाब मुझे,
डूबने जाऊं तो दरिया मिले पायाब मुझे,
मेरी इजा के लिये मुर्दे में जान आती है।"
काटने दौड़ती है सादी के बेआब मुझे।"

वह दुर्दैव पीड़ित माणिकचन्द, वह भाग्य देवी के कोपानल का पतंग माणिकचन्द भारत के हित के निमित्त लाखों रुपये की रकम एकत्र करने की प्रसन्नता में उछलता था। पर उसके दुर्भाग्य से यह कब सहा जा सकता था? उससे भाग्यहीन भारत के दुर्दिनों और उसकी दुर्दशा का अन्त हो तो फिर पूछना ही क्या! एक तो नीम दूसरे चढ़ी तितलौकी, फिर कड़ुआपन का पूछना ही क्या? वह भाग्यहीन भारत, जिसके लिए कुम्भकर्ण असुर को विलायत में कर्ज़न अवतार धारण करना पड़ा, जिसने अपने सामर्थ्य भर भारत के लिए कोई बात ऊठा न रखी, वह मन्द भाग्य भारत वर्ष कि जिसके लिए कंसासुर ने फुलरावतार में अपने पूर्ण पराक्रम का परिचय दिया, वह मन्द गति-हिन्द, जिस की तैंतीस करोड़ भेड़ा के समान प्रजा के सम्मुख ब्रिटिशसिंह की ध्वजा के नीचे अन्यायी लोग, दण्ड के एवज में पुरस्कार पाते हैं और ऊंचे ऊंचे ओहदे पर चढ़ते जाते हैं, वह कम्बख्त हिन्द, जिसकी रसार्द्रभूमि को विदेशी तुरंगों की टापों ने खोद कर रास्ता खराब कर डाला है, वह काले मुंह वाला देश, जो विदेशियों की घातक नजर से नजरा कर असाध्य ज्वर का शिकार बना पड़ा है, ऐसे भारत वर्ष के शुभेच्छुकों का उद्योग? वह किस प्रकार सफल हो सकता है। राम राम कहिए। जिस देश के उन्नति के विषय में दो शब्द यदि मुंह से निकले तो भयंकर अपराधियों में गणना हो, दण्डित हो, खराब हो, हलाकान हो, ऐसे देशके निमित्त एक करोड़ की रकम की बातचीत! और उसका उद्योग कर्त्ता भी अभागा माणिकचन्द। उसका उद्योग? जिस देश की उन्नति और स्तुति सुनने वालों के कान बहरे हो जाएँ, प्रार्थना करने वालों के हाथ गिर पड़ें, हित के आंसू बहानेवालों

की आंखें फूट जाँय, भला ऐसी बेश के उन्नति करने वाले का बेड़ा पार कैसे हो सकता है ? क्या समुद्र सूख गया है ? क्या क्या लहरों का दिवाला निकल गया है पवन देव ने चूड़ियां पहिन ली हैं ? नहीं, नहीं, ऐसा हों ही कैसे सकता है ?

तब लीजिए भारत के हितैषी पुरुषों ! शोक के आंसुओं की धारा बहाइए। स्टीमर ने लंगर उठाया। कोमरास्की उसमें विराजमान है। माणिकचन्द हर्ष के मारे फूला नहीं समाता। पवन देव भी प्रसन्न ही हैं। वरुण देवके रथ के घोड़े भी सरपट भाग रहे हैं। सब मुसाफिर भी मजे उड़ा रहे हैं। इतने ही में हवा फिरी कि माणिकचन्द के भाग्य ने भी पलटा खाया। आकाश शब्दायमान हो गया। स्टीमर डांवाडोल होने लगा। समुद्र ने अब स्टीमर से गले मिलना चाहा। नाविकों ने समुद्र को कितना समझाया। पर वह महा जिद्दी किस की मानने का ! वह गले गले भेटा ही। दोनों में खूब आलिंगन और चुम्बन हुए, यहां तक कि प्रेमोन्मत समुद्र ने ऐसा आलिंगन किया कि स्टीमर की नस नस बोल गई। उस के एक एक अवथव अलग अलग हो गए। अब तो समुद्र ने कहकहा मार कर हंसना शुरू किया। निर्लज्ज को तनिक भी लाज न आई। कि सभ्य की तरह शिष्टाचार युक्त वर्ताव करें। आखिर को उद्दण्ड होन ? उसने मुंह फाड़ कर जो हंसना शुरू किया, कि उसमें यात्री रूप अनेक पतिंगे, और असबाब रूपी मच्छड़ के कण सब समा गए, पर इस को उनका कुछ भी ध्यान नहीं। भूल कर भी एक समय इसने नाक-भौं नहीं सिकोड़ी। हाय, ऐसे निर्दयी से पाला पड़ा कि कितनों के दिल की दिल ही में रह गई। विचारी दीन कोमरास्की की अभिलाषा मन ही में रह गई। निराशा की वायु के थपपड़ों ने रेगिस्तान में

पड़े हुए पाद चिह्न की तरह इस के नाम पर धूल का ढेर लगा दिया। संसार में से वह प्रेम मूर्त्ति सदा के लिए विलीन हो गई। मार्ग में समुद्री तूफान ने अपोलो की तरह इस स्टीमर का भी स्वागत किया और इतनी शीघ्र उसने सर्वनाश कर दिया कि किसी को कुछ सोचने विचारने या बचने का, किसी भी प्रकार का प्रयत्न करने का मौका ही न मिला। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि इसी को दैवी कोप कहते हैं। आपत्ति सूचना देकर नहीं आती। जब माथे आ पड़ती है तब कुछ नहीं सूझता, तब तो सिर पर पड़े बजाये सिद्ध। दूसरे मनुष्य की शक्ति ही कितनी। बचाने वाली की शक्ति देखिए और मारने वाले का बल देखिए। जब ईश्वर स्वयं रूठा तब इन अधूरे आविष्कारों की क्या चलती है। देखते देखते आधे घन्टे में स्टीमर समुद्र के पेंदे में जा लगा। इतना होने पर भी एक तख्ते ने एक हठीली जिन्दगी की रक्षा की। वह कौन था? माणिकचन्द एम० ए०।

हाय, काल के गाल से भी निकाल दिया गया तू, भाग्य हीन राजपूत के बच्चे। हाय, तेरी यह कैसी दुर्दशा!

"अगर कुन्दन बनाना है, तो मिट्टी हाथ आती है,
कभी रस्सी को छूता है, तो वह भी काट खाती है॥"

बचने के अनेक साधनों के रहते जिस तूफान में से कोई भी न बच सका, उसमें से एक मात्र माणिकचन्द ही निकला। यह भी कुदरत का तमाशा है! एक लकड़ी के बड़े टुकड़े को उसने पकड़ रखा था। समुद्र की मदोन्मत तरंगें उसको इधर उधर, और उधर से इधर उछालती थीं। अपने दुर्भाग्य पर अनेक बार शोक करते हुए उसने विचारा कि इस लकड़ी को छोड़ दूं और अपनी कम्बख्त जिन्दगी की इति श्री कर दूं।

वह ऐसा करने पर उतारु भी हो गया, पर प्रपंची प्रकृति ने उसको ऐसा करते समय माणिक जी का स्मरण कराया। आशा की इस बारीक डोरी ने उसके विचार बदल दिये, वह सोचने लगा कि, "यों भी मरना है त्यों भी मरना है" इससे यह हठीला जीवन और जो जो खेल दिखाये उन सब को देख कर स्वाभाविक मैात से मरना कहीं अच्छा है। संभव है कि माणिक जी की तरह समुद्र की लहरें किनारे पर लगा दें। हुआ भी वैसा ही—

> "उसे हजल करते नहीं होती बार,
> न हो उससे मायूस उम्मीदवार।"

एक रात और एक दिन वह समुद्र के थप्पड़ खाता रहा। दूसरे दिन अर्ध मूर्छित अवस्था में, जापान जाने वाले एक स्टीमर ने, उसको उठा लिया। अब उसकी सेवा सुश्रूषा में काहे की कमी ? उसके सद्भाग्य से उसी स्टीमर में स्वामी रामतीर्थ एम० ए० भी जापान जाते थे। उन्होंने इसके लिये दयार्द्र होकर पूर्ण परिश्रम किया। जापान के किनारे पहुंचने के पूर्व ही माणिक चन्द बात चीत करने योग्य हो गया। स्वामी जी भी एक अवतार ही थे कदाचित् हमारे पाठकों में से बहुतों को उनके दर्शन के भी सैाभाग्य प्राप्त हुए हों। आप माणिक चन्द को चिकित्सा और ज्ञानोपदेश दोनों प्रसाद एक साथ ही देने लगे। स्वस्थ होने पर माणिक चन्द ने स्वामी जी को अपनी सम्पूर्ण राम कहानी कह सुनाई। इसको सुन-कर स्वामी जी खिलखिला कर हँस पड़े। माणिक चन्द ने उनके चरण पकड़ लिये और दीक्षा मांगी। जापान में उतर कर स्वामी जी ने उसको गेरुवा वस्त्र धारण कराए-अब वह संन्यासी हो गया!

माणिक के लिये राम ही मिले। नहीं तो फिर जापान के किनारे पर आकर वह, व्यतीत धन का स्मरण आने से कदाचित् विक्षिप्त हो जाता। परन्तु राम के प्रताप से वह अब ऐसे तुच्छ वैभव को ठुकराने लगा। पर हां, कोमरास्की का निर्दोष प्रेम कभी कभी उसकी आँखों में पानी लाता, तब राम उससे कहते "मेरे प्यारे तूँ स्वयं कोमरास्की बन जा। वह तू ही तो है बस—

"तू को इतना मिटा कि तू न रहे,
और तुझ में दुई की बू न रहे।"

माणिक ने आंसू पोछते हुए कहा, "स्वामी जी, मुझ को विशेष दुःख इस बात का है कि, मेरी देश-सेवा में वह बड़ी सहायक होने वाली थी।"

स्वामी जी ने हँसते हुए उत्तर दिया, "मेरे प्यारे, देश सेवा तो तू प्रथम ही कर चुका है। जिसने आत्मसेवा नहीं की उसने कुछ नहीं किया। तू एम० ए० की डिग्री न पाता तो तेरे मन में अनेक अभिलाषा होने पर भी तू कुछ देश सेवा न कर सकता। जो तुम देश भर को हिला देने की इच्छा रखते हो, तो देश का वह भाग जो सर्वथा तुम्हारे निकट हो, उसे हिलाना आरंभ करो; अर्थात् तुम अपने आप को देश का एक भाग मानो, और स्वयं अपने को हिलाओ। यदि अपने को पूर्ण रूप से हिलाओ तो देश आप ही आप हिल जायगा। एक यूनानी रेखा शास्त्री था, उसका यह कथन था कि अगर मुझे एक स्थान पर स्थित होने के लिए पर्याप्त स्थल प्राप्त हो तो मैं एक छोटा सा प्राणी, समस्त सृष्टि को हिला सकता हूँ। हाय उस दीन को कोई स्थल न मिला। मेरे प्यारे! वह स्थल वह मध्य बिन्दु, जिस पर खड़े होकर तुम सृष्टि भर को हिला

सकते हो, तुम्हारी आत्मा है। बस वहीं दृढ़ होकर, अपने स्वरूप में स्थित होकर फिर गति दो। देश तो क्या-अखिल ब्रह्माण्ड को हिला दोगे।"

"मेरे प्यारे! मैंने भी देशोन्नति पर कमर कसी है। इसी कारण जापान आया हूं-यहां से अमेरिका जाऊंगा और वहाँ से भारतवर्ष को लौटूंगा। तब तक तुम साथ रहो। हम तुम साथ ही देशोद्धार के प्रयत्न करेंगे। तेरी कोमरास्की हराम है, राम से लगन लगाओ। मेरे प्यारे! प्रेम पैदा करो; प्रेम-मय हो जाओ; और प्रेम में लीन हो जाओ। प्रत्येक बात में रस भर दो, प्रेम (दया) पैदा करो तल्लीन होकर महत् हो जाओ—

"नेम रहे या न रहे, प्रेम रहे भरपूर,
निर्भय सुख का पंथ है, हठ की कहां ज़रूर ?"

"तुम सब कुछ हो, जो चाहो सो कर सकते हो-मगर प्रेम से करो तो। हमारा भाग्य अच्छा नहीं। ईश्वरेच्छा, कोई गुरु अच्छा नहीं मिलता, सत्संगत नहीं होता, इत्यादि विचारों को छोड़ दो-इससे चित्त आलस्य सीखता है।"

"जुत्त है खब्त है तकदीर से नाहक झगड़ते हैं,
हम आप ही करहने से, बनते और बिगड़ते हैं।"

"नामदेव से बालक ने आत्मबल से ही ठाकुर को दूध पिलाया था। प्यारे आत्मबल बढ़ाओ, दूसरों के विधेय न बन जाव।"

माणिक—गुरुदेव, गवर्नमेन्ट बड़ी कठिन है, उसके कानों तक हमारी आवाज का पहुंचना बड़ा कठिन है।

"मेरे प्यारे, जब उस बड़ी गवर्नमेन्ट के निराकार कानों

तक अपनी आवाज पहुंचा सकते हो, तो फिर उस बिचारी नाम मात्र की गवर्नमेन्ट की गणना ही क्या है? कान क्या, कानों के पर्दों के पार पर्दे चीर कर तुम्हारी चीखें निकल जाएंगी प्रथम तुम निश्चित बल को बढ़ कर पुकारना सीखो। ऐक्य सीख कर ऐक्य फैलाओ। तब देखोगे, यह शैर लोग शुक्रिये के साथ कहते सुनाई देंगेः—

"गज़ब है अर्श से अल्ला पै शोर नालों का;
खुदा भला करे फरियाद करने वालों का।"

जिज्ञासु माणिकने आग्रह पूर्वक कहा। "अहा हा-भगवान्! पुनः शब्दामृत पिलाइए। क्या दीन भारतवर्ष अपना उद्धार करने में समर्थ होगा?"

'कीड़ा जरासा और वह पत्थर में घर करे;
इन्सां वह क्या जो नादिले दिलवर में घर करे।'

"मेरे प्यारे क्यों न होगा।"

"स्काटलैंड के किसी अनाथालय में एक लड़का विद्याभ्यास करता था। बालकों के सहज स्वभावानुसार यह लड़का खिलाड़ी था बल्कि उन्मत्त था। एक दिन जो सनक चढ़ी तो वह अनाथालय से भाग निकला। वह मार्ग के गांवों में भीख मांगता हुआ चलते चलते लन्डन पहुँचा। वहाँ के सबसे अधिक धनाढ्य लार्ड मेयर के बाग में घुस कर घूमने लगा। वाटिका में घूम रहा था कि एक पालतू बिल्ली पर इसकी दृष्टि पड़ी। बच्चा तो था ही, लगा उसके साथ खेलने कूदने। कभी बातें करता, कभी पीठ पर हाथ फेरता और कभी पूंछ खींचता था। पड़ोस में एक गिरजा घर था। वहाँ से घड़ियाल बजने लगा। लड़के ने बिल्ली से पूछा कि यह पागल घड़ी क्या कहती है?"

माणिक ने पूछा "गुरुजी ! लड़के ने पागल घड़ियाल क्यों कहा !"

"मेरे प्यारे ! सच तो है । अच्छी घड़ी एक से ले कर अधिक से अधिक बारह तक बज कर चुप रहती है । परन्तु गिरजे की घड़ी तो जब बजने पर आती है तब बजा ही करती है-जैसे कोई पागल बकने लगता है तो बकाही करता है । अस्तु, बिल्ली ने प्रत्युत्तर नहीं दिया, परन्तु लड़का स्वय कहने लगा-घड़ियाल कहती है टन, टन, टन, टन, वेटिंगटन, वेटिंगटन, लार्ड मेयर आफ् लण्डन । वेटिंगटन उस बालक का नाम था । देखो अनाथालय से भागा हुआ बालक और घड़ियाल में क्या सुनता है कि आप लार्ड मेयर आफ् लण्डन । इतने में लार्डमेयर साहब हवा खाते हुए उस स्थान पर आ पहुँचे । उन्होंने लड़के से पूछा, "तू कौन है ? और क्या बकता है ?" वह लड़का मस्ती और आनन्द से बेधड़क बोल उठा, "टन, टन, टन, टन, बेटिंगटन-लार्ड मेयर आफ लण्डन ।" बालक की वह स्वतन्त्र और मुक्त-रीति, लार्ड मेयर के हृदय में चुभ गई । क्यों न चुभे ? स्वतन्त्रता भला किस हृदय को नहीं भाती । लार्ड मेयर ने पूछा, "स्कूल में भरती होना चाहता है ?"

लड़का—"हाँ, यदि मास्टर मार पीट न करें तो ।"

लार्ड मेयर ने प्रसन्नता पूर्वक उस बालक को स्कूल में भरती कराया । चंचल बालक स्कूल से फिर कौलेज में गया और शनैः शनैः ग्रैजुएट हो गया । लार्ड मेयर जब मरण-शैय्या पर पड़े थे उस समय उनको कोई सन्तति न थी । उन्होंने वेटिंगटन के नाम बहुत सा धन लिख दिया । वह अपने चातुर्य से उस धन को बढ़ाते बढ़ाते अन्त में लार्डमेयर आफ लण्डन हो गया । यह मनोभाव और साहस का परिणाम है । अब एक

साधारण बालक ने इस प्रकार अपनी मनोकामना पूर्ण की, तब हमलोग देशोन्नति में हताश हों, यह कैसे हो सकता है ? मेरे प्यारे, इच्छा करो, दृढ़ संकल्प करो, प्रेम से प्रत्येक वस्तु करो-प्रेम मय बनो—

"किस कद्र अच्छा है यह विक्टर ह्यूगो का ख्याल;
संग हो तो सगे मगनातीस* की सूरत बनो;
नख्ल खर्चे हो तो लचकती सी दिखलाओ बहार;
अगर इन्सान हो तो इश्क की मूरत बनो।"

पैंतालीसवाँ प्रकरण

फिर जन्मभूमि में

अब माणिक चन्द, माणिक चन्द नहीं हैं, इम्तिहान चन्द नहीं हैं, पर स्वामी रामतीर्थ के प्रताप से स्वामी राम भजन एम० ए० के नाम से प्रसिद्ध एक साधु महात्मा हैं। वे काश्मीर में उत्पन्न हुई मन की तरंगे, और वे जापान के किनारे मनकी उमंगे, सब जड़ मूल से साफ हो गईं! यूनिवर्सिटी के स्थापना की कल्पना पर एक दम पानी फिर गया है। अब तो देशोद्धार के हेतु केवल धर्म ही है और तदर्थ सत्य धर्म का प्रजा में प्रचार करना, यही एक स्वामी राम भजन का लिन्त्य [illegible] हो गया है। गुरू के प्रताप से जो कुछ मिला है उससे आर्य प्रजा को लाभ पहुंचाने के लिये ही आप कमर कस कर तैयार हुए हैं! हम लोगों ने जब गुरु शिष्य को जापान में देखा था, उसको आज पूरे दो वर्ष बीत गए हैं। दोनों मूर्तियाँ जापान

से अमेरिका और अमेरिका से यूरोप में भ्रमण करके अब भारत वर्ष में पधार चुकी हैं। कलकत्ता और काशी की यात्रा करके अपने व्याख्यान द्वारा प्रजाजनों के कर्ण पवित्र कर, गुरु श्री राम तीर्थ के साथ महात्मा राम भजन जी अपनी जन्म भूमि में पधारे हैं और तुलाराम पटवारी जी के यहां उतरे हैं। तुलाराम जी भी भगवे पहिन गेरुवा वेष में विराजे हुए हैं। पर यह कैसे हुआ ? तुलाराम साधु भए। विश्वयोषिता पतिव्रता ! हां, भया तो ऐसा ही है। ब्रह्म बीज का असर कहाँ जायगा। तुलाराम जी दारू के नशे में एक दिन सीढ़ी पर से लड़खड़ा गए। ठीक पहिली ही सीढ़ी से आकर उन्होंने धरती माता को नमस्कार किया। दहिना पैर टूट गया। चार महीने तक लाहौर के गवर्नमेंट-अस्पताल में पड़े रहे और खाट सेते रहे। वहां इनको खाने को सूखा भात और भंगियों के धक्के, पीने को पानी और आंसू। चार महीने की इस तपस्या ने उनका दिमाग़ ठिकाने कर दिया। तुलाराम ने अपनी कुचालों पर पश्चाताप किया और अब सीधे मार्ग पर आए और भगवे वस्त्र धारण किए। इनका पैर अभी एक दम अच्छा नहीं हो गया है। माणिक चन्द के आने की, जापान, अमेरिका और यूरोप के यात्रा की, गेरुवा वस्त्र आदि धारण करने की गांवमें चारो तरफ़ खूब चर्चा हो रही है, जनता इनके दर्शन के लिए बराबर टूट रही है। गोविन्द राम हुक्का लेकर सामने बैठा है। वह बराबर अपने पुत्र की ओर देखता है और मायाजाल में बंधे रहने के कारण अश्रुपात करता हुआ नज़र आता है। दूसरी तरफ़ उसकी बहिन भी बैठी तमाशा देख रही है। रामभजन ने कहा—पिता जी आप इस प्रकार क्यों दुःखी होते हैं ? बहिन तेरी यह क्या दशा है ?

मैंने चोरी नहीं की है, खून नहीं किया, न क़ैदी ही बना हूं। उलटे इस संसार के मायाजाल को सूत के तार की तरह तोड़कर मैं बन्धन मुक्त हुआ हूं। आप प्रसन्न होइए हँसिए आनन्द कीजिए।

"अरे बेटा, यदि तेरी माँ होती तो जो करती सो थोड़ा था।"

"जो मर गए सो मर गए, अब उनके लिये रोने से क्या होता है। मेरा तो यह दृढ़ निश्चय है कि अब वह संसारी नहीं होने को। 'घर को जला तमाशा देखा'। जिस प्रकार मेरी जननी अब वापस नहीं आने की, उसी प्रकार उसका बेटा भी अब संसारी होने का नहीं। यह कह कर उसने नीचे का दोहा कहा:—

"जनम काहे को रोइए, हँसिए करहि विचार।
गयो न पाछो आवनो, रह्यो सो जावन हार।"

तुलाराम के मठ में गाँव के अनेक लोग आया करते थे। उनमें स्त्रियाँ भी रहती थीं। एक वृद्ध स्त्री देख कर बोल उठी कि "अरे बहिन यह तो गोवन्धा का मणका है।"

तोताराम ने हँस कर प्रथम तो गुरु की तरफ़ और फिर लज्जा से पृथ्वी की तरफ देखा, राम हँस कर बोले, "बेटा, यह जन्म-भूमि है। तुम क्या—गोस्वामी तुलसीदास रामायण लिखने के अनन्तर जब अपनी जन्मभूमि में गए थे तब वहाँ के लोग उनको भी कहने लगे कि, तुलसिया आया, तुलसिया आया। गोस्वामी जी ने तब एक दोहा कहा था:—

"तुलसी वहाँ न जाइए, जहाँ बाप को गाँव,
दास गए तुलसी गए, रह्यो तुलसिया नाँव।"

"कहिए, एकअबी सेठ की कैसी हालत है!"

"दो महीने हुए विचारे गुजर गए। लाखों का आदमी था। वाहरे वाह ! पदलजी सेठ जैसे लोग क्या फिर पैदा होंगे ? ब्रह्मा जैसा पुरुष !"

"उनकी पुत्री और उसका पति तो सुखी हैं न ?" इस प्रकार माणिक ने पीछे की बातें याद करके एक दीर्घ श्वांस खींचते हुए पूछा।

गोविन्द—जरीबाई और उसके पति दोनो लाहौर में राजी खुशी हैं। पदलजी ने अपने आगे ही पन्द्रह रुपये मासिक बाँध दिए थे। उनके मरने पर बाई ने बीस रुपये कर दिए जिसे वह बराबर भेजती है।

यह सुन कर माणिक के नेत्रों में आंसू भर आए। दो दिन अमोदा में रह कर, पिता और भगिनी से विदा हो कर माणिक अपने गुरु के साथ लाहौर गए। गुरु की आज्ञा लेकर माणिक-चन्द एक बार जर से मिलने गया। नौकर द्वारा अपनी ख़बर कराके वह घर में गया। जर माणिकचन्द को साधु के वेष में देख कर चकित हो गई। माणिकचन्द ने जरबानू और माणिकजी से सब आप बीती कह सुनाया। वह सुन जर रो पड़ी। माणिक-चन्द ने उसको धीरज दिया और लाहौर में आने पर उससे अवश्य मिलने का वचन दे बिदा माँगी।

उनके चलते समय श्रद्धालु जर ने हर्ष और लज्जा से अपना एक वर्ष का बालक उनके चरणों में डाल दिया, और राम-भजन ने उसको अन्तःकरण से आशीर्वाद दिया।

॥ इति ॥

सदन-ग्रन्थरत्नमाला का प्रथम रत्न

बिहारी-बोधिनी

अर्थात्

बिहारी-सतसई सटीक

यह वही पुस्तक है कि जिसके कारण कविकुल-कुमुद-कलाधर बिहारीलाल की विमल ख्याति-राका साहित्य-संसार के कोने २ में अजरामरवत् फैली हुई है और जिसकी कि केवल समालोचना ने ही विद्वन्मण्डली में हलचल मचा दिया है। सच पूछिये तो शृंगार रस में इस के जोड़ की कोई भी दूसरी पुस्तक नहीं है। यह अनुपम और अद्वितीय ग्रन्थ है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज २५० वर्षों में ही इस ग्रन्थ को ३५-३६ टीकायें बन चुकी हैं। इतनी टीकायें तो तैयार हुई हैं किन्तु वे सभी प्राचीन ढंग की हैं। इसी लिये समझ में जरा कम आती हैं। इसी कठिनाई को दूर करने के लिये साहित्य-संसार के सुपरिचित कविवर लाला भगवानदीन जी ने अर्वाचीन ढंग की नवीन टीका तैयार की है। टीका कैसी होगी इसका अनुमान पाठक टीकाकारके नाम से ही कर लें। इस में बिहारी के प्रत्येक दोहे के नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचन-निरूपण, अलंकार आदि सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश किया गया है। स्थान स्थान पर कविके चमत्कार का निदर्शन कराया गया है। जगह जगह पर सूचनायें दी गयी हैं। मतलब यह कि सभी जरूरी बातें इस टीका में आ गई हैं।

इतना सब कुछ होने पर भी इस पौने चार सौ पृष्ठों की सचित्र पुस्तक का मुल्य २।) मात्र है। सजिल्द २॥)

देखिए, पुस्तकके विषयमें 'सरस्वती' की क्या सम्मति है कोई टीका अब तक कालिज के छात्रोंके लिए अर्वाचीन